Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

8752

विश्व हिंदी अंक

गगनाञ्चल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

68552

612/A157

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

Amrendra Mishra.

विश्व हिंदी अंक

C. NO
34509
11-10-13

गगनाञ्चल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

612
A157

प्रकाशकीय

मारीशस में आयोजित होने जा रहे चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर *गगनाञ्चल* का विशेषांक प्रस्तुत करते हुए, इसके प्रकाशक होने के नाते मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है। यह सम्मेलन समूचे विश्व के सुधी विद्वानों और कृती लेखकों को एक साथ लाने का ऐसा मंच सिद्ध होगा, जहां विभिन्न जनसमुदाय और संस्कृतियों के बीच भाषा की अद्भुत शक्ति द्वारा स्नेह संबंध और मेल मिलाप को सुदृढ़ बनाने और आगे बढ़ाने की भावना प्रदर्शित होगी। संप्रेषण और संवाद का आधार भाषा है और संवाद आपसी सद्भाव और सहयोग की प्राथमिक अनिवार्यता है। इसी के माध्यम से ही हम एक दूसरे की वैभवपूर्ण संस्कृति के संबंध में अपनी जानकारी बढ़ा सकते हैं।

गगनाञ्चल के मूल में यही प्रेरणा मुख्य रूप से काम कर रही है। इसके प्रत्येक अंक में दुनिया के विभिन्न देशों की रचनाओं को एक साथ रखने के मूल में हमारा यही प्रयास रहता है कि एक भाषा हिंदी के माध्यम से आपसी संपर्क और सौहार्द्र में श्रीवृद्धि हो। इस विनम्र भावना के साथ काम करते हुए हम चीन, जर्मनी, इंग्लैंड, मारीशस, सूरीनाम, पोलैंड सरीखे अन्यान्य देशों से उत्कृष्ट रचनाएं प्राप्त करने में सफल हुए हैं। हमें इस पर कृतार्थता का अनुभव हो रहा है। *गगनाञ्चल* ऐसी बंधुता और भाई-चारा बनाने में सहायता करता रहा है जिससे अलग अलग जनसमुदाय के अंतर्संबंध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घनिष्ठ हों और जो जाति, धर्म और वर्ण के नाम पर स्वयं-आरोपित भेद-विभेदों से परे हों, अलग हों। इसलिए मैं आपके माध्यम से आपके मित्रों और उनके माध्यम से उनके मित्रों से अपील करना चाहता हूं कि हम मैत्री के इस वृत्त को अधिकाधिक विस्तृत और व्यापक बनाएं। हम लेखकों के सहयोग और उनकी रचनाओं के द्वारा इस पत्रिका को एक सशक्त माध्यम बनाकर इस कार्य को संपन्न कर सकेंगे।

यहां पर एक और सुझाव मैं देना चाहता हूं जो उपयोगी है। हमें अपने अनेक सुधी पाठकों से बधाई के कई पत्र मिलते रहे हैं जिसके लिए हम उनके विशेष आभारी हैं। *गगनाञ्चल* में अब हम ऐसे मुद्दों को लेना चाहते हैं जो चर्चा-परिचर्चा द्वारा इसे आगे बढ़ाने में सहायक हों। इसे ध्यान में रखते हुए हम आगामी अंक से पाठक-मंच शुरू करने जा रहे हैं जिसमें हम पाठकों के पत्र और प्रकाशित लेखों पर उनकी प्रतिक्रियाएं प्रकाशित करेंगे।

हमारे पाठकों को यह देखकर प्रसन्नता होगी कि बेहतर प्रस्तुतीकरण को ध्यान में रखते हुए इस पत्रिका के आवरण पृष्ठ और भीतरी साज सज्जा में हमने विशिष्ट परिवर्तन किए हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके सहयोग और वस्तुतः आपकी सक्रिय सहभागिता से *गगनाञ्चल* पत्रिका न केवल एक महत्वपूर्ण साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका के रूप में उभरेगी बल्कि विभिन्न संस्कृतियों के लोगों में घनिष्ठ मैत्री के संवर्धन में अपनी सशक्त भूमिका निभाएगी।

(निरंजन देसाई)
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह अंक

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन के एक दशक बाद मारीशस में हो रहा है। जनवरी 1975 में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में हुआ था और उसके डेढ़ वर्ष बाद यानी 1976 के अगस्त माह में मारीशस में ही द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ था। 1983 में तृतीय सम्मेलन नयी दिल्ली में आयोजित किया गया था। जाहिर है कि ये तीनों विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी को विश्व भाषा के रूप में आंकने के लिए सफल आयोजन के तहत संपन्न हुए थे और पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में ही यह बात उभरकर आई थी कि हिंदी को अपनी स्पष्ट भूमिका के अनुसार अन्य भारतीय भाषाओं के सद्भाव और सहयोग से अपने ऐतिहासिक दायित्व को पूरा करना है।

इन आयोजनों से जो एक महत्वपूर्ण बात सामने आई, वह यह है कि हिंदी भाषा के माध्यम से दुनिया भर में फैले लाखों प्रवासी भारतीयों से भारत का सुदृढ़ संबंध स्थापित हुआ है। इन सम्मेलनों में भाग लेने वाले लेखकों, साहित्यकारों ने यह अनुभव किया कि उन्होंने अपनी सांस्कृतिक परंपराओं और विशिष्टताओं को हिंदी के माध्यम से ही सुरक्षित रखा। क्योंकि इतिहास गवाह है कि हिंदी भाषा शुरू से ही राष्ट्रीय एकता, धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर मेल-मिलाप की भाषा रही है। हिंदी का फैलता व्यापक दायरा प्यार, स्नेह, मैत्री और आपसी समझ के कारण ही संभव हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज जब हम विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की परिकल्पना करते हैं—उसे जब एक वैश्विक मंच पर देखते हैं तब निश्चित रूप से हिंदी के बढ़ते चरण को भी रेखांकित करने का प्रयास करते हैं। इसलिए जब इस अंक की तैयारी चल रही थी तब हमारे मन में हिंदी की यात्रा को यहीं से आरंभ करने का विचार आया। हिंदी विश्व की एक समृद्ध भाषा है इसे रामनारायण उपाध्याय जी ने अपने आलेख में व्यक्त किया है। वे मानते हैं कि हमें इसके अधिकाधिक विकास के लिए इसकी राह सुगम बनानी होगी। जिन विद्वानों ने उन्हें पत्र लिखे हैं उन पत्रों से उनके मन में हिंदी और भारतीय साहित्य के प्रति उस रागात्मक लगाव की झलक देखी जा सकती है, जिसे उन्होंने व्यक्त किया है। इसी प्रकार हमारे देश में हिंदी की काव्य भाषा के विकास में दक्खिनी हिंदी की भूमिका को डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर ने रेखांकित किया है और यह दिखाया है कि, किस प्रकार दक्खिनी हिंदी में रचित हिंदी का पहला आख्यानक काव्य दरअसल खड़ी बोली का पहला आख्यानक काव्य है। रामायण के माध्यम से हिंदी के विश्व व्यापी स्वरूप की पहचान लल्लन प्रसाद व्यास के आलेख से मिलती है। मारीशस में सन् 1990 में 'विश्व रामायण सम्मेलन' हुआ था और उसकी स्मृति को संजोते हुए यह आलेख हमें प्राप्त हुआ जो इस विशेषांक में जा रहा है।

हमारा लोक साहित्य विश्व के अनेक भागों में पढ़ा जाता है। लोक साहित्य सहज-सामान्य व्यक्ति के जीवन से विशेष रूप से जुड़ा होता है। इस साहित्य में जनता की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, राजनीतिक-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है। भारत के गांवों में गरीबी, बेरोजगारी के कारण जिन भारतीयों को उन्नीसवीं शताब्दी में गिरमिटिया (एग्रीमेंट) व्यवस्था के अंतर्गत अपना देश छोड़ मारीशस, फीजी, गयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में जाना पड़ा था, उन दिनों की याद को उन्होंने जिन लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किया था उसकी अभिव्यक्ति इस अंक में प्रकाशित डॉ. कामता कमलेश के लेख में मिलती है। गोविंद सिंह का लेख 'दक्षेस देशों का साहित्य' इस विचार को व्यक्त करता है कि हमारे सात देश जिन्हें दक्षेस देश या 'सार्क' देश के नाम से जाना जाता है, जिसमें भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान, मालदीव आते हैं, उनकी परस्पर आंतरिक व्यवस्थाएं चाहे जैसी हों पर वहां के साहित्य को पढ़ें तो यह नहीं लगता कि ऐसा हमारे देश में घटित न होता हो। इन देशों के साहित्य में आदमी की परस्पर समझ, उसके रिश्ते, उसके सुख-दुख, उसके विचार, उसके कष्ट सब बराबर हैं। सोचने की बात है कि उन देशों में लिखा जा रहा साहित्य हमारे साहित्य से कितना मिलता-जुलता है और इस प्रकार यह मानना पड़ता है कि इस साहित्य के माध्यम से हमारे पारस्परिक रिश्ते कितने अधिक सुदृढ़ होते हैं। ठीक यही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बात हमारी भारतीय संस्कृति के साथ है। हमारी संस्कृति विश्व के कई भागों तक फैली हुई है। विशेष कर दुनिया के उन देशों में जहां प्रवासी भारतवंशी निवास करते हैं साथ ही 'वे' जिन्होंने इसे प्यार से अपनाया। थाई देश में भारतीय संस्कृति के प्रभाव को डॉ. रामप्रकाश सक्सेना ने व्यक्त किया है।

डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने अपने आलेख में कहा है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास का एक सचिवालय मारीशस में होना चाहिए जैसा कि विश्व हिंदी सम्मेलनों में यह बात बार-बार कही गई है। चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन के परिप्रेक्ष्य में पिछले तीन विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन, उनकी भूमिका, उनकी उपलब्धियां हमारे विचार का विषय हो सकती हैं। इसे डॉ. भक्तराम शर्मा बता रहे हैं।

संस्मरणात्मक आलेख विष्णु प्रभाकर एवं प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने दिए हैं और हमारे इन दो वरिष्ठ लेखकों ने बर्मा और फीजी से संबंधित अपनी यादों को अपने-अपने आलेखों में संजोया है।

विदेशों में हिंदी की चर्चा के क्रम में यह बात विचार करने योग्य है कि जिन देशों में विदेशी हिंदी विद्वान इस भाषा के माध्यम से अपना सृजन-कार्य कर रहे हैं उनमें इतनाधिक उत्साह है कि वे हमारे भारतीय साहित्य की कहानियों, उपन्यासों आदि का अनुवाद करते हैं, रामायण पर विचार व्यक्त करते हैं। हमारे नए-पुराने कथाकारों को आदर के साथ पढ़ते हैं। यह सब उनका हिंदी-प्रेम ही है। इस अंक में विदेशी रचनाकारों ने न केवल रचनात्मक बल्कि प्यार-स्नेह से सराबोर आत्मीय योगदान दिया है जिसे हिंदी के प्रति प्रेम के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। यहां यह उल्लेख करते हमें प्रसन्नता हो रही है कि विदेश स्थित हमारे राजदूतावास और हमारे सांस्कृतिक केंद्रों ने वहां से जिस तत्परता के साथ रचनाएं भिजवाई हैं उनसे यह अंक सर्वांग संपूर्ण बन पड़ा है।

यह विश्व हिंदी अंक, हिंदी की वैश्विक स्थिति पर विचार करने का एक उपक्रम है। इस अंक में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा प्रतिनियुक्त हिंदी का अध्यापन कर रहे जिन लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं, वे हैं—डॉ. (श्रीमती) कमलेश सिंह, (बेल्जियम) अब्दुल बिस्मिल्लाह (पोलैंड), डॉ. जोगेश कौर (रूस), डॉ. सी. तुलसम्मा (कोरिया), डॉ. त्रिलोकीनाथ सिंह (सूरीनाम), वी.रा. जगन्नाथन (त्रिनीदाद)।

इस अंक में जापानी हिंदी कथाकार तोमियो मिजोकामी की कहानी 'रिक्शावाला' तथा बर्मी कथाकार न्यी पुलेः की कहानी 'एक अजगर वह' शीर्षक से जा रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विविध खंड में दूसरी विधाओं से संबंधित सामग्री है, जिनसे हमारी हिंदी भी जुड़ी है। इनके माध्यम से देश-विदेश के लेखक, साहित्यकार व पाठक हमारे साहित्य की दूसरी विधाओं में लिखी जा रही रचनाओं को पढ़ सकेंगे।

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी को वैश्विक मंच प्रदान तो करेगा ही, साथ ही विश्व भर से आए लेखक, साहित्यकार, कवि, पत्रकार तथा अन्यान्य बुद्धिजीवी इसके आयोजन से आपसी संवाद कायम कर सकेंगे। इस संवाद में 'गगनाञ्चल' के इस महत्वपूर्ण अंक की भूमिका, निश्चित रूप से सर्वथा प्रभावशाली होनी चाहिए—इस आशा और विश्वास के साथ।

अमरेंद्र मिश्र
संपादक

'गगनाञ्चल' के विशेषांक

फीजी अंक
प्रेमचंद अंक
विश्व हिंदी अंक (1983)
मारीशस अंक
मैथिलीशरण गुप्त अंक
बाबू गंगाशरण सिंह स्मृति अंक
माखनलाल चतुर्वेदी अंक
लोक साहित्य अंक
राहुल सांकृत्यायन अंक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुक्रम

हिंदी के बढ़ते चरण

हिंदी : विश्व की एक समृद्ध भाषा	रामनारायण उपाध्याय	1
समकालीन हिंदी साहित्य : एक परिदृश्य	प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी	11
हिंदी काव्य भाषा के विकास में दक्खिनी हिंदी का योग	डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर	27
मारीशस और हिंदी अंतर्राष्ट्रीयकरण की अनिवार्यता	डॉ. गंगा प्रसाद विमल	39
हिंदी के विश्वव्यापी प्रसार में रामायण की भूमिका	लल्लन प्रसाद व्यास	45
दक्षेस देशों का साहित्य	गोविंद सिंह	53
थाई जनमानस और भारतीय संस्कृति	डॉ. रामप्रकाश सक्सेना	63
विश्व हिंदी लोकगीतों में जीवन-मूल्य	डॉ. कामता कमलेश	75
विश्व हिंदी सम्मेलन संभावनाएं एवं उपलब्धियां	डॉ. भक्तराम शर्मा	85

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदेशों में हिंदी

मानक हिंदी और भारत की अस्मिता	डॉ. ओदोलेन स्मेकल	99
हिंदी की वर्तमान स्थिति पर ढाई विचार	डॉ. रुपर्ट स्नेल	103
त्रिनीदाद में हिंदी	डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय	109
जर्मनी में हिंदी : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	डॉ. तिलकराज चोपड़ा	123
हिंदी, सूरीनाम और करीबियन में	जानकी प्रसाद सिंह	129
पोलैंड में भारतीय सृजन	हरिमोहन शर्मा	133
महाथाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थयात्रा के वृत्तांत का चीन में अध्ययन	सुन पाओकाङ	137
भाषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. ब्यौर्नर वेस्तफाल/ डॉ. एच लत्सके	141
प्रेमचंद : हिंदी गद्य के पिता	डॉ. तात्याना रुत्कोव्स्का	149
मारीशस में हिंदी भाषा और साहित्य	मुनीश्वरलाल चिंतामणि	153
मारीशस में हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास	प्रह्लाद रामशरण	159
नेपाली साहित्य में हास्य-व्यंग्य	डॉ. सुरेंद्र प्रसाद साह	171
विश्व में हिंदी साहित्य के अनुवाद का महत्व	प्रोफेसर डॉ. मार्गोट गात्सलाफ	177

संस्मरण-लेख

बर्मा की धरती पर	विष्णु प्रभाकर	183
फीजी द्वीप के हिंदी शिक्षक और साहित्यकार	प्रो. विजयेंद्र स्नातक	195
विदेशों में हिंदी अध्यापन : कुछ विचार		205

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहानियाँ

जापानी कहानी/रिक्शावाला	*तोमिओ मिजोकामी*	209
बर्मी कहानी/एक अजगर वह	*न्यी पुलेः*	219

विविध

भाषा की सरलता की समस्या	*डॉ. नगेंद्र*	233
हिंदी और अंग्रेजी : अनुवाद का रिश्ता	*हरीश त्रिवेदी*	237
सर्जनात्मक उपादान और सर्जक की चिंताएं	*विजय कुमार*	245
केंद्रीय हिंदी निदेशालय और हिंदी का प्रचार-प्रसार	*डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया*	251

पुस्तकें

विश्व हिंदी : आस्था और अस्मिता	*डॉ. रणजीत साहा*	265
समकालीन चीनी कहानियां	*वेदप्रकाश भारद्वाज*	273
जिंदगी फिर-फिर मेरे करीब	*डॉ. रेखा रस्तोगी*	283

रचनाकार 295

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी के बढ़ते चरण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी: विश्व की एक समृद्ध भाषा

रामनारायण उपाध्याय

हिंदी विश्व की समृद्ध भाषाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह भारत जैसे विशाल देश की करोड़ों जनता द्वारा बोली और समझी जाती है। यह विश्व की सबसे सहज और वैज्ञानिक भाषा है। अंग्रेजी में जो लिखा जाता है वैसा उच्चारण नहीं होता। जब कि हिंदी में जैसा लिखा जाता है वैसा ही उच्चारण भी होता है। उसमें अपने विचारों को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। उसे संतों ने देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक की पैदल यात्राएं कर अपने पदों से समृद्ध बनाया। और महिलाओं ने लोकगीतों के माध्यम से राष्ट्रभाषा को बुनने में अपूर्व योगदान दिया है।

किसी भी राष्ट्र की भाषा के दो स्वरूप होते हैं—एक राष्ट्रभाषा और दूसरी वहां के विभिन्न जनपदों में प्रचलित लोक भाषाएं। राष्ट्रभाषा समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। राजकीय दृष्टि से विभाजित प्रांतों को समग्र राष्ट्रीयता के एकसूत्र में पिरोये रखने का श्रेय उसे ही होता है। उसे लेकर ही राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण होता है और इस तरह किसी विश्व मान्य भाषा के सहारे प्रांत और राष्ट्रों में विभाजित संपूर्ण मानवीय जगत वसुधैव कुटुंब की तरह समीप आता है। लेकिन लोक भाषाएं इनकी जड़ में अंतर्निहित वह शक्ति है जिसे लेकर ही राष्ट्रभाषा समृद्ध होती है। वे राष्ट्रीय इतिहास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की नहीं वरन् मानवीय जीवन की निर्माता होती हैं। उनके सहारे ही हम लोक संस्कृति और लोक जीवन का दर्शन कर सकते हैं। जिस तरह भिन्न-भिन्न संस्कृति जनपदों और प्रांतों को लेकर राष्ट्रभाषा बनती है, उसी तरह विविधता में सुंदरता और एकता की तरह लोक भाषाओं से राष्ट्र भाषा समृद्ध होती है और उसका स्वरूप निखरता आया है।

लोक भाषाएं सहायक नदी की तरह होती हैं। लोक जीवन से आत्मसात होने के कारण वे अपने कूल किनारों पर बसने वाली जनता की सभ्यता, संस्कृति और विपुल संपदा से राष्ट्रभाषा को समृद्ध करती आई हैं।

अगर किसी देश को गुलाम बनाना हो, तो आप उसकी भाषा छीन लीजिए, वह अधिक दिनों तक आजाद नहीं रह सकेगा। जिस देश के पास अपनी भाषा नहीं होती, उस देश की स्थिति वाणी बंद हो जाने वाले मरणासन्न व्यक्ति की तरह हो जाती है। उसमें कोई तेज नहीं रह जाता।

एक बार संत कंफ्युशियस से किसी ने पूछा—''अगर तुम्हें राजा बना दिया जाए तो सबसे पहले कौन सा काम करोगे?

वे बोले—''भाषा शुद्धि।''

पूछा—''भाषा शुद्धि से राज्य का क्या संबंध है?''

उत्तर था—''अगर भाषा शुद्ध नहीं होगी तो भाव समझ में नहीं आयेंगे और भाव समझ में नहीं आयेंगे तो न्याय नहीं मिलेगा। न्याय नहीं मिलेगा तो अराजकता फैलेगी और अराजकता फैली तो राज्य डूब जायेगा।''

मनुष्य को सबसे बड़ा दुःख भाषा के अशुद्ध होने से होता है। कहते हैं एक बार नदिया (नवद्वीप) के नैयायिक रामनाथ पंडित की पत्नी नदी में नहाने गई तो नहाते समय उसके छींटे रानी पर गिर गए। वह इतनी गरीब थी कि उसके हाथ में सूत का कंकण था।

दासी ने तुनककर कहा—''सूत के कंकण पर इतना घमण्ड।''

वह बोली—''जिस दिन तुम्हारी रानी का सोने का कंकण टूटेगा उस दिन कोई नहीं रोएगा। लेकिन मेरा सूत का कंकण टूट गया तो नवद्वीप अनाथ हो जाएगा।'' रानी ने राजा से शिकायत की। राजा रानी को समझाने के बजाय सीधे रामनाथ पंडित के घर पहुंचा और अपनी पत्नी की गलती के लिए क्षमा मांगते हुए पूछा—''महाराज आपको मेरे राज्य में कोई कष्ट तो नहीं है।''

उन्होंने तनिक सोचकर कहा—''हां, एक कष्ट है। आपके राज्य के पास शुद्ध भाषा नहीं है।'' भाषा का प्रेम कैसा होता है, इसका पता उसके छिन जाने पर चलता है। फ्रांस पर जब जर्मनी का कब्जा हुआ तब शासन ने जर्मन पढ़ाने का निश्चय किया।

कहते हैं जिस दिन जर्मन पढ़ाई जाने वाली थी उसके एक दिन पहले अपनी मातृभाषा फ्रेंच का अंतिम पाठ पढ़ाने के लिए विद्यालय खुले। उस दिन जो विद्यार्थी कभी नियमित स्कूल नहीं आते थे, वे भी पढ़ने के लिए आए, तथा उन्होंने अश्रुपूरित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मातृभाषा, लोकभाषा, गुजराती, मराठी, बंगाली कन्नड़, राजस्थानी, तेलुगु जो भी हो उसमें बातचीत करनी चाहिए। देश में हमारे कामकाज की भाषा बिना किसी झिझक के हिंदी ही होगी और हमारा सारा राजकाज हिंदी में चलना चाहिए लेकिन विदेशों से संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी और हिंदी का समान रूप से उपयोग किया जा सकता है।

भाषा के संबंध में निर्णय, कुएं को दो बार कूदने की तरह अधूरे मन से और दो हिस्सों में नहीं लिया जा सकता।

कहते हैं कमालपाशा ने जब तुर्की को राजभाषा बनाने का निर्णय लिया था तो उन्होंने विद्वानों की सभा बुलाई और पूछा, ''तुर्की कितने दिनों में चलने लगेगी।''

विद्वानों ने कहा—''पंद्रह वर्षों में।''

वे बोले—''अच्छा समझ लो पंद्रह वर्ष आज पूरे हो गए। अब कल से तुर्की में काम होना चाहिए।''

क्या हम इससे सबक लेंगे—?

संसार के अनेक देशों में हिंदी पढ़ने की ओर रुचि बढ़ती जा रही है। श्री विश्वंभरनाथ पांडेय का कहना है कि मैं जब रूस में था तो मैंने मास्को की सेंट्रल लायब्रेरी में वहां के पुस्तकाध्यक्ष से पूछा—''आपके यहां भारतीय कक्ष में पिछले ग्यारह महीनों में किस विषय की पुस्तकें अधिक पढ़ी गई और कितने पाठकों ने पढ़ा।''

उसने बीस मिनट का समय मांगा और बताया कि हमारे यहां ग्यारह महीनों में जिस भारतीय विषय की पुस्तकें सबसे अधिक पढ़ी गई वह योग विषयक पुस्तकें हैं।''

फिर पूछा—''किन लेखकों की? क्या हठ योग की?''

बोला—''नहीं, पतंजलि के 'योगसूत्र' पर 'योग पर' और अनासक्ति पर। इन्हें पढ़ने वाले पाठकों की संख्या लगभग अठारह हजार है। हर पुस्तक की हमारे यहां सौ प्रतियां रखी जाती हैं। यदि आप हिंदी को अपनी राष्ट्रभाषा और विश्व भाषा के रूप में आसानी से देखना चाहते हैं तो उसके लिए आपको यह करना होगा—

(1) अपने प्रतिदिन के व्यवहार में मित्रों से बातचीत में, और किसी को पत्र लिखते समय राष्ट्रभाषा हिंदी का उपयोग करें।

(2) अपने घर पर अपने नाम की तख्ती, पत्र व्यवहार का पैड और अपने से संबंधित संस्थाओं एवं दुकानों के नाम पट्ट हिंदी में ही बनवायें।

(3) अपने से संबंधित संस्थाओं एवं दुकानों के नाम पट्ट हिंदी में ही बनवायें।

(4) अपने से संबंधित संस्था, उद्देश्य विधान और नियमावली तथा दुकानों के बिल, बीजक और रसीदें हिंदी में ही छपवाइये।

(5) यदि कोई आपसे अंग्रेजी में बातचीत करे तो उसकी हर बात का जवाब हिंदी में ही दीजिए। संभव है उसे अपने भारतीय होने की याद हो जाए।

(6) अपने से संबंधित संस्थाओं एवं विद्यालयों में होने वाले समस्त साहित्यिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एवं विचार गोष्ठियां हिंदी में ही आयोजित करें। यदि इसके बाद भी कोई विशिष्ट व्यक्ति अपना बड़प्पन थोपने को अंग्रेजी में भाषण दे तो एक व्यक्ति खड़े होकर अत्यंत विनम्रता से उनसे हिंदी में भाषण देने की प्रार्थना करे। संभव है कि वह आपकी बात न माने लेकिन एक अकेले आदमी के विरोध में बहुत ताकत होती है और उसका दूर तक असर होता है।

(7) अपने अहिंदी भाषी विदेशी मित्रों को, हिंदी में ही पत्र लिखिए। इससे हिंदी का गौरव बढ़ेगा।

मैंने समय-समय पर अपने कुछ विदेशी मित्रों को हिंदी में ही पत्र लिखे और यह देखकर असीम दुख हुआ कि उनमें से प्रत्येक ने बजाय शुद्ध अंग्रेजी के टूटी फूटी हिंदी में, साधारण कागज अपने हाथ से लिखकर हिंदी में ही जवाब दिया उनमें कितनी आत्मीयता है।

साथ में ऐसे कुछ पत्रों की प्रतिलिपि प्रस्तुत है।

सुदूर सोवियत रूस से बारान्निकोव लिखते हैं :

आदरणीय भाई उपाध्यायजी,

आपका स्नेह भरा पत्र मिला इसके लिए अनेक धन्यवाद। आप मुझे अपनी रचनाएं भिजवा रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई। मिलने पर अपनी तुच्छ सम्मति दूंगा।

मैंने भी लोक कथाओं के विषय पर कुछ काम किया। गत वर्ष दिल्ली में मेरी एक पुस्तक हिंदी में प्रकाशित हुई थी जिसका नाम 'सोवियत संघ की लोककथाएं' है। इसका प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस है। खेद की बात है कि यह पुस्तक अभी मेरे पास नहीं है नहीं तो आपको अवश्य ही भिजवा देता। आशा है क्षमा करेंगे। मेरा एक लेख व्यंगात्मक रूसी लोक कथा 'युग प्रभात' पत्रिका में 16 सितंबर सन् 1958, को प्रकाशित हुआ। यह पत्रिका केरल की सचित्र हिंदी पाक्षिक है जो कालिकट से प्रकाशित हो रही है।

हमारे यहां लोक साहित्य के अनेक काम करने वाले हैं। तो आप किन किन से परिचय लेना चाहते हैं जो या तो रूसी, या उक्रेनी उजबेक, तुर्की, एस्तोनिया के लोक साहित्य के हों। यह सब अलग अलग विशेषज्ञ है। तो सूचित करें। आप जानते होंगे कि 20 मई को आपका जन्म दिवस है तो इस अवसर पर मेरी बधाई तथा मंगल कामनाएं स्वीकार करें। मेरे योग्य सेवा सूचित करें।

6.5.62

आपका

बारान्निकोव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नयनों से अपनी मातृभाषा फ्रेंच का अंतिम बार अंतिम पाठ किया। शिक्षकों की आंखों से भी आंसुओं की अविरल धारा बह रही थी। इस दृश्य को देखकर राह चलता पथिक भी ठिठक कर खड़ा हो गया।

राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अपना दर्द व्यक्त करते हुए मारीशस के हिंदी कवि महेश रामजियावन ने लिखा है, ''परसों हिंदी हमारी संस्कृति की भाषा थी। कल वह हमारी नौकरी की भाषा हो गई। आज हमारे वोट की भाषा है। पता नहीं आने वाले कल को उसकी क्या नियति होगी।''

महादेवी वर्मा ने उज्जैन में विक्रम विश्वविद्यालय के अपने दीक्षांत भाषण में कहा था—''हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करके उसे अपेक्षित मान नहीं देना मंदिर में स्थापित मूर्ति को खंडित कर देने जैसा अक्षम अपराध है।''

गांधीवादी लेखक रामनाथ सुमन का कहना था—''हिंदी भाषियों में हिंदी के प्रति निष्ठा नहीं है। एक बंगाली दिल्ली में रहकर भी बंगला पत्र मांगता है, पुस्तक खरीदता है। मराठी भाषी अपने देश से दूर रहकर मराठी पत्र मांगता है, अपनी भाषा में एक निजत्व प्रभुत्व अनुभव करता है। जबकि एक हिंदीभाषी हिंदी प्रदेश में रहकर भी अंग्रेजी पत्र मांगता है। ऐसा कब तक चलेगा?''

विदेशियों की अपनी भाषा के प्रति निष्ठा का जिक्र करते हुए पूरे छः वर्ष रूस में रहने वाले तथा वहीं के हिंदी प्रकाशन गृह में काम करने वाले स्व. भाई गोपीकृष्ण गोपेश ने बताया था, ''जब मैं वहां के प्रमुख प्रकाशन अधिकारी से मिला तो उन्होंने बढ़िया अंग्रेजी में मुझसे पूछा—''क्या आप रूसी समझते हैं?'' मैंने कहा—''जी हां समझता तो हूं लेकिन बोल नहीं सकता।'' वे बोले—ठीक है मैं हिंदी समझता, लेकिन बोल नहीं सकता। इसलिए आइए हम समझौता करें कि हम जब भी एक दूसरे से मिलेंगे तो मैं आपसे रूसी में बात करूंगा और आप मुझसे हिंदी में।'' मैंने पूछा—''अंग्रेजी में क्यों नहीं, वह तो हम दोनों को आती है?''

वे बोले, ''आती है तो क्या। मैं अंग्रेजी का फर्स्ट क्लास स्कालर रहा हूं लेकिन वह हम दोनों की मातृभाषा नहीं है। और विदेशी भाषा में शुद्ध शब्दों में बातचीत करने की अपेक्षा अपनी मातृभाषा में तुतलाकर बातचीत करना ज्यादा श्रेयस्कर है।''

राष्ट्रभाषा के अभाव में हमारे देशवासियों को विदेशों में किस प्रकार अपमानित होना पड़ता है, इसका अनुभव सुनाते हुए कुलभूषण ने लिखा है—''एक बार एक जर्मन व्यक्ति ने कहा कि ''तुम भारतीय नहीं हो।'' मैंने पूछा—क्यों? बोला, ''तुम्हारी अपनी भाषा कहां है।'' मैंने कहा—''हमारी भाषा तो हिंदी है।'' इस पर उसने मेरा पासपोर्ट मांगा। और उसे दिखाकर कहा—''देखो तुम अंग्रेज हो, अंग्रेज के बच्चे। अंग्रेजी के बच्चे। तुम्हारा पासपोर्ट अंग्रेजी में है। तुम बोलते भी अंग्रेजी में हो। फिर तुम भारतीय कैसे हुए?''

श्रीलंका में वर्षों हिंदी पढ़ाने वाले भदंत आनंद कौशल्यापन ने लिखा है कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

''हमारे पड़ोसी एशियाई देशों में अनेक विद्यार्थी सिर्फ इसलिए हिंदी सीख रहे हैं कि उनके देश में जब हमारे नेता पहुंचे तो उनके हिंदी में दिए भाषण अपनी भाषा में अनुवाद कर सकें लेकिन जब हमारे नेता उनके देश में जाकर अंग्रेजी में भाषण देते हैं तो उसे सुनकर विद्यार्थियों के साथ हमारा भी सिर शर्म से झुक जाता है।''

आप हिंदी भाषी प्रांत के किसी भी शहर में चले जाइए वहां की दुकानों पर लिखा मिलेगा—''एवन लांड्री'', ''हेयर कटिंग सेलून'' ''फेन्सी क्लाथ हाउस'', ''स्वीट होम''। इस पर मजा यह कि न तो दुकानदार अंग्रेजी जानता है और न ग्राहक। फिर भी अंग्रेजी है कि उसका बोर्ड सबसे सिर चढ़कर बोल रहा है।

अगर बस में यात्रा करें तो हर खतरनाक मोड़ और सकरी घाटियों पर लिखा मिलेगा—''काशन'', ''हार्न प्लीज''। लगता है लोक निर्माण विभाग अहिंदीभाषी ड्राइवर की हिंदी के खतरे से सावधान कर रहा है।

एक बार एक उच्चाधिकारी ने परिपत्र जारी करते हुए लिखा—''चौदह सितंबर के दिन हमें हिंदी का पौधा रोपना है।'' उनका मतलब शासकीय कार्य में हिंदी के प्रयोग से था। लेकिन संबंधित अधिकारी ने तुरंत एक झाड़ लगाकर उस पर 'हिंदी दिवस' की एक तख्ती लगाकर आज्ञा का पालन यथाविधि कर दिया।

एक बार मैंने एक स्टेशन मास्टर से पूछा, ''हिंदी को आने में कितना समय लगेगा।''

बोले—''अभी पच्चीस वर्ष नहीं आती जी।''

मैंने कहा—''मैं रेलवे की हिंदी समिति का सदस्य हूं।''

बोले—''कल आ जायेगी सर, चाय मंगाऊं।''

मैंने कहा—''चाय नहीं, हिंदी को आने दो।''

एक दिन एक अहिंदीभाषी स्टेशन मास्टर ने पूछा—''भाई साहब हमें एक व्यापारी ने फोन पर धन्यवाद दिया तो हमने कह दिया कोई जरूरत नहीं इस पर वह नाराज हुआ। वास्तव में हमें क्या कहना चाहिए? मैंने कहा ''नो मेंशन'' का अर्थ है कोई बात नहीं। यदि आप कोई जरूरत नहीं कहेंगे तो वह नाराज होगा ही और वे खुश होकर चले गए।''

एक दिन एक सज्जन बोले—यदि हम 'प्रकाश' को परकाश कहते हैं तो इससे क्या सूरज का उजाला कम हो जाता है। इस पर विष्णु प्रभाकर ने कहा था—''आप 'प्रकाश' को 'परकाश' कहें हमें कोई आपत्ति नहीं, लेकिन यदि आप—'कल्पना' को 'कलपना' कहेंगे तो आपको ही 'कलपना' पड़ेगा।

एक बार मध्य रेलवे के महाप्रबंधक महोदय ने सहज ही पूछा ''रेलवे में हिंदी की प्रगति का क्या हाल है?''

मैंने कहा, ''रेलवे के जनरल मैनेजर महाप्रबंधक बनकर हिंदी में बातचीत कर रहे हैं, यही क्या कम प्रगति है।''

हमने त्रिभाषा सूत्र को मान्यता दी थी। जब हम घर में रहें तो हमें अपनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वि.ए. चेर्निशोव मास्को से लिखते हैं

प्रिय मित्र,

आपका कृपा पत्र और बुक पोस्ट यथा समय प्राप्त हुआ। सबके लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूं। दोनों पुस्तकें गंभीर शोध कार्य के सुंदर फल हैं। अतः आप बधाई के पात्र हैं। मेरे कार्य में वे बड़े महत्व की होंगी। हिंदी में प्रकाशित लोक साहित्य की सूची भी अत्यंत उपयोगी है। जो लेख आपने भेजे हैं उन्हें मैंने दिलचस्पी लेकर पढ़ा है। पढ़कर प्रसन्नता हुई है। आपने दो व्यंग्य निबंधों (गरीब और अमीर पुस्तकें और धुंधले कांच की दीवार) का जों उल्लेख किया है उन्हें भी मैं रुचि से पढूंगा। हिंदी साहित्य में व्यंग्य का अभाव है और दो कमलों से आपने उसकी पूर्ति की है।

प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा में

5.3.67

आपका ही

वि.ए. चेर्निशोव

वी.ए. चेर्निशोव मास्को

प्रिय महोदय,

आपका 25 मार्च 67 दिनांक का पत्र यथा समय मिला है। धन्यवाद। उसमें जो बातें आपने लिखी हैं वे मेरे कार्य के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होंगी। उससे भी अच्छा होगा अगर अपनी जिन पुस्तकों का आपने उल्लेख किया है आप भेज दें। ''क्योंकि रोटी का टुकड़ा, आम के स्वाद के विवरण से कहीं अच्छा है'' विशेषकर हिंदी में प्रकाशित लोक साहित्य से संबंधित पुस्तकों एवं लेखों की एक सूची जो आपने तैयार की है मुझे दिलचस्पी है।

आपने रूसी लोकगीतों को पढ़ने की इच्छा प्रकट की है। मगर जहां तक मुझे पता है रूसी लोकगीतों का प्रकाशन न हिंदी में हुआ न अंग्रेजी में हुआ अब तक। सिर्फ रूसी में वे प्रकाशित होते हैं। अगर रूसी सीख लें तो आपकी इच्छा पूरी हो सकती है।

हिंदी सेवा का जो कार्य मैंने अब तक किया है उसका विवरण बहुत ज्यादा विस्तृत नहीं होगा। पहिले पहल भाषा विज्ञान के क्षेत्र में कुछ कार्य हुआ है। 1965 में हिंदी के साधारण वाक्य का विन्यास नाम के निबंध का प्रकाशन हुआ-250 पृष्ठों वाले।

दूसरे हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भी कुछ काम हुआ है जिसके फलस्वरूप 'रेणु के उपन्यास', 'आधुनिक हिंदी साहित्य में जाति का विवरण' आदि निबंध प्रकाशित हुए।

कई कृतियों का अनुवाद भी किया। रेणु के 'मैला आंचल' नामक उपन्यास,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भीष्म साहनी, मार्कण्डेय, मोहन राकेश और राजेंद्र यादव के कहानी संग्रह तैयार तथा अनूदित भी किए।

आपका ही
वि.ए. चेर्निशोव

3.5.67
प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
अकादमी ऑफ साइंसेज, मास्को

ओदोलेन स्मेकल चेकोस्लोवाकिया से लिखते हैं

आत्मीय बंधु रामनारायण भाई,

नववर्ष पर शुभकामनाएं।

कोई आठ वर्ष पूर्व 1975 में हम मिले। तभी आपने अपनी दो पुस्तकें भेंट करने की कृपा की। 'निमाड़ी का लोक साहित्य और संस्कृति', 'कुंकुम कलश और आम्र पल्लव'।

हिंदी के दूसरे कार्यों में रत होने के कारण आपकी रचनाएं पड़ी रहीं पिछले वर्ष तक। किंतु सौभाग्यवश दो मास हुए मैंने उन्हें पढ़ने के लिए समय निकाला। अनेक वर्षों से मुझे लोक साहित्य में विशेष रुचि है अतः कोई आश्चर्य नहीं कि लोक साहित्य विषयक पुस्तक मुझे न केवल भायी पर मैंने उसे अत्यंत उपयोगी पाया।

जहां तक कुंकुम की बात है बस अद्भुत। दो बार उसे पूरा पूरा पढ़ा। सरल किंतु सरस ग्रामीण वातावरण मानों मेरे कमरे में यहां भारत से दूर चेकोस्लोवाकिया में हो। अनेक धन्यवाद।

अनेक वर्षों के बाद इस पुस्तिका के लिए 25 वर्ष पहले मैंने चेकभाषा में 'गोदान' का अनुवाद किया था। पर ग्राम जीवन की झांकियां आपके निबंधों में एकदम सुस्पष्ट और काव्यमय।

इस प्रकार के वास्तविक भारतीय जीवन पर पुस्तकें अधिक हैं आपकी निसंदेह। कृपा कर उनमें से कुछ और कुंकुम या चंदन भेजने का कष्ट करें।

प्रेम बना रहे। सधन्यवाद।

आपका
ओदोलेन स्मेकल

3.1.83

प्रिय भाई रामनारायणजी,

सप्रेम वंदे।

मैं एक सप्ताह के लिए कवि सम्मेलन में भाग लेने के लिए दिल्ली आया हूं। दो महीने के बाद तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आऊंगा। यहां राजधानी में आपकी कुछ पुरानी प्रकाशित पुस्तकें खरीदने का विचार था, लेकिन पाने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में असफल रहा। मेरे पास केवल कुंकुम कलश और आम्र पल्लव है। जो मुझे इतनी पसंद आई कि दूसरी इस ढंग की आपकी पुस्तकें प्राप्त करने का प्रयत्न किया। पता नहीं आप विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर दिल्ली पधारेंगे या नहीं। आप यदि अपनी कुछ पुस्तकें मेरे नाम पर चेकोस्लोवाकिया राज दूतावास दिल्ली में दिला सकें तो आपका अत्यंत आभारी रहूंगा। दूतावास का पता नीचे दे रहा हूं।

आपकी प्रिय चिट्ठी मुझे मिली। धन्यवाद। अति व्यस्त रहने के कारण वह निरुत्तर रही, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूं। आशा है, आप सपरिवार कुशलपूर्वक हैं। विश्वास है हम यहां दिल्ली में दो महीने बाद मिलेंगे। सधन्यवाद।

14.8.83

आपका चेक भाई
ओदोलेन स्मेकल

प्यारे भाई रामनारायणजी,

सप्रेम वंदे।

यहां आकर आपसे, विशेषकर आपसे मिलने की बहुत इच्छा थी। सम्मेलन के कारण लगता है यह असंभव है।

चेक दूतावास से मुझे आपकी भेजी हुई रचनाएं मिलीं। प्राप्त कर आपका अत्यंत आभारी हूं। मुझे विश्वास है कि अगले वर्ष जब मैं यहां फिर आऊंगा, आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

आप सपरिवार स्वस्थ व सकुशल रहें, इन शुभकामनाओं सहित तथा सधन्यवाद।

11.11.83

आपका चेक भाई
ओदोलेन स्मेकल

□

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरा सिर शर्म से झुक जाता है जब एक भारतीय दूसरे भारतीय से विदेशी भाषा अंग्रेजी में बात करता है, खासतौर से विदेशों में।

—*जवाहरलाल नेहरू*

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—*दयानंद सरस्वती*

एक दिन हिंदी एशिया नहीं विश्व की पंचायत में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

—*गणेश शंकर विद्यार्थी*

हम मारीशस को अपनी जन्म-भूमि मानते हैं, किंतु हिंदी को अपनी मां।

—*सोमदत्त बखोरी (मारीशस)*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समकालीन हिंदी साहित्य : एक परिदृश्य

प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी

समकालीन हिंदी साहित्य के स्वरूप को समझने के लिए यह जरूरी है कि स्वाधीनता के बाद पांचवें दशक में लेखकों में उत्पन्न मोहभंग की स्थिति के कारणों को ठीक ढंग से समझा जाए। 1947 के बाद समाज के विघटन का दबाव तथा परंपरा से हमारे संबंधों का टूटन लेखकों के लिए गहरी यंत्रणा की बात थी। पांचवें दशक के अधिकतर लेखकों ने पश्चिमी मॉडर्निज्म की सहायता से एक भयानक कृत्रिम दुनिया की रचना की। कई लेखकों ने पश्चिम की ओर देखना शुरू किया और इलियट, मलार्मे, इयेट्स या बॉदलेयर को अपना गुरु मानना शुरू कर दिया और इस तरह टैगोर, भारती, प्रेमचंद, कुमार आसन, श्री अरविंद तथा गांधी नजर-अंदाज कर दिए गए। प्रयोगवादियों ने आंतरिक यथार्थ को लेकर चिंता शुरू कर दी। साहित्य के क्षेत्र में बुद्धिवादिता का प्रवेश हुआ और आधुनिकता 'बुद्धि-परीक्षा अभिमुखी' बौद्धिक प्रणाली में बदल गई और वह 'अखंड अनुभूति' नहीं रही जो व्यक्ति के केंद्र को भौतिक तथा बौद्धिक दुनिया से जोड़ती है और उसे व्यक्तिगत आस्था, पहचान तथा सामाजिक साझेदारी के बारे में आश्वस्त करती है। भारतीय यथार्थ की पश्चिमी मॉडल से व्याख्या नहीं की जा सकती। इस तरह की कोशिश उसे आम जनता और उसके यथार्थ से काटती है। यहां तक कि अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप पश्चिम से आयातित अग्रवर्ती तथा प्रगतिशील विचारधाराएं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शहरी शिक्षित समुदाय में सीमित रहीं और हिंदी साहित्य की निरंतर धारा का हिस्सा बने बिना स्वतंत्र रूप में विकसित हुईं। हालांकि सामाजिक यथार्थ का साहित्य, जिसकी जड़ें धरती में थीं सम-सामयिक हिंदी साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति बनकर प्रसारित हुआ। यह स्वाधीनता आंदोलन के समय मध्यवर्गीय भारतीय तथा लोक कवियों द्वारा निर्मित राष्ट्रीय सचेतनता का परिणाम था।

प्रारंभिक चरण में राष्ट्रीयता धर्म के मानवीकृत रूप में प्रसारित हुई जिसका बल स्वच्छ सामाजिक जीवन और सुधार पर था। यहां तक कि हिंदी साहित्य में छायावाद एक प्रमुख सामाजिक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ जिसने स्वाधीनता आंदोलन का उद्घोष किया। यदि पहले, रामकृष्ण मिशन, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज के समाज-सुधार आंदोलन के फलस्वरूप लेखकों में समाज की नैतिक अवनति के प्रति उत्कंठा प्रकट हुई थी अब चौथे दशक के बाद, लोगों में फैली गरीबी तथा राष्ट्रव्यापी उत्पीड़न के लिए विक्षुब्धता दिखाई पड़ी। स्वाधीनता के बाद लेखकों में राष्ट्र और समाज को लेकर यह आशा थी कि अब सब तरह की बहुतायत और समृद्धि होगी मगर समय के साथ यह सपना सच नहीं हो सका और सच होने का कोई रास्ता भी नजर नहीं आया। पहले पहल इसके परिणामस्वरूप निराशा फैली, मोहभंग की स्थिति भारतीय मन में पैदा हुई मगर नाना कारणों से हावी अस्तित्ववादी वेदना, ईश्वर की मृत्यु या बंजर भूमि आदि विचारों से इसका कोई सरोकार नहीं था। भारत की आम राजनैतिक स्थिति, विशेष रूप से 1931 के गांधी-इरविन समझौते के बाद, ऐसे भी काफी निराशाजनक हो गई थी जिसका उल्लेख पंडित नेहरू ने अपनी आत्मकथा में (पृ. 257-259) किया था। सन् 1905 के बंगाल विभाजन को भारतीय जनता ने पूरे तौर पर अस्वीकार कर दिया था मगर 42 साल के बाद उससे भी बड़ा देश विभाजन बड़ी निर्जीवता के साथ स्वीकार लिया गया। इसके फलस्वरूप लेखकों में जबर्दस्त दर्द और अवसाद फैला और उनके मन में नैतिक तथा आंध्यात्मिक दरारें पैदा हो गईं। इसके ऊपर अर्थनैतिक असंतुलन, भ्रष्टाचार, राजनैतिक मिथ्याचार ने लेखकों के दर्द को क्रोध में बदल दिया। छठे दशक में सपनों और मूल्यों को रोमानी भावावेग कहकर नकार दिया गया। राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारियों, संस्था और व्यवस्था के खिलाफ विरोध जताया गया और प्रतिबंधित परंपराओं का बहिष्कार अनिवार्य हो गया। अप्रतिरोध्य स्थितियों ने युवा लेखकों को प्रतिपक्षी बनने के लिए मजबूर कर दिया—उनमें निराशा फैल गई और लगा कि उन्हें धोखा दिया गया। पांचवें दशक के नाना प्रकार के प्रयोगों से प्रभावित व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को त्याग दिया गया। अब युवा पीढ़ी ने यंत्रणा को अपना विषय बनाया और बंधी हुई मुट्ठी से संघर्ष पर लिखना शुरू किया। साहित्य दलितों और शोषितों के नजदीक सरक आया। इसके बाद सातवें दशक का नक्सल आंदोलन शुरू हुआ और उसी के साथ साहित्य के दरबार मे उत्तर-आधुनिकता का प्रवेश हुआ। इन्हीं दिनों रघुवीर सहाय का काव्य संग्रह 'हंसो हंसो जल्दी हंसो' राजनीतिक संकट का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्वाभास देता है। 'रामदास' कविता असुरक्षा की अनुभूति का एक अनूठा दस्तावेज प्रस्तुत करती है।

सातवें दशक के प्रारंभ में नई कविता का मुहावरा एकदम बदल गया है। आक्रोश, उत्तेजना, चुस्ती, ,व्यंग्य कहने को तबदीली पसंद कवियों की एक खास जमात आधुनिक हिंदी कविता को एक नया संदर्भ, सहज भाषा तथा रूढ़ियों से विद्रोह की चेतना प्रदान करती है। साहित्य के क्षेत्र में मुक्तिबोध के कारण और राजनीति के क्षेत्र में नाना कारणों से नव प्रगतिवादी सामाजिकता की ओर कवियों का रुझान बढ़ता दिखाई पड़ता है। मगर जब ज्ञानेंद्र पति यह कहते हैं कि यह कविता नहीं पत्थर है/बिल्कुल ठीक जगह फेंके जाने को तना/या जब आलोक धन्वा कहते हैं कि यह कविता नहीं है/यह गोली दागने की समझ है। तो इन कवियों की छटपटाहट का अहसास तो हो जाता है मगर यह समझ में नहीं आता है कि जिस लड़ाई की ये बात करते हैं वह क्या सिर्फ शब्दों से होगी? इनसे अलग कुछ ऐसे भी कवि हैं जिनके लिए कविता फैशन नहीं बल्कि एक आवश्यक शर्त है जो अस्वीकार से आरंभ होकर विद्रोह और क्रांति तक फैलती हुई कविता है जो प्रतिपक्ष की भूमिका ही नहीं निभाती एक सबल सार्थक समानांतर पक्ष की भूमिका भी प्रस्तुत करती है। हरिहर द्विवेदी का कहना है—

हम मजबूर हैं दुनिया के उन लोगों के साथ एकजुट होने को
जिनका इस धरती पर कुछ नहीं रह गया है
हमें माफ करना यदि हमारा गुस्सा
कटार की तरह तुम्हारे सीनों को चाक कर डाले या
वैसी हालत में मुझे तो कोई दुःख न होगा क्योंकि तुमने
हमारी नजरों से हमारी शर्म
हमारे सीने से हमारा प्यार
हमारे तन से हमारा मन
हमारे श्रम से हमारा धन
और
हमारी धरती से हमारा आकाश तक छीन लिया
हम
मैदान में खड़े हैं झोपड़ियां लपेटे।

दूसरी ओर समसामयिक कवियों की और एक जमात ने परिवेश से सक्रिय विद्रोह करते हुए इंग्लैंड के 'एंग्री यंगमैन' और अमरीका के 'बिटनिक' कवियों की तरह अपने अस्तित्व की उबकाई को कभी निषेध के जरिए या फिर जीवन की 'शून्यता' या विसंगति को व्यंग्य के जरिए प्रकट किया है। इन कविताओं में अस्वीकार, विक्षोभ तथा यथार्थ का सीधा साक्षात्कार होता है। आधुनिक जीवन की जटिलता को रोशनी में लाने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए इन कवियों ने भाषा की आम रीति पर हमला किया है। इनके लिए कोई भी अनुभव टालने के लिए नहीं, कोई भी कौतूहल वापसी के लायक नहीं। इसीलिए 'संदली सलींब' या 'मीनारों के टूटे हुए खंभे' या 'गंधहीन अगरबत्ती' या 'अदृश्य सड़क' या फिर 'डमरू की तरह बजता हुआ मेरा चरित्र' जैसे बिंब पाठक के लिए जीवित हो जाते हैं। इनकी कविताओं में गद्यमय जगत की चोट को अस्वीकारा नहीं गया है शायद गद्यमय विस्तृत जीवन को अंगीकार करने के प्रयास में इन्होंने कविता में भी गद्य को जगह दे दी है। धूमिल का कहना है :

जलते हुए जनतंत्र के सूर्योदय में
शरीक होने के लिए
तुम चुपचाप अपनी दिनचर्या का
पिछला दरवाजा खोलकर बाहर आओगे
जहां घास की नोक पर
थरथराती हुई ओस की एक बूंद
झड़ पड़ने के लिए
तुम्हारी सहमति का इंतजार कर रही है।

कविता की यह गद्यमय भाषा यही प्रमाणित करती है कि जीवन की संपूर्ण जटिलता, वक्रता, यहां तक कि अकाव्यमयता का सामना करने की साधना में यह भाषा गद्य की सपाटबानी को अख्तियार रही है। इन कवियों की सपाटबयानी अनुभव की आंच में तपकर प्रकट होती है इसीलिए इसमें गहराई होती है और अर्थ की यह गहराई हमारे मन को छूती है और कविता महज आरोपित नहीं लगती। मिसाल के तौर पर श्याम विमल की कुछ पंक्तियां हैं :

आदमी कितना कागज हो रहा है
चुप
प्रश्नों पर पांव धरता हुआ; मेरा आकार
निहायत छोटा पड़ा रहा है।
गंदे पैसे पर रेंगता हुआ जैसा कोई जुलूस
जिस्म जिस्म होकर बिखर रहा है।

अस्तित्ववादी इस जटिलता में भी एक अर्थ है मगर यह अर्थ युक्ति तर्क का अर्थ नहीं। कविता का अर्थ युक्ति की सीढ़ी चढ़कर नहीं आता। इसीलिए कविता के पृथक पृथक अंशों की अस्पष्टता को सह लेने पर आज की कविता के शब्द अपने अर्थ को हमारे मन में जगा पाते हैं। आज कविता पर आवरण चढ़ा हुआ नहीं है। आज कविता के अंदर प्रवेश कर उसका अर्थ समझना पड़ता है—उसे कुरेदना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, विवेक को जागृत करना पड़ता है। यह मानो एक मुहूर्त माया (मोमेंट्री इल्यूजन) है जिसमें तल्लीन होना पड़ता है। कैलाश वाजपेयी का कहना है :

देह के मरुस्थल से उठा हुआ
उठा हुआ धूमचक्र मुझे
फटे कागज-सा नभ में उड़ाए
उकता कर फिर किसी
नाली में फेंक आए ...
ढेर ढेर फूलों से लदी हुई राहें थीं
मैं जिद करके अवसाद की नंगी पगडंडियों पर निकल गया
कोयल की नीड़ खोज लेने की
धुन में
कोई शहजादा पतझड़ में बदल गया।

समसामयिक कवियों की इस जमात के कुछ कवियों ने 'अकविता' के नाम से यौन वर्जनाओं, तथा कुंठाओं को उघाड़कर पेश किया है मानो इनके लिए जिंदगी में छिपाने के लिए कुछ है ही नहीं। जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, मोना गुलाटी इसी ढंग के कवि हैं। इन कवियों को 'शरीर की राजनीति' से खेलने वाले कवि करार दिया गया है। यह सही है कि अकविता के ये कवि प्रेम, यौन-संबंध, सौंदर्य सबको उनके जटिल और वास्तविक रूप में उभारते हैं और इससे यथार्थ का वह रूप प्रकट अवश्य हुआ है जिसको आज की दोहरी संस्कृति अपने फायदे के लिए ढक कर रखना चाहती है। मगर कुछ कवि अपनी कुंठाओं तथा ग्रंथियों में जीते हुए जिस संकट (आइडेंटिटी क्राइसिस) का इजहार करते हैं, जैसे नरेंद्र धीर कहता है, दीवार से चिपकी जहरीली छिपकली से/हम जीवन से चिपके/अपनी कुंठाओं में गिलबिला रहे हैं, उससे उनके वक्तव्य में अनिश्चितता आ जाती है और उनका अर्थ संप्रेषित नहीं हो पाता है।

आज के कवियों की और एक जमात ने और कहने को कविता की दृष्टि से सबसे अधिक सशक्त जमात ने, समसामयिकता के साथ मिथकों की शाश्वता को जोड़कर कविता को एक नई भूमिका प्रदान की है और जातीय अवचेतन में छिपे परंपरा के प्रसंगों को आज के संदर्भ में तोल कर नए अर्थ भरने की कोशिश की है। नरेश मेहता की 'संशय की रात' राम के जीवन के एक प्रसंग से जुड़ा है और इसमें युद्ध और शांति की समस्या को उठाया गया है। कुंवर नारायण की आत्मजयी 'नचिकेता' के कथानक पर आधारित है जिसमें जीवन के बारे में नाना प्रश्न पूछे गए हैं और विनय का 'एक पुरुष और' विश्वामित्र और मेनका की कहानी है जिसमें संघर्ष से जूझते हुए मानव के अस्तित्व के संकट को उभारा गया है। इन सब समसामयिक प्रबंध काव्यों में मिथकीय प्रतीकात्मकता की सहायता से आधुनिक युग की समस्याओं को व्यापक भूमि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर प्रतिष्ठित किया गया है। अस्थिर समसामयिकता के संकट के ऊपर खड़े मानव को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में आंकते हुए सार्थक जीवन मूल्यों की पहचान कराई गई है। दरअसल प्रत्येक कविता के लिए समसामयिकता एक आवरण मात्र है क्योंकि अखबार की तरह समसामयिक बने रहना कोई नहीं चाहता। समसामयिक यदि कविता को वर्तमान मुहूर्त से हटाकर दूसरे मुहूर्त तक नहीं ले जाती यानी हमेशा के लिए जरूरी जीवन मूल्यों का अहसास नहीं कराती तो कविता की आधुनिकता बद्ध हो जाती है। श्रीकांत की 'मगध' काव्यकृति वर्तमान की सहायता से अतीत की व्याख्या है और मिथक की बड़ी ही प्रभावशाली अभिव्यक्ति है और इतिहास का एक नया आयाम देती है।

समसामयिक हिंदी कविता आधुनिकता बद्ध नहीं है। इन कविताओं को पढ़कर लगता है कि आज के संघर्षमय जीवन और जीवन के कृष्ण पक्ष के बावजूद आज भी वसंत आता है, सड़कें मोतियों और चमेली की सुगंध से महकती हैं, हंसों के जोड़े झील में विहार करते हैं, आश्विन के मेघ देखने कवि ललकता है और 'स्टेनगनों, जेलों, राजभवनों और निरपराध लाशों के अंधेरे में भी/फूल खिलते हैं/बच्चे हंसते हैं/युवतियां यौवन पथ पर लजाती हैं/माताएं बच्चों के चेहरे भूख में भी चूमती हैं।

केदारनाथ सिंह जीवन के अनुभवों को अधिक तीव्रता से पकड़ने और व्यक्त करने की कोशिश करते हैं। मंगलेश डबराल अपने पिता को याद करते हैं और आद्य प्रारूपों की नई व्याख्या देते हैं। चंद्रकांत देवताले कविता में नाटक रचते हैं, विनोदकुमार शुक्ल प्रतिकविता लिखते हैं, लीलाधर जगूड़ी की कविता उनकी ईमानदारी से पैदा होती है और अशोक वाजपेयी कहते हैं—

तब से हम चल रहे हैं
बहुत देर से एक घर भी दिख रहा है,
जहां हम उम्मीद करते हैं कि कुछ गुड़-पानी मिलेगा।
उसके पार धूप भी दिखती है
पर अपनी-अपनी उम्मीद लिए,
फिलहाल हम चल रहे हैं
उस मोड़ की ओर
उस घर की ओर
उस जल और धूप की ओर।

आज की हिंदी कविता में नगरीय भावधारा, व्यंग्यात्मक रुख, पौराणिक अनुक्रमों का संरचनात्मक बिंबों के रूप में निरंतर प्रयोग तथा भोग और योग की समस्याओं के साथ लगातार संयोग का प्रतिफलन है। समसामयिकता के इस दौर में कोशिश है सहज बनने की, भारतीय बनने की, आम जनता के नजदीक रहने की, सामाजिक सचेतन बने रहने की। वस्तुतः यह भारतीयता का प्रसार है। अब दलित कविता लिखी जा रही है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो पिछड़े वर्ग के दुःख-दर्द को व्यक्त करती है और उनके यथार्थ और न्यायोचित भविष्य की मांग करती है। अब लेखक इस विशाल देश के अवहेलित अंचलों के बारे में सचेत है और भोगा हुआ तथा विश्लेषित यथार्थ अभिव्यक्त करता है। अब कविता में बाड़े-बंदी टूट गई है और वह जीवन के नजदीक हो गई है।

यह बात थोड़ी अजीब लगती है कि आज से सौ साल पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने नाट्य-रचना की जो तीन धाराएं चलाई थीं, वे आज की समकालीन नाट्य-रचना में वैसी ही बहती दिखाई पड़ती है। एक ओर भारतेंदु ने 'विद्या सुंदर' नाटक की रचना कर सामाजिक प्रेम के श्रृंगारी रूप को हमारे सामने पेश किया था। आधुनिक संदर्भ में यह प्रेम स्त्री-पुरुष के संबंध विश्लेषण का आधार बन गया है जिसको लेकर मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेंद्र वर्मा, शंकर शेष ने कई नाटकों की रचना की है। आज पुराना प्रेम स्त्री-पुरुष के आपसी संबंधों को जोड़ नहीं पा रहा है। मोहन राकेश के प्रत्येक नाटक में—'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों का राजहंस' और 'आधे अधूरे' में—इकट्ठे रहते हुए भी स्त्री-पुरुष के लिए यह दुनिया अपरिचित है। एक विरोधाभास की दुनिया जहां एक ओर व्यक्ति घर बसा नहीं सकता और दूसरी ओर जिस दुनिया में वह रहता है वह उसके लिए अनजान है। प्रत्येक पात्र की जिंदगी आधी-अधूरी है। मोहन राकेश ने इस सामाजिक विच्छिन्नता की तस्वीर को इतनी प्रखरता के साथ पेश किया है कि अभिनय के अंत में ऐसा महसूस होता है कि राकेश के पात्र फुट-लाइट के पास खड़े हो कर दर्शकों को संबोधित करते हुए कह रहे हैं—'अब आप घर जाइए, जहां सब कुछ—हम बिल्कुल निश्चित हैं/इसी प्रकार आधा-अधूरा ही दिखाई पड़ेगा-कुहासे में छिपे आदमी की धुँधली आकृति की तरह।' दर्शक भी अपना आसन छोड़ते हुए अपने को पूछता है—कहीं कुछ गड़बड़ है, क्यों ठीक नहीं, मगर कहां? दर्शकों को जवाब नहीं मिलता मगर उनके जेहन में एक बात बैठ जाती है—यह दुनिया एक स्टेज है और जिंदगी सपना नहीं, अधूरी है—यह अनुभूति हमें गहराती रहती है। शंकर शेष, लक्ष्मीनारायण लाल आदि भी अपने नाटकों में—'रक्तबीज' या 'दर्पण' में मध्यमवर्ग के पारिवारिक यथार्थ की उन स्थितियों का उल्लेख करते हैं जो स्त्री-पुरुषों के संबंधों को आज की दुनियादारी की होड़ में बहुत ही ट्रैजिक बना कर प्रकट करती हैं। इस संबंध को सुरेंद्र वर्मा ने 'सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक' में ऐतिहासिकता के सहारे और भी निर्मम बनाकर पेश किया है—नाटक का राजा संतानहीन है इसीलिए मंत्री प्राचीन नियोग प्रथा का सहारा लेकर रानी के पास एक दूसरा आदमी भेजता है। इत्तफाक से वह रानी का पुराना प्रेमी था। नाटक में उसी रात का वर्णन है। राजा के शब्दों में 'सारी रात का चक्रवाक—मैं, कुमुदिनी और चन्द्रमा जागेंगे' और इस तरह इन प्रतीकों की सहायता से मानव-संबंधों की जटिलता की तीव्र नाटकीय अभिव्यक्ति है। इन नाटककारों में लक्ष्मीनारायण लाल अपने नाटक 'मादा कैक्टस', 'सूखा सरोवर', 'कर्फ़्यू' आदि में स्त्री-पुरुष के काम-व्यापार की बाह्य क्रिया में इतना ज्यादा उलझते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं कि उनके स्थूल प्रतीक आंतरिक तनावों को ठीक ढंग से आंक नहीं पाते।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने दूसरी ओर 'नीलदेवी' नाटक की रचना कर नाटकों में नवजागरण तथा देश-प्रेम का प्रसार किया था जिसका प्रभाव जयशंकर प्रसाद के नाटकों में उसी रूप में दिखाई पड़ा मगर समकालीन नाटकों में उसका बदला हुआ रूप उभर कर सामने आया है। धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में देश की रक्षा के लिए किए जाने वाले युद्ध के सवाल को उठाया गया है। भारती के मुताबिक युद्ध किसी देश के इतिहास को रंगीन नहीं बनाता। वह युद्ध में मरे हुए सैनिकों के हाहाकार को ही प्रकट करता है और नतीजे के तौर पर आम आदमी आस्था-अनास्था से जूझता हुआ खोखली निरंतरता में जीता है। आज इतिहास को चुनौती देकर बदलने वाला इन्सान नहीं रहा इसीलिए कृष्ण को भी मैदान छोड़ना पड़ता है। महाभारत के जमाने से जो संपूर्ण नैतिक पतन शुरू हुआ था वह अब भी जारी है। सुरेंद्र वर्मा 'छोटे सैयद और बड़े सैयद' में इतिहास को बदलने की चेष्टा में बड़े सैयद की कोशिशों में नाकाम होते दिखाते हैं और जिंदगी के आखिरी लम्हे में हम उसे कहते सुनते हैं कि 'यह मुल्क ही गलत है।' सिर्फ यह मुल्क ही नहीं नैतिक अराजकता के इस दौर में दुनिया का कोई भी मुल्क अपने को सही बनाए रख नहीं पा रहा है। फिर भी मानवता की खोज जारी रहती है। भीष्म साहनी के 'हानुस' नाटक मे इतिहास से एक छोटी-सी कहानी को लेकर यही प्रकट किया गया है कि व्यवस्था के सामने आदमी का कुछ चल नहीं पा रहा है फिर भी सत्य की खोज जारी रहती है। बादशाह को खुश करने के लिए हानुश एक बहुत ही उम्दा मीनार घड़ी बनाता है। बादशाह कलाकार को सम्मानित तो करता है मगर उसकी आंखें भी निकाल लेता है जिससे कि वह और घड़ियां न बना सके मगर आखिरकार घड़ी बनाने का भेद वह दूसरे को देने में कामयाब हो जाता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'अंधेरी नगरी' नाटक लिखकर राजनैतिक व्यंग्य नाटक लिखने की एक धारा चलाई थी। समकालीन हिंदी नाटकों में यह धारा सबसे तेज बह रही है। ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शतुरमुर्ग', बृजमोहन शाह का 'त्रिशंकु', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', दयाप्रकाश सिन्हा का 'कथा एक हंस की', कुसुम कुमार का 'सुनो शेफाली' आदि नाटकों में नाटकीय प्रतीकों एवं स्थितियों के सहारे खोखली व्यवस्था तथा बुद्धिजीवियों के खोखले आंतरिक संसार के विरुद्ध जबर्दस्त व्यंग्य किया गया है। 'शतुरमुर्ग' में सत्तालोलुप अधिकारियों की चरित्रहीनता का पर्दाफाश होता है और 'बकरी' में सामाजिक-राजनैतिक और धार्मिक स्थिति के कोढ़ को हमारे सामने उघाड़कर दिखाया जाता है। 'सुनो शेफाली' भी समकालीन यथार्थ के पराजित, हताश और अंधकारपूर्ण क्षण पर समाप्त होता है जहां दर्शक सुनते हैं कि शेफाली की आंखें बंद हैं। गले में कुछ फंसकर रह जाने की पीड़ा महसूस करती हुई वह खड़ी है। और नेपथ्य से आवाज आती है—'कायरों के मरण अध्याय इसी तरह हर रोज खुलते हर रोज बंद होते हैं।' मगर हिंदी का समकालीन नाटककार आदमीयत को हारता देखना नहीं चाहता भले ही बाहरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यथार्थ और तथ्य के धरातल पर आदमी हारता हो। पं. आनंद कुमार के उपन्यास पर आधारित 'बेगम का तकिया' का यही पैगाम है। नाटक में मुसलमान राजमिस्त्रियों के गांव को मीरा के माध्यम से तवायफ रौनक बेगम 'रोनकबाद' बनाने की असफल कोशिश करती है। बेगम की पुरजोर कोशिशों के बावजूद अकेला और कमजोर मगर ईमानदार पीरा लड़ता है जो मानव-सभ्यता के लंबे इतिहास में हर सच्चे आदमी की लड़ाई बन जाती है। नाटक के अंत में 'कानून के मुहाफिजों पर अगर शुबह हो जाए तो मजलूमों को खम ठोक देने चाहिए।' जैसे अलफाज यही सिद्ध करते हैं कि अंतिम विजय इन्सानियत की होती है।

समकालीन हिंदी नाटककारों के एक वर्ग ने अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन-आक्रोश को एब्सर्ड नाटकों की तकनीक की सहायता से प्रकट किया है। मिथकीय पात्रों की सहायता से मणि मधुकर अपने नाटक 'गंधर्व' और 'बुलबुल सराय' में राजनीतिक और सामाजिक अव्यवस्था पर कटाक्ष करते हैं और यथार्थ और फेंटेसी के योग से एब्सर्ड सी लगने वाली स्थितियों से नया अर्थ निकालते हैं। मणि मधुकर के नाटकों का संसार जीवन से थके, हारे, ऊबे और टूटे-फूटे ऐसे पात्रों का संसार है जो जीवन की नरक-यातना भोगने के लिए अभिशप्त हैं। धीरे-धीरे नाटककार इस नाटक का निर्माण करने वाली व्यवस्था को बेनकाब करता है और व्यंग्य के माध्यम से उस पर प्रहार करने का साहस दिखाता है। व्यवस्था का चूंकि कोई एक निश्चित चेहरा नहीं है, वह मौके के मुताबिक मुखौटे बदलती है इसीलिए नाटककार का व्यंग्य प्रहार भी चहुंतरफा है। मगर व्यंग्य करना ही उसका अंतिम उद्देश्य नहीं है। वह मानव मूल्यों और मानवता के प्रति कॉमिटिड है। मनुष्य की संघर्ष-शक्ति और उसके भविष्य के प्रति उसकी अटूट आस्था है। 'रस गंधर्व' के अंत में नाटक के सारे पात्र कहते हैं—

हम गंधर्व नहीं हैं। हम मनुष्य हैं और यह मानते हैं कि युद्ध में न देवताओं की विजय होती है, न दानवों की—मनुष्य के संकल्पों की विजय होती है। और सब गा उठते हैं कि जय हो, मानुष महाबली की जय हो। आगे सृजन-ज्योति तम का क्षय हो। जग का पंथ सदा कल्याणमय। उभरे-साहस, अग्नि, शक्ति जन की। टूटें—काल बेड़ियां बंधन की। खोलें—रस का रहस्य रंग जीवी। जग—का पंथ सदा हो कल्याणमय। इस मानवतावादी भरत वाक्य के बाद 'बुलबुल सराय' के अंतिम संवाद भी सुनने लायक हैं :

> *यह बुलबुल सराय है। एक बुलबुल थी। जो इस पहाड़ी पर प्रेम के, करुणा के गीत गाती थी। कोहरा छंटेगा। और वह बुलबुल फिर आएगी। क्योंकि उड़ान भरने के लिए—उसे पूरा आकाश सौंप देंगे। दूर होगा धुँधलका। और हम अपने संबंधों की, संबोधनों की नई व्याख्या करेंगे।*

दरअसल ये नाटक आइने की तरह हैं जिनमें हम अपना असली चेहरा तलाश कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकते हैं और अपने भीतर की भूली बिसरी संघर्ष शक्ति तथा सृजन-क्षमता को फिर से पहचान सकते हैं। मगर त्रिपुरारी शर्मा का 'काठ का घोड़ा' या स्वदेश दीपक का 'कोर्टमार्शल' जैसे नाटक समाज की कतिपय उन महत्वपूर्ण समस्याओं को उघाड़ कर हमें आतंकित कर देते हैं कि आईना धुंधला जाता है और हमें लगता है कि अरे ऐसे घिनौने समाज में हम जीते हैं, काश, यह समाज कुछ और होता!

कथा साहित्य के क्षेत्र में हिंदी लेखक भोगा हुआ सत्य को ही अधिक प्रकट करना चाहता है। हा:लांकि उत्तर-आधुनिकता के इस युग में मीडिया परिचालित तथा बाजार निर्देशित यथार्थ को नकारना मुश्किल ही दिखाई पड़ता है। उपन्यास और कहानी के द्वारा उपभोक्ता संस्कृति के तहत मुक्त जीवन के सस्ते मनोरंजन की ओर ही कई लेखकों का ज्यादा ध्यान है। इसीलिए सामाजिक यथार्थ की वह बुनियाद कहीं खोखली पड़ती जा रही है जिस पर हिंदी कथा साहित्य टिका हुआ है। इन सबके बावजूद उत्तर-आधुनिकता की एक सशक्त प्रवृत्ति के सहारे उपन्यासों के माध्यम से जड़ों की खोज बरकरार है। इसकी शुरुआत हुई थी रेणु के 'मैला आंचल' से। आंचलिकता का यह कोई रोमानी विवरण नहीं था, नॉसटैल्जिया नहीं थी। आजादी के बाद भारतीय मन को प्रकट करने वाला हिंदी का यह पहला उपन्यास था। यह संपूर्ण हिंदी क्षेत्र के ग्रामीण जातीय जीवन को प्रकट करता है। उपन्यास का मेरीगंज एक अंचल की मोहकता और उसके मैलेपन को एक साथ अभिव्यक्त करता है। यह अंचल राही मासूम रजा के लिए गाजीपुर शहर बन जाता है और इस शहर को लेकर वे 'आधा गांव' को रचते हैं। कहने को इस उपन्यास से हिंदी कथा साहित्य में एक नया युग शुरू होता है। कदाचित् हिंदी का यह पहला उपन्यास है जिसमें भारतीय मुस्लिम समाज के सामाजिक-सास्कृतिक व मनोवैज्ञेनिक जीवन का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। दरअसल आंचलिक उपन्यासों में विभिन्न अंचलों की सहायता से एक संपूर्ण भारत को पकड़ने की चाह है जहां नए भारत के महत्वपूर्ण आर्थिक-सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परीक्षणों की धूम है और पुरानी मूल्य व्यवस्था के टूटन से बचाने की कोशिश है। ऐसे उपन्यास वातावरण प्रधान होने के बावजूद इनमें एक अंचल में रहने वाले चरित्रों की भावानुभूति, आशा-निराशा, कामवासना, शक्ति-दुर्बलता, सौंदर्य और पंकिलता को उबारा जाता है और अंचल का पूरा समाज अपनी नग्नता के साथ प्रगट हो पाता है और तब उस अंचल में हमें भारत झाँकता हुआ दिखाई दे जाता है। यह देश हिंदू-मुसलमानों का देश है। इसकी संस्कृति सांझी-संस्कृति है। इसे बेगाना कैसे कोई माने? राही मासूम रजा इसी बात को बड़े दिलचस्प तरीके से भूमिका के अंत में कहते हैं ... "मैं किसी को यह हक नहीं देता कि वह मुझसे यह कहे—'राही! तुम गंगोली के नहीं हो। इसीलिए गंगोली छोड़कर, मिसाल के तौर पर रायबरेली चले जाओ।' क्यों चला जाऊं साहब मैं? मैं तो नहीं जाता।"

हिंदी उपन्यासकारों ने इन अंचलों की सहायता से एक संपूर्ण भारत की अस्मिता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को पहचानने की कोशिश की है। भारत की पहचान को रेखांकित करते हुए राही मासूम रजा या फिर 'राग दरबारी' के श्रीलाल शुक्ल या 'अलग अलग वैतरणी' के शिवप्रसाद सिंह, अथवा 'काला जल' के शानी या 'जिंदगीनामा' की कृष्णा सोबती या 'जल टूटता हुआ' के रामदरश मिश्र प्राच्यविदों के द्वारा तैयार मिथक को झुठलाते हुए यह स्पष्ट कर देते हैं कि भारतीयता का अर्थ भाग्यवादिता नहीं, मात्र समन्वय तथा सौषम्य नहीं, यथार्थ की वह प्रखरता भी है जो पछुआ हवा की तरह जीवन के सूखेपन को, उसकी निदारुणता को बड़ी निर्ममता के साथ प्रकट करता है। नक्सल आंदोलन के ठीक आगे सन् 1968 में प्रकाशित श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' शिवपालगंज गांव के जरिए आजाद भारत के सत्ताधारियों का भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, सत्ता हथियाना व उसके दुरुपयोग का चित्र है। समसामयिक युग का यह प्रतिनिधि उपन्यास उस दौर के नकारवादी रुझान का आईना भी है। कुछ कर न पाने पर व्यंग्य का सहारा लेना है। 'अलग-अलग वैतरणी' में आलोक और अंधकार की माया कुहेलिका अपनी वास्तविकता का अहसास कराती है। 'जिंदगीनामा' दृश्यों के द्वारा पंजाब के ग्रामीण जीवन को पूरी संश्लिष्टता के साथ उभारता है, उसके रोमानी रूप को प्रकट करता है और एक जीवंत जन-संस्कृति को अभिव्यक्त करता है।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में भीष्म साहनी का 'तमस' 'संप्रदायवाद के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक है। इस उपन्यास की रचना सांप्रदायिक शक्तियों व उसके घिनौने परिणामों का उद्घाटन है। वे उपन्यास भी महत्वपूर्ण हैं जो शहरी जीवन से जुड़े हुए पात्रों को पूरी सत्यता के साथ प्रकट करते हैं और पश्चिमी माडर्निज्म के झूठे और व्यक्तिनिष्ठ फार्मूला के प्रयोग से मुक्त है। हालांकि शहर के जीवन को उसकी जटिलता के कारण प्रकट करना कठिन है और फिर इसमें लेखक की पेचीदगी भी जुड़ी रहती है। इन सब उपन्यासों का केंद्रीय तनाव ग्रामीण तथा पारंपरिक स्थितियों से आगे बढ़कर शहरी तथा आधुनिक स्थितियों के साथ समझौता है। इस तनाव का वर्णन एक ओर पीछे छूटे हुए गांवों के लिए रोमानी नॉसटैल्जिया एवं दूसरी ओर क्रूर तथा निर्वैयक्तिक शहरों के आतंक, खून और कामवासना के द्वारा किया गया है। इस संदर्भ में जगदंबा प्रसाद दीक्षित का 'मुरदाघर' का उल्लेख किया जाता है। महानगर के घिनौने जीवन को उसकी पूरी वास्तविकता के साथ अंकित करते हुए जगदंबा प्रसाद दीक्षित भद्दे लगने वाले चरित्रों के प्रति सहानुभूति जताते हैं। हमें निम्नतर वर्ग की परिस्थितियों के बारे में सोचने के लिए मजबूर करते हैं। राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, रवींद्र कालिया, मार्कण्डेय, गिरिराज किशोर, ममता कालिया, गोविंद मिश्र, रवींद्र भल्ला, पंकज बिष्ट ने शहरी जीवन से जुड़ी हुई सामाजिक स्थितियों को, जैसे संयुक्त परिवार का टूटना, ग्रामीण मध्यमवर्ग का विघटन, राजनेता और व्यापारियों द्वारा शोषण, सांप्रदायिक समस्या, ग्रामीण गरीबी और शहरी बेरोजगारी, शिक्षितों की त्रासदी, धार्मिक कठमुल्लापन और काम-वर्जनाओं का प्रखरता के साथ वर्णन किया है। सांप्रतिक उपन्यासों में कृष्णा सोबती के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लघु-उपन्यास 'ऐ लड़की' का उल्लेख किया जा सकता है। यह उपन्यास इस मरण-युग की निर्भय जिजीविषा का उपन्यास है। इसकी कहानी स्वीकार, विडंबना, निर्मोह और अवसाद सब मिलाकर शहरी जीवन में स्त्रियों की नियति की कहानी है। आलोचकों का कहना है कि उपन्यास के क्षेत्र में जैसी सक्रियता है उस अनुपात में सफलता नहीं। मगर फिर भी कहना पड़ता है कि इन उपन्यासों के अधिकतर नायक शहर के निराशावादी युवक हैं जो एक ओर आदर्श और अध्यात्म तो दूसरी ओर आंतरिक स्वतंत्रता और प्रगतिशीलता की चाह के बीच फंसे हुए हैं। और इसीलिए सफलता का वह रूप प्रकट नहीं हो पाता जो जीवन की भावात्मक स्थिति में संभव है। हालांकि नरक की भयंकरता में भी जीवन की ललक है। नगर और ग्राम्य चेतना तथा अतीत और वर्तमान की दिशाओं के अंतर को पाटने के लिए समसामयिक काल में नरेंद्र कोहली उपन्यासों में मिथकों का प्रयोग कर रामायण और महाभारत को नए आयाम देते हैं और आधुनिक दुर्दशा को उसकी गहराई में प्रस्तुत करते हैं। आज का टटका उपन्यास है सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए।' परंपरा और आधुनिकता की ज्वलनशील टकराहट से प्रकाशित आज के जीवन का महाकाव्यमय अवलोकन है। यह कथा-कृति आत्मान्वेषण और आत्मोपलब्धि का दस्तावेज है। विद्यानिवास मिश्र ने ललित और वैचारिक निबंध लिख कर इस प्रश्न को बार-बार उठाया है और परंपरा और आधुनिकता की टकराहट में परंपरा को बंधन नहीं माना है। अपनी नजरों से अपनी आत्मोपलब्धि की उनकी कोशिश रही है।

यह सच है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के हिंदी साहित्य के केंद्र में उपन्यास नहीं हैं। आजादी का पहला दशक 'नई कहानी' के लिए मशहूर है। भैरवप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'कहानी' पत्रिका ने कहानीकारों को नई सर्जना के लिए उत्साहित किया। पांचवें दशक की कहानियों में स्वाधीन भारत की आकांक्षाओं, आशाओं की नई चेतना के साथ निराशाओं और मोहभंग की स्थिति को व्यक्त किया गया है। मोहन राकेश, राजेंद्र यादव एवं कमलेश्वर से यह सिलसिला शुरू हुआ। कमलेश्वर ने कहा कि नई कहानी मात्र जीवन खंडों या घनीभूत क्षणों का संप्रेषण न होकर उसमें निहित अर्थों या मूल्यों की कहानी है, जो अनेक स्तरों पर घटित होती है—आज कथ्य के चुनाव का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है, और इसीलिए अर्थगर्भा स्थितियों की महत्तासहज ही बढ़ गई है। कहानी के मंच पर आज तीन दशकों के लेखक सक्रिय हैं। निर्मल वर्मा, राजेंद्र यादव, अमरकांत, भीष्म साहनी, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, मृणाल पांडे, उदय प्रकाश, अब्दुल बिस्मिल्लाह, महीप सिंह, राजी सेठ आदि कई नाम गिनवाए जा सकते हैं। समसामयिक लेखक ने कहानी की संरचना को लेकर कई प्रयोग किए हैं। अब प्लाट जैवीय ईकाई के रूप में निर्मित नहीं होता, अब जीवन-चक्र के किसी बिंदु को सृजनात्मक तथा कलात्मक ढंग से पुनर्निर्मित कर दिया जाता है। ये कहानियां जीवन के यथार्थ के प्रत्येक पहलू को प्रकट करती हैं। अब कहानी का मूल्य कहानी के अंत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर आधारित नहीं होता। अब पारंपरिक ढंग से कहानी का वाचन खत्म हो गया है और प्रतीक, बिंब और दूसरी काव्य-प्रणालियों के द्वारा कहानी को अर्थपूर्ण बनाया जा रहा है। कथ्य की दृष्टि से समकालीन हिंदी कहानी महानगरीय जीवन से अधिक संबद्ध है। कहानीकार अनुभव के क्षेत्र के साथ जुड़ कर लिख रहा है। मगर इस बात को भी झुठलाया नहीं जा सकता है कि कहानी का रूप व्यावसायिकता से आक्रांत है। नई कहानी के क्रम में ही 'सचेतन' कहानी और 'अकहानी' के आंदोलन उभरे हैं। आठवें दशक में 'समांतर' कहानी आंदोलन ने अपनी अलग पहचान बनाई। मार्क्सवाद का आश्रय लिए बिना कहानी पुनः समाज के दुर्बल वर्ग की ओर लौटी। सुरेश उनियाल, इब्राहिम शरीफ आदि कथाकारों ने प्रतिरोधों को कहानी का विषय बनाया। हिंदी कहानी का वर्तमान परिदृश्य इन विविध आंदोलनों को अपने में समेटे हुए है। मगर यह सच है कि बिल्कुल आज की कहानी वही सशक्त बन पा रही है जो अपने कथ्य और अनुभव क्षेत्र में नया कुछ जोड़ पा रही है।

समसामयिक काल में हिंदी साहित्यकारों के जीवन को लेकर बड़े आकार में लिखित तीन जीवनियां प्रकाशित हुई हैं। एक, अमृतराय का 'कलम का सिपाही' जो प्रेमचंद का जीवन चरित है, दो, रामविलास शर्मा द्वारा लिखे गए दो भागों में निराला के जीवन और कृतित्व पर प्रकाशित ग्रंथ 'निराला की साहित्य-साधना' और तीन, शरत्चंद्र के जीवन पर आधारित विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित जीवनी 'आवारा मसीहा'। ये जीवनियां समकालीन हिंदी साहित्य को एक महत्वपूर्ण देन हैं और सर्जनात्मक और कलात्मकता की दृष्टि से उपन्यास की तरह रोचक हैं।

विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों के कारण समकालीन हिंदी साहित्य का एक बड़ा अंश विश्वविद्यालयीय आलोचना से भरा पड़ा है। ये आलोचक विदेशी आलोचना के मॉडलों के आश्रय से हिंदी लेखकों की बड़ी ही भ्रामक आलोचना करते हैं। आलोचना का कोई भी मॉडल विश्वजनीन नहीं हो सकता। एक निश्चित सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्थिति में उन मॉडलों का निर्माण होता है और इसीलिए किसी एक देश और काल विशेष के लेखकों को समझने के लिए विदेशी मॉडल अधिकतर निरर्थक प्रतीत होते हैं। मगर यह बात नहीं कि विश्वविद्यालयों में एकैडेमिक आलोचना का कोई सही रूप उभर नहीं पाया है। इस आलोचना पद्धति का पाथेय विश्लेषण है और लक्ष्य, सौंदर्य। कवि के सृजन की आलोचना करते हुए उनके भीतर एक सुनिर्दिष्ट नियम की क्रियाशीलता का अनुभव करना एवं सृष्टि-कर्म पर इस नियम के सामग्रिक प्रयोग का विश्लेषण करना एवं उसमें से जीवन के संपर्क में कवि के वक्तव्य को ढूंढ़ निकालना ही इस आलोचना का क्रिया रूप है।

दूसरी धारा शास्त्र-मुक्त संवादी आलोचकों की है जिनमें विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी, नेमीचंद्र जैन, राजेंद्र यादव आदि प्रमुख हैं। इन आलोचकों ने प्राकरणिक आलोचना के प्रति सचेतनता दिखाई है अथवा लेखक-मन के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनिश्चित क्रिया-कलाप की व्याख्या की अपेक्षा प्रत्यक्ष वस्तु यानी साहित्य-कर्म के रूप-विश्लेषण के प्रति आग्रह दिखाया है अथवा साहित्य की संश्लिष्ट संगठनात्मक व्याख्या की है। हाँ, समाजनिष्ठ आलोचना-पद्धति के प्रति शास्त्र मुक्त आलोचक जागरूक हैं। इस आलोचना में नवीन मूल्य बोध की परख हो रही है, परीक्षण-निरीक्षण चल रहा है। अब आलोचक यह अनुभव करने लगे हैं कि पश्चिम से उधार लेकर कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता और आधुनिकता के क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। आधुनिकता का तत्व हमें अपनी जड़ों में, परंपराओं में ढूंढ़ना है—हमारे यथार्थ में ढूंढ़ना है। आज हिंदी की आलोचना आधुनिकता के क्षयग्रस्त चेहरे को उभारती है। कभी-कभार ही उसका प्रबुद्ध प्रकाशित रूप प्रकट हो पाता है।

बीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशक में जब हमारी उम्र के लोग बड़े हो रहे थे तब इस शतक को आधुनिकता का अग्रदूत मानने में सभी गर्व महसूस करते थे। यह आधुनिकता टेक्नोलॉजी से जुड़ी आधुनिकता थी जिसने हमें मात्र उपभोक्ता बना दिया और साहित्य को उच्च साहित्य और जनप्रिय साहित्य में बांट दिया। भारतीय संदर्भ में विशिष्ट वर्ग और लोक में कोई अंतर नहीं है। शास्त्राचार और लोकाचार एक-दूसरे के संपूरक हैं। लोक या 'लौकिक' तत्व हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वस्तुतः संस्कृति इस साहित्य का एक प्रमुख घटक है, कहने को विश्व के उत्तर-आधुनिक साहित्य का प्रमुख घटक है। हिंदी साहित्य के अधिकतर विद्वान इस साहित्य को संस्कृति-प्रधान मानते हैं और वह भी उदार मानवीय संस्कृति। प्रत्येक प्रकार की संस्कृति एक चरम जटिल श्रेणीबद्ध कोडों का प्रतिनिधित्व करती है। अर्थगत गतिशीलता सांस्कृतिक पाठकों का एक महत्वपूर्ण धर्म है। समकालीन हिंदी आलोचना आंतर-सांस्कृतिक (शास्त्राचार तथा लोकाचार) और अंतर-सांस्कृतिक (भारत की सामासिक) संबंधों का योग है और इसीलिए अंतर-पाठगतता इसका एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह अंतर-पाठगतता केवल साहित्यिक पाठों से ही नहीं विभिन्न कला माध्यमों से भी जुड़ी रहती है जैसे संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला, थियेटर, फिल्म। समकालीन हिंदी आलोचना साहित्य में इन कला माध्यमों की भाषिक अभिव्यक्ति हुई है।

आज हिंदी का लेखक अपनी विरासत, जटिलता और अनोखेपन का इजहार कर रहा हैं। बिना किसी सचेतन प्रयत्न के ये कृतियां परंपरा और वर्तमान को अभिव्यक्त करती हैं। इनमें कथा वर्णन की योजना-नीतियों के प्रयोग में अभिनव है, ठोस यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए कम उत्साह है और फंतासी और कल्पनात्मक उपाख्यानों के लिए अधिक। अब ये लेखक मिथकीय तथा दूसरी भारतीय स्थितियों का प्रयोग इस प्रकार से करते हैं कि आज के यथार्थ को एक व्यापक आयाम दिया जा सके और सांस्कृतिक विश्वास पैदा हो सके। मगर चिंता की बात यह है कि आठवें दशक में हिंदी लेखकों ने राष्ट्रीय स्तर पर निर्णय नीतियों के केंद्र से अपने को और भी अलग कर लिया है। पूर्व स्वाधीनता युग में भारतीय लेखक व्यक्ति या समूह रूप में निर्देश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूमिका अदा करने में क्रियाशील थे मगर उत्तर-स्वाधीनता युग में, अर्थनैतिक, औद्योगिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के कारण, और बल और धन-अभिमुखी राजनीति के कारण व्यक्तिगत रूप में लेखकों के लिए समाज को दिशा-निर्देश देने की संभावना लगभग नहीं रही। फलस्वरूप आज का अधिकतर लेखक अप्रतिबद्ध, शक्तिहीन और राजनैतिक दृष्टि से असंगत हो चुका है। आज की परिस्थिति में किसी समस्या-युक्त संघटन में लेखकों के लिए जुड़ना कठिन हो चुका है। हम केवल आशा कर सकते हैं कि इस शताब्दी के अंत तक लेखक फिर से अपनी स्थिति को पुनः प्रतिष्ठित कर पाएगा और स्वाधीनता और मानवीय मर्यादा प्रत्येक अच्छी साहित्यिक कृति का केंद्रीय विषय बना रहेगा। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी की होड़ किसी प्रांतीय भाषा से नहीं, केवल अंग्रेजी से है।

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

हिंदी एक जानदार भाषा है। वह जितनी बढ़ेगी देश को उतना ही लाभ होगा।

—जवाहरलाल नेहरू

हिंदी देश की एकता की कड़ी है।

—डॉ. जाकिर हुसैन

मेरे देश में हिंदी की इज्जत न हो यह मैं नहीं सह सकता।

—विनोबा भावे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी काव्य भाषा के विकास में दक्खिनी हिंदी का योग

डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

हिंदी काव्य भाषा के विकास के संबंध में यह बताया गया है कि आधुनिक युग के प्रारंभ में काव्यभाषा ब्रज और गद्य भाषा खड़ी बोली थी। भाषा के इस द्विविध रूप को समाप्त करके खड़ी बोली को गद्य-पद्य की वाहिका बनाने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को दिया जाता है। आधुनिक युग से पूर्व उपलब्ध हिंदी साहित्य में काव्य का ही प्राबल्य रहा और ब्रज एवं अवधी दोनों बोलियां माध्यम बनी थीं। परंतु यह बात बिलकुल आश्चर्यजनक लगती है कि खड़ीबोली के पुराने स्रोतों पर विचार किए बिना उसे नयी उपजी भाषा की भांति आधुनिक काल की बताया गया है। वास्तविकता यह है कि खड़ी बोली का पुराना रूप ब्रज की भांति अखिल भारतीय स्तर पर विद्यमान है।

खड़ी बोली की प्राचीनता को सिद्ध करने तथा उसकी प्राचीन साहित्य संपदा को समेटने के लिए आवश्यक है कि देश के नाना भागों में बिखरे पड़े उसके समृद्ध साहित्य को समाहित करें। परंतु भौगोलिक दृष्टि से हिंदी क्षेत्र बताए जाने वाले प्रदेश के बाहर ही खड़ी बोली में साहित्य निर्माण हुआ था। उसके अलावा खड़ी बोली में निर्मित सारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य अरबी-फारसी, गुरुमुखी आदि लिपियों में लिखा जाता था। उत्तर में साहित्य माध्यम के रूप में खड़ी बोली का सर्वाधिक प्रयोग पंजाब में किया गया, जिसका पूरा इतिहास 'पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य का इतिहास' में पंडित चंद्रकांत बाली ने दिया है। डॉ. हारू खाँ शेरवानी ने 'पंजाब में उर्दू' नामक अपने शोध-प्रबंध में उर्दू का जन्म स्थान पंजाब बताया है। 'दकन में उर्दू' में डॉ. नसीरुद्दीन हाशमी ने उर्दू का उद्‌गम दक्खिन में हुआ बताया है। इस संदर्भ में यह बात भूली नहीं जा सकती कि वली दकनी के काल तक यानी अठारवीं शती तक हिंदी-उर्दू नाम से दो अलग-अलग भाषाएं प्रत्यक्ष नहीं हुई थीं। वह एक ही भाषा के दो नाम थे। वह हिंदवी, हिंदुई, हिंदी, रेख्ता आदि नामों से जानी जाती रही थी।

ब्रज और खड़ी बोली को अखिल भारतीय स्तर पर प्रचलित भाषाओं के रूप में परिगणित करने की बात के पीछे कोई स्वार्थ भावना नहीं है। अवधी भाषा या हिंदी की अन्य क़िसी बोली की अपेक्षा ब्रज और खड़ी बोली साहित्य के माध्यम के रूप में बहुत ही लोकप्रिय हो गई। बोलचाल की भाषा के रूप में ब्रज की अपेक्षा खड़ी बोली की व्यापकता और लोकप्रियता का काफी प्रमाण उपलब्ध है।

ब्रज भाषा में उपलब्ध पुराना साहित्य हिमाचल प्रदेश में रचा गया था। वहां आचार्य चर्पटनाथ प्रणीत साहित्य मिलता है। नाथ-संप्रदाय के अनुसार चरपट गुरु गोरखनाथ के शिष्य थे। राहुल सांकृत्यायन ने इन्हें गोरखनाथ जी का शिष्य मानकर ग्यारहवीं शती में विद्यमान होना माना है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "ये गोरखनाथ से थोड़ा परवर्ती जान पड़ते हैं। वज्रयानी सिद्धों में भी इनका नाम आता है। ... नाथ परंपरा में इन्हें गोरखनाथ का शिष्य कहा जाता है। 'नाथ सिद्धों की बानियां' में द्विवेदी जी ने इनकी कविता को संकलित किया है। चरपटनाथ की कविता का मूल्यांकन करते हुए डॉ. मनोहरलाल ने अपने 'हिमाचल प्रदेश के ब्रज कवि' में उचित ही बताया है कि "वे (चरपटनाथ) स्वयं आत्मा के योगी थे तथा औरों को भी ऐसा ही आत्मयोगी बनने की शिक्षा एवं प्रेरणा देते थे।" चरपट बताते हैं—

मन नहीं मूंड मूंड केस। केसा मूड़्या क्या उपदेश।
मूंडे नहीं मन मरदक मान। चरपट बोले तत गिआन।।

उनकी भाषा की विवेचना करते हुए डॉ. लाल ने एक स्थान पर लिखा है कि "इनकी भाषा में नागर अपभ्रंश तथा ब्रज की अपेक्षा पंजाबी, खड़ी बोली तथा राजस्थानी का प्रयोग भी है। यह भाषा लोकभाषा के अधिक निकट है।" डॉ. मनोहरलाल का पूर्वोक्त कथन सर्वथा सत्य जंचता है। क्योंकि ब्रज, पंजाबी, खड़ीबोली, राजस्थानी आदि विविध भाषाओं से युक्त एक जनपदीय रूप अखिल भारतीय स्तर पर प्रचलित हो गया था। यह प्राचीन रूप गुजरात से लेकर दक्षिण की ओर फैलता गया, जिसका उदाहरण आगे यथास्थान दिया जाएगा। अब हम चरपटनाथ की चार पंक्तियां उद्धृत करेंगे जिनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तुलना दक्खिनी हिंदी के सूफ़ी आचार्य कवि मीराजी शम्सुल उश्शाक की चार पंक्तियों से की जा सकती है। चरपटनाथ की पंक्तियाँ हैं :—

जोग न जोग्या भोग न भोग्या, अहिला गाया जमार।
ग्रामे गदहा रामै सूकर, फिरि फिरि लै अवतार।
ना धरि त्रिया ना पर त्रिया रता। न धरि धन न जौबन मता।
ना धरि पुत्र न धीय कंवारी। ताथे चरपट नींद पियारी।।
('हिमाचल प्रदेश के ब्रज कवि' से)

मीरांजी के 'खुशनामा' काव्य की चार पंक्तियां देखिए :—

कभी न रंगी मेंधी रंगों फूलों बास न आया।
रंग न रंग्या दंतों उसके भीनी ना हल्दों काया।
ना मुंज लोडे घाट पितंबर यह जरजरी सिंघार।
फाटी फूटी कंबली नेकी कलिया जपन हार।

चरपटनाथ और मीरांजी दोनों लगभग एक ही भाव प्रकट कर रहे थे, यानी भोग विलास एवं वेषधारी संन्यास से बचकर निष्कपट एवं निर्मल मन से परमतत्व के ध्यान की बात। दोनों के बीच की भौगोलिक दूरी कम नहीं। आचार्य चरपटनाथ हिमाचल में रहकर अध्यात्म की धर्मनिरपेक्ष बात कहते थे तो आचार्य मीरांजी विंध्याचल के इस पार दक्षिण भारत के दक्खिन में रहते हुए धर्मनिरपेक्षता की बात कह रहे थे। देखिए दोनों का भाव कितना उदात्त है। जन-मन को एकता के सूत्र में बांधने के लिए दोनों ने हिंदी का सहारा लिया। लगभग एक ही प्रकार की भाषा का इस्तेमाल किया गया। यह हिंदी का व्यावहारिक रूप है जिसने अपनी सरलता के कारण जन-मन को मोह लिया था। मदीना के निवासी मीरांजी ने दक्षिण भारत को अपना कार्यक्षेत्र बनाया तो भाषा को लेकर उनके मन में कोई संदेह नहीं था। उन्होंने बड़ी दूरदर्शिता के साथ हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति के लिए चुना।

हम ब्रज भाषा की सर्वव्यापकता की चर्चा कर रहे थे। दक्षिण में ब्रजभाषा में उत्तम काव्य लिखने का श्रेय 'जगद्गुरु' नाम से अभिहित इब्राहीम अली आदिलशाह द्वितीय (राज्यकाल सन् 1580-1611 ई.) को जाता है। आप प्रतिभावान कवि थे। सुलतान ने अपने ब्रजभाषा काव्य 'किताबे नौरस' में विविध राग-रागिनियों का प्रयोग किया है। 'दर मक़ाम भैरव' में 'नौरस' का यह गीत द्रष्टव्य है :

प्यारे चांदा आखूं कथ दीन दोई दुखी।
मन चाहे सू निस भाई हम तुम कि है जब सुखी पैन।
बुझानू दीपक कूं तेरा सूं दिनकर आवेगा।
घर-घर छुप रह जासूस सब सुध पहुंचावेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पौ फाटा तो देख जा टाक धावेगा।
संध्या का सिंगार लोब कठ लावेगा।
रात थोड़ी मदन बहुत बना उठ जावेगा।।
'बुध परकास' जगद्गुरु का दूसरा ग्रंथ है।

ब्रजभाषा की यह काव्यधारा दक्षिणी छोर तक बहती आई। तभी तो केरल के महाराजा स्वाति तिरुनाल ने ब्रजभाषा में अपने गीत रचे थे। वे बड़े संगीतज्ञ भी थे। उनके सैंतीस गीत कुल मिले हैं। इन गेय पदों में सूरदास के पदों का सा माधुर्य एवं मीरा की तन्मयता है। उनके गीतों की विशिष्टता यह है कि उनमें भाव और कला का मणिकांचन संयोग हुआ है। व्यंग्य का पुट भी इन पदों के सौंदर्य संवर्धन में सहायक हुआ है। वे गीत श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्री परमेश्वर, देवी आदि से संबंधित हैं। इसके अलावा प्रेयसी-प्रिय वार्ता एवं सामान्य भक्ति संबंधी गीत भी हैं। उनके दास्य भाव का वर्णन देखिए :—

आन मिलो महबूब हमारो
होऊं तेरी दासी लाल नंदकुंवर प्यारो।
विरह और मिलन की अभिव्यक्ति देखिए:
छोड़ो हमरे प्रीतम कूं हम
अंचल धोवे अंसुवन से।
उनके गीत अत्यधिक मधुर एवं स्वर-ताल-लय युक्त हैं, यथा—
देव वंद पद मुकुंद मोहनो आनंद वृंद
गोपिका चकोर चंद चंद के दुलारे।

इन गीतों में कवि ने विविध राग-रागिनियों का प्रयोग किया है, जैसे ख्याल, ध्रुपद, टप्पा आदि। विभिन्न तालों से युक्त ये गीत अच्छे गायकों के मुंह से सुनने में मीठे लगते हैं। यह रही ब्रज की बात। अब हम खड़ी बोली की विरासत पर आयेंगे जिसने आधुनिक काल में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित किया।

हिंदी के विकास में दक्खिनी के योग को समझने के लिए हिंदी के आदिकालीन रूप का परिचय पाना आवश्यक है। विस्तृत भू-भागों में बोली जाने वाली भाषा होने के कारण हिंदी के अनेक रूप पाये जाते हैं। उसके प्राचीनतम रूपों का परिचय पाने के लिए 'सिद्ध हेमचंद्र शब्दानुशासन' में आचार्य हेमचंद्र (मृत्यु संवत् 1229 ई.) द्वारा प्रदत्त दोहों का अध्ययन आवश्यक है। इन दोहों की भाषा अपभ्रंश और पुरानी हिंदी की विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं करती। पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिंदी' में ये दोहे उद्धृत किए हैं। यथा—

पुत्ते जाएं कवणु गुण, अवगुण कवणु मुएण।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जा बप्पी की भुहड़ी चषिज्जइ अवरऐण।।

(उस बेटे के जन्म लेने से क्या लाभ और मर जाने से क्या हानि जिसके होते बाप की धरती पर दूसरा अधिकार कर ले)
उपर्युक्त दोहे का परिवर्तन होते-होते यह रूप हो गया है—

बेटा जायां कवण गुण, अवगुण कवण धियेण।
जो ऊभां घर आपणीं, गंजीजै अवेरेण।।

एक और उदाहरण लीजिए—

भला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कंतु।
लज्जेज्जं तु वंयसिअह, जइ भग्गा घरु एंतु।।

(भला, हुआ, जो, मारा, गया), बहन! मेरा, कंत, लजाती (मैं), तो, (एक) बयसवालियों (सखियों) से, यदि, भागा, घर, आता (वह)। प्रसिद्ध दोहा है।

भग्ग=भग्न, हारा हुआ।

आदिकालीन हिंदी साहित्य ग्रंथों में चंदवरदायीकृत 'पृथ्वीराज रासो' का नाम लिया जाता है। रासोकार ने अपने भाषा ज्ञान का परिचय यों दिया है ''यह भाषा पुराणं कुराणं कथितं भया।''

चंद ने जिन छः भाषाओं के बारे में कहा है, वे निम्नांकित हैं :
1. मूलभाषाः अवहट्ठः मुलतानी अथवा पंजाबी 2. अरबीः शब्द संग्रह 3. फारसी, शब्द संग्रह 4. तुर्कीः शब्द संग्रह 5. प्राकृत, शब्द संग्रह और क्रियाएं 6. अपभ्रंशः शब्द संग्रह और क्रियाएं।

रासो में उपलब्ध क्रियाओं के दो रूप हैं—

स्थानीय तथा प्राकृत और अपभ्रंश। शब्दों के भी दो रूप प्राप्त होते हैं—(1) विभक्ति-संश्लिष्ट (प्राकृत+अपभ्रंश) और (2) विभक्ति-विश्लिष्ट (स्थानीय)। अतः रासो की भाषा को ऊर्ध्ववर्ती (अपभ्रंश की ओर बढ़ती हुई) कड़ी भी कह सकते हैं और निम्नवर्ती (स्थानीय भाषा की ओर गिरती हुई) कड़ी भी। इस प्रकार की संधि-स्थलीय भाषा को पं. चंद्रधरशर्मा गुलेरी ने 'पुरानी हिंदी' नाम सुझाया है। अतः संधिकालिक भाषा ही रासो की वास्तविक भाषा है। इसे अपभ्रंश की अंतिम कड़ी मान सकते हैं। भाषा का उदाहरण द्रष्टव्य है :

हिंदुवान थान उत्तम सुदेस तहं उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस।
सभरि नरेस चहुंआन थान प्रथिराज तहं राजत भान।
संभरि नरेस सोमेसपूत देवत्त रूप अवतार धूत।
जिहि पकरिसाह साहेबदीन तिहि बेर करिय पानिप्य हीन।
सिंगिनि सुखद्द गुनि चढ़ि जंजीर चुक्कइ न सबद बेधंत तीर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दक्खिन में प्रचलित पुरानी हिंदी पर विचार करते समय हमें सर्वप्रथम उत्तर की हिंदी पर भी विचार करना चाहिए। तभी दोनों प्रदेशों के हिंदी के अंतर समझे जा सकते हैं। अमीर खुसरो का जीवनकाल सन् 1253-1325 ई. माना जाता है। खुसरो की भाषा यह ज़ाहिर करती है कि हिंदी अब अपभ्रंश से पूर्णतः मुक्त हुई है। प्राचीन ग्रंथों में खुसरो की जो वाणी मिलती है, वह प्रामाणिक मानी जा सकती है।

दक्खिनी हिंदी साहित्य के विकास में अकेले मुसलमान कवियों-लेखकों ने ही योगदान किया है, ऐसा मानना गलत होगा। यह सही है कि दक्खिनी के अधिकांश साहित्यकार मुसलमान हैं, ऐतिहासिक कारणों से ऐसा हुआ। परंतु दक्खिनी के विकास काल में उसको रुपायित करने में दक्षिण के निर्गुण भक्त कवियों का अवदान भूला नहीं जा सकता। गोरखनाथ, नामदेव, एकनाथ आदि कई संतों के नाम लिए जा सकते हैं, जिन्होंने दक्षिण में हिंदी का प्रचार-प्रसार किया।

गोरखनाथ महाराष्ट्र के चंद्रगिरि के रहने वाले बताए जाते हैं। उनके काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का कथन है—"गोरखनाथ के समय का ठीक पता नहीं। राहुल सांकृत्यायन ने वज्रयानी सिद्धों की परंपरा के बीच उनका जो स्थान रखा है, उसके अनुसार उनका समय विक्रम की दसवीं शताब्दी आता है, किंतु गोरखनाथ का समय निश्चित रूप से विक्रम की दसवीं शताब्दी मानते नहीं बनता।"

डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार "गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए।" लेकिन उनकी रचनाएं आज जिस रूप में उपलब्ध हैं, उन्हें अपरिवर्तित मानना युक्ति संगत नहीं है। कई विद्वान यह विचार रखते हैं कि गोरखनाथ का समय सातवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक कहीं भी ठहराया जा सकता है। गोरखनाथ एक सिद्ध योगी थे।

गोरखनाथ ने हिंदी, मराठी और संस्कृत में ग्रंथ लिखे। गोरखनाथ की हिंदी रचना में फारसी, अरबी शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है :

अनहद घड़ी घड़ियाल बजाइ ले परम जाति दुइ दीपक लाई
काम-क्रोध दोई गरदन मारिले ऐसी अदली पातिसाही बाबै आदम चलाई।
तहां सत्य बीबी संतोष सहजात खिमां भगति हे धाई
आदिनाथ नाती मछेन्द्रनाथ पूता काया नगरी गोरख बसाई।

संत ज्ञानेश्वर ने सन् 1290 ई. में 'गीता' पर 'ज्ञानेश्वरी' नामक टीका लिखी। बताया जाता है कि उन्होंने बाईस साल की उम्र में 'ज्ञानेश्वरी' लिखी। ज्ञानेश्वरी की रचना का नमूना देखिए—

निगुर्ण ब्रह्म भुवन से न्यारा
पाथी पुस्तक भये अपारा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोरा कागद पढ़कर जाय,
लेना एक और देना दोय।
अलख पुरुष में देखा हिष्टि
करकर आउन समान सृष्टि।
छाटा में कुछ न होय,
लेना एक और देना दोय।

दामोदर पण्डित जो पहले नाथपंथ में दीक्षित थे, बाद में महानुभाव बने। वे सन् 1287 ई. में गोदावरी के निकट रहते थे। बाद में वे नाथपंथ का विरोध करने लगे। दामोदर पंडित के हिंदी पद का उदाहरण द्रष्टव्य है :

पढ़ो हो पंडित गुणों हो शास्त्रं सकल पुराण
उसमें कर्म कु हा धंदा उगवति गुरुमुखे खुणा।
सुन हो बाबा, सुन हो पंडित सुन बैरागी भाई
मेंमारी साखी बीरला सुने बूझती बीरला कोई
अनंत पुरुष को अनंत भावा पुकारति नाना बिचार
सब ही मिलकर रहणि नैननि पंथ तो अपरंपार।

नामदेव (सन् 1270-1350 ई.) महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत थे। नामदेव के मराठी ग्रंथों में संकलित पदों में तद्‌युगीन हिंदी का स्वरूप प्राप्त होता है जो कि हिंदी के क्षेत्रीय प्रभाव से रंगत दिखाई देता है। राजस्थानी प्रभाव को व्यक्त करने वाला निम्न पद्य तद्‌युगीन उत्तर भारतीय हिंदी की एक झलक देता है। यथा—

अब नी बिसारू राम संभारू
जो र बीसारू तो सब हारू
सुमीरन स्वासा भरी भरी पीऊ
रंक राम गुड़ खाई र जीऊ।

संत नामदेव के निधन के बाद मराठी के साहित्य गगन में संत एकनाथ चमक उठे। वे मराठी के अतिरिक्त दक्खिन में प्रचलित हिंदी के कवि भी हुए। नामदेव की हिंदी रचना का उदाहरण द्रष्टव्य है—

अल्ला रखेगा वैसा ही रहना।
मौला रखेगा वैसा ही रहना।
कोई दिन सिर पर छतर उड़ावे।
कोई दिन शिर पर घड़ा चढ़ावे।
कोई दिन शक्कर दूध मलीदा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यही बात आचार्य चरपटनाथ ने कही, ''मन नहीं मूंड मूंड केस। केसां मूड्या क्या उपदेश। मूंडे नहीं मन मरदक मान। चरपट बोले तत गिआन।''

शब्दावली और भाषा की संरचना आदि पर ध्यान देंगे तो आप समझेंगे कि दक्खिनी हिंदी उत्तरी हिंदी से भिन्न नहीं है।

'काबा और कैलाश' में ईश्वर की खोज में जाने वाले बंदे की निरर्थक यात्रा का वर्णन कबीर ने लिखा है। ईश्वर साक्षात्कार के लिए लोगों को प्रयत्नशील न देखकर कहा था कि जो अपने शरीर को धूल में नहीं मिलाता, पलंग पर पड़ा रहता है, वह ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता, कबीर की वाणी द्रष्टव्य है—

हंस हंस कन्त न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
जो कन्ता हंस हंस मिले, तो नहीं दुहागन कोय।

प्रस्तुत दोहे में अभिव्यंजित विचार को मीरांजी ने यों प्रकट किया—

जो न काया धूल मिलावे कभू ना परगट शौक।
जे ना इश्कों अंसू ढाले कभू ना पाया ज़ोक।।

'गहरे पानी में बैठने से मोती मिलता है' वाली उक्ति कबीर ने अपने एक दोहे में व्यक्त की। इसी दोहे की छाया मीरांजी के उस दोहे में देखी जा सकती है जिसमें उन्होंने अपनी पुस्तक को हीरों की खान बताया है। मीरांजी का कहना है कि जो गोताखोर बुद्धि की सेवा करेगा, वह ज्ञानी बनेगा, जो तैराक केवल मछलियां पकड़ता है, उसके हाथ हीरा नहीं लग सकता—

सब हीरां की रे खान, ना मोत्यों केरे दान।
जे गव्वास बूध सेवे, तो सालिम सोधा लेवे।।

कबीर ने ईश्वर को 'गूंगे का गुड़' का जैसा बताया तो मीरांजी ने अनिवर्चनीय बताया—

हे कहा न आवे ना नहीं कहिये जावे।
सुन ते गत क्यूं कर सूजे जिस कुर्बत सो है बूझे।।

मीरांजी के सुपुत्र शेख जानम ने भी कबीर के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा—

पढ़ पढ़ पंडित जनम गंवाया मूरख रहे सुन रीज़
पुरान पुस्तक देख ढंडोलें बसे निराला नीज।

कबीर के निम्नलिखित दोहे से उपर्युक्त पद्य को मिलाकर देखिए—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का जो पढ़े, जो पंडित होय।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कबीर की तरह मन के मनके को फेरने की बात जानम ने भी कही है। दोनों की वाणी मिलाकर देखिए—

ज़ाकिर होकर दम चलावें मन के लेकर हात।
दिल के मनके फेर्या ना है तब लग खाली बात।।

जानम़ की उपर्युक्त वाणी को कबीर के निम्नलिखित दोहे से मिलाइए—

माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर,
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर।।

जानम के फुटकर पद्यों में अधिकतर दोहे हैं। जानम ने विरह का जो वर्णन दिया है, वह देखिए—

निस दिन जागे विरह भारी
न नींद अदेखे नयन पड़े
पलखें मेरी आग बले क्यों
सपने देखूं सोय खड़े।

संत गंगादास (सन् 1823-1913 ई.) ने जिस प्रकार की भाषा में कविता की है, वह भाषा दक्खिनी हिंदी से बहुत भिन्न नहीं जान पड़ती। उन्होंने मेरठ में व्यवहृत खड़ी बोली को माध्यम बनाया जिसमें हरियाणवी, पंजाबी, भोजपुरी आदि भाषाओं के तत्व भी रस बन गए हैं। उनकी खड़ी बोली भाषा का उदाहरण देखिए—

आज करी निरभाग राम ने, लाल मेरी किस्मत फूटी।
बात मरम की कहूं मैं किससे भगवत ने दुखिया लूटी।
बार रही ना पार घाट से मझधार नैया छूटी।
बर्दमान गिर गया भंवर में, बल्ली नहि लगती टूटी।।

हरियाणवी से प्रभावित भाषा—

छत्री चले जुद्ध कू सज कै।
विषधर बटिया काटैभज कै।
घायल होय मरम कू तजकै।
रण में चाहिये शीश करणा।
सुगन का चहिये छन्द रटणा।

पंजाबी से प्रभावित भाषा—

हम हरनंदी हैं सारियां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोली बोलें प्यारियां
मेरे कीते त्यागदे जीते।।

संत गंगादास के पदों की दक्खिनी हिंदी के काव्यों से तुलना करने पर यह बात माननी पड़ेगी कि खड़ी बोली के दक्षिणी रूप का प्रभाव उत्तरी खड़ीबोली पर भी पड़े बिन न रहा।

जानम के निम्नलिखित दोहों को हिंदी के किसी भी निर्गुण संत कवियों के दोहों से मिलाकर देखिए—

जब लग तन नहीं छोड़्या जीव कून तब लग होना दूर।
जब जग नजर नहीं छोड़ी आंख कूं तब लग होना नूर।।

सुख-दुख को समान भाव से ग्रहण करने का उपदेश द्रष्टव्य है—

यू सब तन में मन बरतन देख छोड़े ये सुख दुख।
दुख सुख दोनों एक करसी तो पावे सहज का सुख।।

इस प्रकार दक्खिनी हिंदी की काव्यकृतियों का अध्ययन करेंगे तो आप को पता चलेगा कि उन काव्यों में अभिव्यंजित भाव और भाषा एक दूसरे से भिन्न नहीं है। लेकिन दक्षिण में काव्यसृजन के माध्यम के रूप में खड़ीबोली का प्रयोग समाप्त नहीं हुआ। हम देखते हैं कि उत्तर में कबीर आदि के बाद खड़ी बोली में नियमित रूप से निरंतर काव्य का प्रणयन नहीं हुआ। परंतु कहीं-कहीं उत्तर में भी खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में प्रयुक्त हुई। भारतेंदु के जन्म से पहले जन्मे और उनकी मृत्यु के बाद भी जीवित रहे मेरठ के संत गंगादास ने खड़ीबोली में कविताएं कीं।

हिंदी काव्यभाषा की विकास-यात्रा में दक्खिनी के योगदान को अंकित करने के लिए दोनों में उपलब्ध समान तत्व वाले काव्य ही नहीं बल्कि वैसा दृश्य रखनेवाले काव्य भी काम आयेंगे। काव्य शैली, मुहावरे आदि का विश्लेषण-विवेचन अपेक्षित है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मारीशस और हिंदी अंतर्राष्ट्रीयकरण की अनिवार्यता

डॉ. गंगा प्रसाद विमल

हिंद महासागर के विशाल फैलाव में अफ्रीका और भारत के बीच मारीशस द्वीप है। भारतवंशियों ने पिछली एक सदी में इस द्वीप की प्रगति में जो भूमिका अदा की है, वह सचमुच अनुकरणीय है। यह इस कारण संभव हुआ कि भारतवंशियों ने मारीशस को अपने अतीत के अधिवास की तरह ही अत्यंत ऊष्मावान और संस्कृति प्रवण देखा। वहां के मूल अधिवासियों एवं सकारण बाहर से बसाए लोगों के साथ एक नए प्रकार के आधुनिक समाज का जो स्वरूप निर्मित हुआ—उस स्वरूप की आद्य चेतना भारतवंशियों के बीच थी। वे ऐसे अतीत से आए थे जहां अनेक वर्ण, अनेक जातियां व अनेक धर्म-विश्वास न केवल एक दूसरे के साथ रहते थे अपितु वे एक दूसरे के सकारात्मक गुणों को आत्मसात कर सांस्कृतिक-मिश्रण की प्रक्रिया में नयी दुनिया की संस्कृति का निर्माण करते थे। यही एक ऐसा आधार है जिस पर आज हम मूल्यांकन कर सकते हैं कि अपनी मान्यताओं को ठेठ निजता की गोपनीयता में संरक्षित करते हुए भी भारतवंशी सदैव से सहिष्णु, कर्मनिष्ठ तथा महान मूल्यों के समर्थक रहे हैं। अतः आज जिस मारीशस की हम बात करते हैं, वहां ऐसी ही स्थितियों में भारतवंशियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के साथ साथ अन्य जातीय इकाइयां व धर्मावलंबी हैं। ठीक यही स्थिति एक पुष्ट परंपरा के रूप में भारत में विद्यमान है। अतः समानता के बिंदुओं की खोज में सर्वप्रथम वर्तमान प्रजातांत्रिक स्वरूप को ही लें तो वह भी दोनों राष्ट्रों में एक-सा है इस एक पक्ष पर कि भारत और मारीशस में क्या-क्या चीजें समान हैं—संभवतः अनेक स्तरों पर अनेक बार कहा जा चुका है। प्रश्न केवल इतना है कि दो देशों की सांस्कृतिक बुनावट में केवल इतिहास ही एक ऐसा आधार है जिसमें भारत और मारीशस की तुलना करना संगत न होगा। तथापि यह स्पष्ट करना मूल विषय के साथ उपयोगी होगा कि राष्ट्रीयताएं अपने साथ जो अतीत लाती हैं, वह नए भूभाग का भी हिस्सा बन जाता है और फिर पर-संस्कृतियों के सम्मिलन से एक नयी संस्कृति का उदय, विकास एवं परंपरा गठन का ऐतिहासिक दाय पूरा होता है। अनुमान के तौर पर कहा जा सकता है कि मारीशस में एशियाई-अफ्रीकी-यूरोप सम्मिलन ने जिस नए सांस्कृतिक प्रारूप को जन्म दिया है उसे परिपुष्ट करने में जहां एक ओर एशियाई-अफ्रीकी भाषा-व्यवहार का योगदान है वहीं उसे नवरूप से संपृक्त करने में यूरोपीय भाषा-व्यवहार का योगदान है। परंतु जिस सांस्कृतिक प्रारूप का जन्म हो रहा है वह नितांत हिंद महासागरीय है और हिंद महासागर जो अफ्रीकी-भारतीय तटों को जोड़ता है। बहुधा नृवंश शास्त्री इस तर्क को अपने अध्ययनों का आधार भी बनाते हैं कि प्रकृति और पर्यावरण मनुष्य के भाषाई व्यवहार पर प्रकट रूप से प्रभाव डालते हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भाषा संस्कृति का एक ऐसा महत्वपूर्ण उपादान है जिसके बिना संस्कृति के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी निष्कर्ष पर पुनः यह कहना भी निर्विवाद होगा कि मारीशस की संस्कृति का प्रबलतम संवाहक हिंदी भाषा है। यद्यपि मारीशस में अंग्रेजी और फ्रांसीसी राजकाज की भाषाएं हैं तथा क्रिओली, चीनी, आद्य-अफ्रीकी बोलचाल की भाषाओं के बीच हिंदी अपने अलग लोकप्रिय रूप में अंग्रेजी और फ्रांसीसी की तरह सामान्यतः संपर्क भाषा है। मारीशस में तमिल, उर्दू, मराठी के साथ-साथ कुछ अन्य बोलियों का भी अस्तित्व है किंतु अंतर्सामाजिक क्रिया व्यवहार में क्रिओल और हिंदी का बहु प्रयोग है।

हिंदी के विख्यात साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर की मान्यता है कि 'मारीशस वासियों' के लिए हिंदी इसलिए और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह उनकी संस्कृति की भाषा है। ... वहां हिंदी का शोषण संस्कृति के नाम पर हुआ है जैसा कि विष्णु प्रभाकर जी ने आगे चलकर स्पष्ट भी किया है कि मारीशस सामासिक संस्कृति का देश है। हम पहले ही कह चुके हैं कि भारत की सांस्कृतिक तस्वीर ठीक वैसी है जैसी हम मारीशस में पाते हैं। भारत विशालता की दृष्टि से अनेक भाषाओं और बोलियों का प्रयोग करता है तथापि एक छोटा देश होते हुए भी मारीशस में 11 से अधिक भाषाएं व बोलियों का प्रयोग होता है। बहुजातीय एवं बहुधर्मी सामाजिक इकाइयों में ऐक्य का ऐतिहासिक आधार है वहां की जनता में स्वराष्ट्र की बलवती भावना, जो एक लंबे जन-संघर्ष के उपरांत स्वाधीनता प्राप्ति के रूप में प्रतिफलित हुई। सामासिक संस्कृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का यह बेजोड़ इतिहास मारीशस वासियों को निरंतर प्रेरणा देता रहता है। प्रख्यात कथाकार रामदेव धुरंधर ने स्पष्ट लिखा है कि मारीशस ने 'हिंदी में ही स्वतंत्रता तक की यात्रा' संपन्न की है। अतः लेखकों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों का यह निष्कर्ष कि मारीशस की सामासिक संस्कृति की संवाहिका लोकभाषा हिंदी है, एक ऐसा निष्कर्ष है जिसे आज बदलती हुई परिस्थितियों में भी स्वीकृति प्राप्त है।

भाषाएं जब यथास्थिति का समर्थक तत्व बन जाती हैं तब वे अपना परिवर्तनकामी, विकसनशील स्वभाव छोड़ने लगती हैं और धीरे-धीरे लोक चित्त से उनकी विदाई होने लगती है। भारतीय संदर्भ में इस प्रश्न की गहरी पड़ताल इसलिए आवश्यक है कि भारत पर जिस तरह पर संस्कृतियों के हमले होते रहे हैं, विभिन्न भाषाएं न्यायपालिकाओं और राज्य व्यवस्थाओं के ऊपर थोपी गई हैं वैसी स्थिति यद्यपि मारीशस की नहीं है तथापि विश्व हिंदी के एक प्रख्यात मारीशसीय हस्ताक्षर *अभिमन्यु अनत* की चिंता को भी इस संदर्भ में विचारणीय आधार मानना पड़ेगा, जब वे विदेशी भाषाओं को मारीशस की राजभाषा के रूप में स्वीकृति को 'मारीशस में निजी संस्कृति पर प्रहार' कह कर अभिव्यक्ति देते हैं। 'यथास्थिति' संघर्षहीनता का गुण है। यदि भारतीय हिंदी का स्वरूप 'यथास्थिति' का सामना नहीं कर पाता तो वह 'यथास्थिति' के व्यापक छलावे का हिस्सा बन जाती है। स्पष्ट है, वर्तमान में अंग्रेजी के व्यापक प्रचलन, संचार माध्यमों में उसके बहु प्रयोग, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केंद्रों के फ़ैलाव में अंग्रेजी की बढ़त आदि कुछ ऐसे पक्ष हैं जो भाषा के बढ़ाव के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी अपने प्रवेश को गति दे रहे हैं। तथापि इस प्रकार के अदृश्य आक्रमण भारतीय संस्कृति पर सदियों से होते आए हैं। सामासिक संस्कृति में आत्मसातीकरण की जो अद्भुत शक्ति है—भारत उससे संपन्न है अतः ऐसे हमलों के परिदृश्य में तत्कालीन व्यवस्थाओं और उसके यथास्थितिवाद से भाषाएं विग्रहरत रहती हैं। मारीशस में भी यह तत्व बलशाली है। मारीशसवासी भारत मूल के लोगों के अतिरिक्त भी भारतीय संस्कृति के मानवोपयोगी स्वरूप की स्वीकृति अन्य जातीय इकाइयां देती हैं। यहां केवल उदाहरण के रूप में देखना चाहिए कि 'भारतीयता' की स्वीकृति भारत की तरह मारीशस में नहीं है बल्कि वह मारीशसीय सांस्कृतिक उदारता का तत्व है जो एक साथ भारत और यूरोप तथा एक ही साथ अफ्रीका और भारत के सांस्कृतिक गुण धर्म का तालमेल बिठा लेता है।

देखना यह है कि दो स्वतंत्र राष्ट्रों की भावात्मक़ एकताओं की एकजुटता का प्रतिफल कैसे प्राप्त किया जाए। यह उचित है कि हिंदी भाषा के स्तर पर आदान-प्रदान का मार्ग उपलब्ध है। भारतीय संस्कृति के अन्य उपादानों में भी यह विनिमय जारी है। विश्व हिंदी सम्मेलन या विश्व हिंदी की चिंता से जो आधार पुष्ट होते हैं उनसे एक विशेष रणनीति के गठन की आवश्यकता है। *केवल सम्मेलन, संगोष्ठियों या विद्वानों का आदान-प्रदान वह नतीजे नहीं प्राप्त कर सकता जो राष्ट्रीय स्तर पर दो राष्ट्रों के*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परस्पर गंभीर विचार-विनिमय से अंतर्राष्ट्रीय हिंदी के द्वारा विश्व स्तर पर उपलब्ध किए जा सकते हैं।

सर्वप्रथम यह देखना जरूरी होगा कि मारीशस और भारत अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अनेक प्रश्नों में एक हैं। मारीशस और भारत पर पश्चिमी दबाव हर ओर से पड़ते हैं। मारीशस और भारत दोनों दिओगे गार्सिया की उपस्थिति के कारण एकता के अनेक प्रारूपों के लिए विवश हैं। ऐसी स्थति में मारीशस का विश्व हिंदी का समर्थन करना एक अनिवार्यता है और भारत को विश्व हिंदी के प्रयोग की विधियों को इस रणनीति के अंतर्गत संसाधन मुहैया करने पड़ेंगे। राजनैतिक स्तर पर अभी तक भारत और मारीशस में हिंदी के बारे में वार्ता नहीं हुई है। न कोई गंभीर गोलमेज बैठक हुई है। मारीशस के हिंदी प्रेमी अक्सर चर्चा में इसे भारत की ओर से उपेक्षा कहते हैं। उनका कहना है कि 'इतना बड़ा देश और उनके यहां कोई ऐसा विवेक नहीं उभरा जो सरकार पर दबाव डाले कि वह मारीशस को हिंदी की गोलमेज का सदस्य बनाए।' अर्थ यह कि जिस तरह ब्रिटिश काउंसिल, अंला फ्रांस अपनी भाषा के विकास और प्रसार के लिए काम करते हैं, क्यों नहीं ऐसी कोई संस्था भारत से जारी हो जो सिंगापुर, मलेशिया, जकार्ता, आस्ट्रेलिया, फीजी, सूरीनाम, मारीशस, गयाना, त्रिनीदाद, इंग्लैंड आदि में जहां बहुसंख्या में भारतवासी हैं वहां हिंदी प्रचार का कार्य करे और अपना कार्य व्यापार बढ़ाते हुए एक ऐसी आदर्श संस्था का रूप ले जिससे वह अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रतिष्ठा पा सके और अनेक राष्ट्रीय इकाइयों की एकजुटता से अपने-अपने राष्ट्रों के हितों का संवर्धन करे। यहां 'राष्ट्रीय हितों के संवर्धन' के तथ्य को रेखांकित करना पड़ेगा क्योंकि मोटे तौर पर इसी मुद्दे के अंतर्गत वे सब बातें समाहित होंगी जिनकी समय समय पर प्रत्येक राष्ट्रीय ईकाई को जरूरत पड़ेगी।

बीसवीं शताब्दी में महाशक्तियों के टकराव ने अनेक समस्याएं पैदा की हैं। भारत ही शायद एक ऐसा देश है जिसने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई विग्रह मोल नहीं लिया है। नकारात्मक दृष्टि से कभी अपनी नीतियों का परिचालन नहीं किया है। मानवाधिकारों के हनन के बारे में पश्चिमी रिपोर्टों ने गंभीर रूप से भारत पर आरोप नहीं लगाए जब कि सरहद पार के आतंकवाद, अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद एवं धार्मिक आतंकवाद का शिकार उसे अब तक बनना पड़ा है। अब स्थिति यह है कि एक महाशक्ति के विघटन के उपरांत अपने सकारात्मक प्रयासों में भी उसे दूसरी महाशक्ति या उनके मैत्रीय संघ से कोई समर्थन मिले—यह कल्पना से बाहर की बात लगती है। अंततः स्वयं अपने समानधर्माओं के साथ एकजुटता से, समन्वय की प्रविधि द्वारा भारत एवं मारीशस जैसे देशों को संस्कृति के मंच से वैश्विक शक्तियों के सम्मुख आना ही पड़ेगा।

वर्तमान संभवतः ऐसी परिस्थितियां पैदा कर रहा है जिससे छोटे राष्ट्रों को विवश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होकर तदनुरूप व्यवस्थाएं करनी पड़े—प्रायोगिक तौर पर ही सही भारत और मारीशस को हिंदी के माध्यम से अपने राष्ट्रीय दायित्वों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मंच पर आना चाहिए। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि हिंदी के विकास के लिए कुछ नयी योजनाओं की रूप रेखा बनाने के लिए पहल होनी चाहिए। मसलन भारत में मारीशसवासियों के हिंदी अध्ययन के लिए अतिरिक्त छात्रवृत्तियों का प्रावधान हो। मारीशस के अतिरिक्त भारतवंशी बहुल राष्ट्रों में भी यह योजना लागू करना न्याय संगत रहेगा। भाषाई माध्यम से संस्कृति के क्षेत्रीय अध्ययन के संस्थान कायम करना भी इसी परियोजना का हिस्सा है। जैसा कि विश्व हिंदी सम्मेलनों की अनुगूंज से ध्वनित हुआ है, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के विकास का एक सचिवालय मारीशस में स्थापित हो। यह सचिवालय आरंभ में मारीशस और भारत के संसाधनों से तथा बाद में अन्य राष्ट्रों के, जहां कि हिंदी का प्रयोग किसी न किसी स्तर पर हो रहा है, सहयोग से परिचालित हो। वास्तव में यह भाषा और संस्कृति का मंच बड़े राष्ट्रों में उस स्वामित्व के मिथक का भी ध्वंस कर सकता है कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में महत्तम शक्तियों की भाषा ही सर्वोपरि है।

मारीशस और भारत की सांस्कृतिक अनुरूपताओं को हिंदी अपने ढंग से वाणी देती है। यह आवश्यक है कि हम इस संदर्भ में मारीशस में व्यवहृत, भिन्न शैली वाली हिंदी के साहित्य का संवर्धन करें। स्पष्ट है भारत को हिंदी संबंधी अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में वैश्विक हिंदी का एक विकल्प जोड़ना पड़ेगा। वैश्विक हिंदी के इस विकल्प में मुख्यतः मारीशस के आधुनिक हिंदी साहित्य को शामिल करने के लिए कुछ संस्थानों में पहल करने के लिए आगे आना पड़ेगा। यह एक तरह से हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप की स्वीकृति ही होगी। हिंदी की चर्चा में संस्कृति का उपादान स्वतः मिला हुआ है अतः एक तरह से यह राष्ट्रीय संस्कृतियों के बीच समन्वय की संस्कृति का एक नया आचरण है जिसके द्वारा भारत और अन्य छोटे राष्ट्र पर संस्कृतियों के हमलों से स्वयं को सुरक्षित करने का कवच पा सकेंगे।

वास्तव में हिंदी और अंतर्राष्ट्रीय हिंदी संस्कृति के दो अलग मुद्दे हैं। यह जानते हुए भी कि एक बहुभाषी देश में हम एक भाषा या स्पष्ट कहें कि हिंदी के एकमात्र प्रयोग का प्रस्ताव नहीं दे सकते। यह न मारीशस के हित में है न भारत के हित में किंतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के चलन का पक्ष बिलकुल भिन्न है। इसके लिए एक अन्य तर्क का सहारा लिया जा सकता है, प्रत्येक राष्ट्रीय इकाई अपनी सांस्कृतिक नीतियों के अनुरूप अपने अन्यान्य कार्यक्रम नियोजित करती है, वे सांस्कृतिक नीतियां यदि दो राष्ट्रों के विनिमय सिद्धांतों के अंतर्गत गंभीर परीक्षण के उपरांत स्वीकृत हो यदि क्रिया रूप में लागू होती है तो उनसे दो राष्ट्रों की जनता की आकांक्षाओं के अनुकूल कार्य होता है। 'नार्डिक' देशों की एकता और उनकी सांस्कृतिक नीतियों का अवलोकन किया जाए तो स्पष्ट होगा कि राष्ट्रीय अस्मिता से छेड़छाड़ किए बिना अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक भाईचारा कायम किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मारीशस और भारत, दोनों को, भविष्य की ओर देखते हुए निश्चित ही हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप के गठन की दिशा में कार्य करना ही होगा। इसके दीर्घकालीन लोगों की लंबी सूची बनाई जा सकती है, प्रमुख है कि भारत और मारीशस एक सांस्कृतिक शक्ति के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाने में सक्षम हो सकेंगे। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी के विश्वव्यापी प्रसार में रामायण की भूमिका

लल्लन प्रसाद व्यास

रामायण और हिंदी का संबंध वैसा ही है जैसा संस्कृति और भाषा का है। दोनों एक दूसरे के पूरक या अन्योन्याश्रित हैं। रामायण से सभी रामकथा ग्रंथों का बोध होता है, किन्तु इसमें भी गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस अपना सर्वोच्च स्थान रखती है। ये परस्पर पूरक संबंध इसलिए हैं कि कोई महत्वपूर्ण भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं होती, बल्कि किसी विशिष्ट संस्कृति या दर्शन का भी प्रतिनिधित्व करती है और यह संस्कृति और दर्शन हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की रामायणों, विशेषकर रामचरितमानस के माध्यम से अधिक मुखरता और प्रभावी ढंग से व्यक्त हुए हैं। वस्तुतः रामायण के संदेश और आदर्शों को हिंदी का संदेश और आदर्श माना जा सकता है।

हिंदी का दर्शन

हिंदी के संदेश या दर्शन की बात सबसे अधिक प्रभावी ढंग से नागपुर के प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में गूंजी, जब हिंदी के विराट रूप दर्शन के साथ उसका तत्व दर्शन भी अभिव्यक्त होना आवश्यक था। अगर विश्व भर में विस्तृत हिंदी संपूर्ण धरती पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोली जाने वाली भाषाओं में तीसरा महत्व रखने के कारण अपने विराट और विशाल रूप का दर्शन कराती है तो उसके साथ जुड़ी हुई संस्कृति और दर्शन उसकी अतल गहराई का बोध कराता है। वस्तुतः यह विशालता और गहनता मिलकर ही हिंदी के संपूर्ण स्वरूप को बनाते हैं। तभी नागपुर के ऐतिहासिक सम्मेलन में हिंदी को प्रेम और एकता की भाषा के रूप में संसार भर से परिचित कराया गया। बाद के ऐसे सम्मेलनों में भी यही सत्य व्यक्त होता रहा।

तो रामायण अब भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व का भी प्रतिनिधि ग्रंथ माना जा सकता है, जो अनेक देशों में भारतवंशियों के माध्यम से हिंदी, संस्कृत आदि भाषाओं में अनुवादों के माध्यम से विश्व की प्रमुख भाषाओं में तथा स्वतंत्र रामकथाओं की रचना के माध्यम से पड़ोसी देशों में पहुंच चुका है।

रामायण भारतीय संस्कृति की परिभाषा

इसीलिए रामकथा ने केवल भारतीय संस्कृति ही नहीं, संपूर्ण मानव संस्कृति की प्रतिनिधि कथा का स्वरूप ग्रहण कर लिया है क्योंकि भारतीय संस्कृति अपनी उदात्तता, श्रेष्ठता, विशालता और शाश्वत मानवीय गुणों से युक्त होने के कारण मानव संस्कृति की पर्याय बन चुकी है। इस सत्य को कोई स्वीकार करे या न करे, पर है तो यह सत्य ही। तभी रामायण या रामकथा को भारतीय संस्कृति या मानव संस्कृति की परिभाषा का परिचायक कहा जा सकता है और इसके केंद्र बिंदु या नायक श्रीराम सभी संभव मानवीय गुणों और आदर्शों से युक्त होने के कारण विश्व के एक श्रेष्ठ आदर्श-पुरूष के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पूरी रामायण उन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती है।

रामायण ने भाषा और संस्कृति बचाई

यह तो हुई संपूर्ण रामकथा, भारतीय संस्कृति या मानव संस्कृति की बात। किंतु ऐसा लगता है कि हिंदी की नियति बहुत कुछ रामायण से जुड़ी है। इतिहास साक्षी है कि जब भारत में मुगलों का शासन स्थापित हो जाने के बाद उनके अनेक शासकों द्वारा भारतीय संस्कृति के सभी श्रद्धा-बिंदुओं पर प्रहार होने लगे सांस्कृतिक परंपराएं मिटाई जाने लगीं तथा हिंदी, संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं और देवनागरी लिपि को हटाकर अपनी विदेशी भाषा और लिपि शासन के माध्यम से थोपी जाने लगी, तब हिंदी और हिंदू के अस्तित्व पर ऐसे संकट के समय गोस्वामी तुलसीदास तथा अन्य अनेक सशक्त हिंदी भक्त कवियों ने साहित्य में भक्ति की धारा बहाकर एक ओर तो ऐसी पराजय और निराशा में भगवान का गुणगान करके आशा और संबल प्रदान किया तथा दूसरी ओर इस दौर में आदर्श रक्षा के लिए साहस और संघर्ष की प्रेरणा दी।

इसमें सबसे अधिक प्रभावी भूमिका 'रामचरितमानस' ग्रंथ की रही जिससे जुड़कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लाखों, करोड़ों लोगों ने आध्यात्मिक शक्ति और व्यावहारिक संदेश प्राप्त किया, क्योंकि यह ग्रंथ अध्यात्म और व्यवहार जगत के समन्वय का सूत्र जोड़ता है। रामकथा के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास ने समाज में संजीवनी का संचार किया और 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' के मंत्र का उद्घोष किया। साथ ही एक आदर्श मनुष्य के निर्माण का 'मानस' का उद्देश्य स्पष्ट रूप से सामने आया।

आधुनिक चुनौतियां और उत्तराधिकार

इसके अतिरिक्त हिंदी की नियति का एक यह महत्वपूर्ण सत्य भी उजागर हुआ कि जीवंत भाषा संस्कृत की उत्तराधिकारिणी होने के नाते हिंदी अपनी माता या अग्रजा संस्कृत की संपूर्ण विपुल साहित्य-धरोहर की उत्तराधिकारिणी बनकर भाषा, साहित्य और संस्कृति की आधुनिकतम चुनौतियों का सामना करने के लिए कटिबद्ध हो गई। जीवंत और समर्थ भाषा का उत्तराधिकार पाने के कारण हिंदी को अपने प्रगति-पथ पर संस्कृत का सहयोग और मार्गदर्शन भी मिलने लगा। चूंकि आदिकाल से भारतीय संस्कृति-दर्शन ने संस्कृत के माध्यम से अपने को अधिक व्यक्त किया है अतएव उसकी धरोहर पाकर अपेक्षाकृत आधुनिक भाषा हिंदी अपनी पूरी संस्कृति से जुड़ गई।

हिंदी का संचित पुण्य

इसीलिए जब गोस्वामी तुलसीदास ने जो आदि काव्य तथा रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि के अवतार माने जाते हैं, साहित्यिक दृष्टि से अद्वितीय और आध्यात्मिक दृष्टि से सिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' मात्र चार शताब्दी पूर्व प्रस्तुत किया तो हिंदी भाषा उसको पाकर धन्य हो गई। हिंदी की गौरव-वृद्धि में 'मानस' की भूमिका अद्वितीय है न केवल अपनी भगिनी भारतीय भाषाओं के बीच बल्कि सभी विश्व-भाषाओं के संदर्भ में भी। 'रामचरितमानस' के बारे में गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' लिख देने से यह सत्य भी उद्घाटित हो गया कि संपूर्ण शास्त्रों का सार या संपूर्ण संस्कृत वाङ्मय की भावनिधि इसमें निहित है। अपनी शाश्वत संस्कृति से ऐसे अभिन्न-अभेद रूप से जुड़ जाने की नियति ने ही हिंदी को कालांतर में संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा और अब विश्वभाषा की अद्वितीय स्थिति प्रदान की। स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी ने तो 1929 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर अधिवेशन में हिंदी की भवितव्यता के संपूर्ण मानवता के साथ जुड़ने की भविष्यवाणी की थी। उन्होंने कहा था—"हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य का भविष्य बहुत बड़ा है। उसके गर्भ में निहित भवितव्यताएं इस देश और उसकी भाषा द्वारा संसार भर के रंगमंच पर एक विशेष अभिनय कराने वाली हैं। मुझे तो ऐसा भासित होता है कि संसार की कोई भी भाषा मनुष्य-जाति को उतना ऊंचा उठाने, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने और संसार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुसभ्य और सद्भावनाओं से युक्त बनाने में उतनी सफल नहीं हुई जितनी कि आगे चलकर हिंदी भाषा होने वाली है। यह हिंदी के अपने पूर्व संचित पुण्य का फल है।''

काले बादल हटेंगे

संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थों और विदेशी भाषा के मोह के काले बादलों के बीच भी हिंदी का उज्ज्वल भविष्य और उनमें छिपी भवितव्यताएं चमकती और कड़कती बिजली की भांति अपना आभास करा देती हैं। जब कभी उत्तर से लेकर दक्षिण और पूरब से लेकर पश्चिम तक सभी देशवासियों में अपने राष्ट्र, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय संस्कृति के प्रति उत्कट प्रेम और भक्ति उपजेगी तो वे काले बादल अपने आप छट जायेंगे।

लेकिन ऐसी स्थिति न आने तक कभी-कभी यह देखकर जरूर बहुत लोगों को निराशा होती है कि जहां एक ओर हिंदी प्रगति पथ पर अग्रसर है, राजभाषा के रूप में उसका उपयोग बढ़ता है, वहीं दूसरी ओर उससे कहीं अधिक अनुपात में विदेशी भाषा अंग्रेजी पब्लिक स्कूलों, अंग्रेजीभक्त राजनेताओं, प्रशासकों और व्यापारियों आदि के माध्यम से बढ़ रही है। यद्यपि भारत में अंग्रेजी जानने वालों की संख्या लगभग दो प्रतिशत ही होगी, परंतु उनके व्यापक प्रभाव के कारण अंग्रेजी सर्वत्र छाई दिखाई पड़ती है। फलस्वरूप हिंदी राष्ट्रभाषा और राजभाषा होते हुए भी उसके समर्थकों में बहुत बड़ी निराशा और पस्तहिम्मती आ गई है। बहुत लोग तो यह भी मानने लगे हैं कि अंग्रेजीपरस्तों के चक्रव्यूह से हिंदी का निकल पाना कठिन है।

आज अंदर के दुश्मन से संघर्ष

क्या यह परिस्थिति उसी काल की ओर संकेत नहीं करती जब भक्त कवियों ने अपनी लेखनी से समाज को निराशा और कुण्ठा से उबारने में ऐतिहासिक भूमिका अदा की थी? अंतर सिर्फ इतना है—और वह बहुत बड़ा है कि पहले हम परतंत्र थे और अब स्वतंत्र हैं, किंतु इस अंतर ने ही स्थिति को कहीं अधिक गंभीर और भयावह बना दिया है अर्थात् पहले दुश्मन बाहर के थे और अब अंदर के हैं। घर के दुश्मन से लड़ना बाहरी दुश्मन की अपेक्षा कहीं अधिक मुश्किल होता है। यह अंदरूनी दुश्मन उस समय और अधिक खतरनाक और अपराजेय दिखाई पड़ता है जब वह अपने प्रभाव और शक्ति के बल पर किसी अहितकर स्थिति को समाज और देश के लिए हितकर बताकर उसे फैशन, प्रगतिशीलता और रोजी-रोटी और यहां तक कि वोटों की राजनीति से जोड़ दे तथा अल्पसंख्यक स्थिति में होते हुए भी अपनी कुटिल-रीति-नीति से ऐसा माहौल पैदा कर दे कि देशहितचिंतक बहुसंख्यक हिंदी भाषाभाषी भी अपने में हीनता, निराशा और पराजय का अनुभव करने लगें। विदेशी शासनकाल में भी बहुसंख्यक इसी मानसिक उत्पीड़न की स्थिति में थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऐसे दुःखद और गंभीर संकट के क्षणों में आवश्यकता है बहुसंख्यक स्वभाषा और स्वसंस्कृतिप्रेमियों में आशा, आत्मविश्वास और संकल्पशक्ति के जागरण की। रामायण या रामचरितमानस की प्रभावी भूमिका ऐसी परिस्थितियों में विशेष है। आजीवन अन्याय, अत्याचार या आसुरी शक्तियों से संघर्ष करने वाले श्रीराम की कथा होने के कारण यह प्रत्येक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देता है। साथ ही, इसमें ईश्वरीय या आध्यात्मिक तत्व सम्मिलित होने के कारण यह संघर्षशील व्यक्ति या समाज में दिव्य शक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रदान करती है। भले ही, उक्त व्यक्ति या समाज इस अलौकिक तत्व से अनभिज्ञ हो। अग्नि के संपर्क में आने पर उसके स्वभाव-कर्म से अपरिचित बालक, पशु या पक्षी भी प्रभावित तो होते ही हैं।

रामायण से प्रेरणा और शक्ति

रामायण से जुड़कर व्यक्ति या समाज हर परिस्थिति में प्रेरणा ग्रहण करके अपने कर्त्तव्य का निर्धारण कर सकता है और निराशा की स्थिति को आशा और विश्वास में बदल सकता है—उस समय जब वह पढ़ता हैः 'उर प्रेरक रघुबंस विभूसन' अर्थात श्रीराम व्यक्ति के अंतःकरण को सत्मार्ग पर प्रेरित करते हैं 'राम सत्य संकल्प प्रभु' अर्थात श्रीराम सत्यसंकल्प हैं उनका संकल्प या निश्चय सफल होकर ही रहता है; 'रावन रथी बिरथ रघुबीरा देख विभीषन भयो अधीरा' अर्थात् रथी या सर्वसाधनसंपन्न किंतु अत्यंत भ्रष्ट रावण के समक्ष युद्ध में डटे हैं बिरथ अर्थात् साधनहीन किंतु सर्वगुणसंपन्न श्रीराम और अंततः विजय होती है श्रीराम की, जो सत्य की विजय के प्रतीक हैं। वे साधारण बानर-भालुओं को बटोरकर उनकी सेना से समुद्र में पुल बांध देते हैं और त्रैलोक्य विजय करने वाले अन्यायी-अत्याचारी रावण का वध कर देते हैं अर्थात् असंभव को संभव में बदल देते हैं।

ऐसे प्रबल पुरुषार्थ और संघर्ष की प्रेरणा तथा उसके लिए आवश्यक शक्ति रामायण देती है। यही प्रेरणाशक्ति आज हमारे लिए आवश्यक है और यही हमारा कर्त्तव्य है। रामचरितमानस की ऐतिहासिक एवं युगांतकारी भूमिका आज फिर दोहराई जानी है। इसके अलावा और कोई विकल्प नजर नहीं आता। रामायण हिंदी-संस्कृत के साथ जुड़ी अमर संस्कृति का परिचय तो कराती ही है, साथ ही, उसमें ऐसा अमर जीवंत और प्रेरक तत्व है जो व्यक्ति या समाज के मृत या अर्द्धमृत शरीर में संजीवनी का संचार करने में भी समर्थ है। हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के हितों के संरक्षण और परिवर्धन के लिए रामायण का सहारा चाहिए। निस्संकोच होकर हम सभी इससे जुड़ें। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को उलटा समझकर अज्ञान में रामचरितमानस को मात्र कोई मजहबी या सांप्रदायिक ग्रंथ मानना बहुत बड़ी भूल होगी और यह भूल व्यक्ति या संप्रदाय को आत्मरक्षा और आत्मविकास के स्वर्णिम अवसर से वंचित कर सकती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रामचरितमानस में जो धर्म है, वह मानवीय कर्तव्यों की पहचान कराकर मानवीय गुणों से युक्त एक आदर्श मुनष्य बनाने का है। ऐसे शुद्ध सनातन धर्म के बिना नैतिकता की बात करना थोथापन है। 'रामौ विग्रहवान धर्मः' श्रीराम धर्म की मूर्ति हैं, किसी मजहब, पंथ या संप्रदाय के नहीं। वह धर्म, जो जाति और देश की सीमाओं से उठकर विश्व की समस्त मानवता को अपने में समाहित कर लेता है। श्रीराम और रामायण इसीलिए पूरे विश्व के हैं, विश्ववन्द्य हैं, सर्वमान्य हैं। व्यक्ति विशेष या संप्रदाय विशेष का अज्ञान ही उस अखंड ज्ञान-पुंज को समझने में बाधक हो सकता है। अंधकार ही प्रकाश का विरोधी होता है। संपूर्ण विश्व के विभिन्न देशों में 'विश्व साहित्य संस्कृति संस्थान' के द्वारा या उसके सहयोग से आयोजित अब तक नौ विश्व रामायण सम्मेलन श्रीराम और रामायण की सर्वमान्यता की एक बार फिर पुष्टि करने में समर्थ हैं जिनमें संसार की सभी जातियों, धर्मों, शासन-पद्धतियों और शारीरिक रंगों के देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लेकर जीवन में प्रेरणा और धन्यता अनुभव की है और यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति, राष्ट्र या विश्व के जीवन में वास्तविक सुख, शांति और भाईचारे का निर्माण रामायण के आदर्शों और संदेशों से संभव है। ऐसा ही एक (छठा) विश्व रामायण सम्मेलन मारीशस में 1990 में आयोजित हुआ था।

अनुकूलता की लहर

इस समय भारत सहित संसार भर में रामायण की अपनी एक लहर है चाहे वह फिल्मों और दूरदर्शन के माध्यम से हो अथवा शिक्षण संस्थाओं में पठन-पाठन के रूप में हो, चाहे विश्व भर की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से हो और चाहे विभिन्न कलाओं के माध्यम से कलात्मक अभिव्यक्तियां हों। किंतु जब फिल्मों का प्रसंग आया है तो यह विशेष रूप से आवश्यक है कि सस्ती और वासनामय फिल्मों के माध्यम से होने वाला हिंदी का व्यापक प्रचार भले ही भाषा का प्रचार दिखाई पड़े, किंतु यह भाषा से जुड़ी संस्कृति और दर्शन के विरुद्ध है। भारत के हिंदीतर भाषी प्रदेशों और संसार के दूसरे देशों में हिंदी फिल्मों को कुछ लोकप्रियता मिली और उसके साथ हिंदी का कुछ प्रचार भी हुआ, किंतु अधिकांश फिल्मों ने भारतीय समाज और संस्कृति का बहुत गलत चित्र पेश किया या यूं कहिए कि अनजाने में भारत को बदनाम किया है। दूरदर्शन की रामायण श्रृंखला ने देश-विदेश में शायद पहली बार भाषा के प्रचार के साथ, उससे जुड़ी संस्कृति का भी प्रभावी ढंग से परिचय कराया और उसे जो विश्वव्यापी लोकप्रियता प्राप्त हुई, उससे रामायण की विश्वव्यापी लहर के अस्तित्व की पुष्टि होती है। आस्थावादी लोग इसे ईश्वरेच्छा मानते हैं। इसके साथ ही विश्वभर के देशों में रामचरितमानस की लोकप्रियता दिन दूनी रात चौगुनी दिखाई पड़ती है। अखंड रामायण पाठ और सुंदरकांड पाठ के सैंकड़ों आयोजन मैंने स्वयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदेशों में देखे हैं। रामलीला भी देखी है। यहां तक कि पश्चिमी देशों में भी यह लहर बहुत शक्तिशाली है। इन कार्यक्रमों में युवा पीढ़ी विशेष रूप से जुड़ रही है। यद्यपि संस्कृत की वाल्मीकि रामायण, तमिल की कंब रामायण, बंगला की कृतिवास रामायण आदि रामायणों के साथ-साथ अन्य प्रदेशों तथा पड़ोसी देशों की रामायणें भी अपना महत्व रखती हैं, किंतु इन सबमें तुलसीकृत रामायण रामचरितमानस ही अपनी विशिष्ट अद्वितीय भूमिका अदा कर रही है जिसका भारत की लगभग सभी प्रादेशिक भाषाओं और विदेश की सभी प्रमुख भांषाओं में अनुवाद हो चुका है।

'मानस' हिंदी का गौरव मुकुट

अंत में हम पुनः दोहराना चाहेंगे कि रामचरितमानस हिंदी का गौरव मुकुट है जिसके माध्यम से हिंदी को वह संपूर्ण निधि या धरोहर उपलब्ध है, जो अबतक केवल देवभाषा संस्कृत को उपलब्ध थी। वस्तुतः आज यह विचार करने की आवश्यकता है कि जिस देश में श्रीराम जैसे लोकादर्श, रामायण जैसी मानव आचरण की संहिता और रामराज्य जैसी श्रेष्ठतम राजव्यवस्था है, वह आदर्श विचार और व्यवस्था के आयात के लिए किसी भी देश का मुंह ताके, इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है।

इसीलिए पूर्वकाल के इतिहास के अनुभव की पृष्ठभूमि में वर्तमान की भयावह समस्याओं और गंभीर चुनौतियों को देखते हुए केवल हिंदी ही नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं का रामायण से अन्योन्याश्रित संबंध पुनः सार्थक ढंग से जोड़ना चाहिए। वह पहले से ही जुड़ा है, इस वास्तविकतां को केवल स्वीकार कर अनुगमन करने की आवश्यकता है। चूंकि हिंदी के राष्ट्रभाषा, राजभाषा और विश्वभाषा होने के कारण उसका एक विशेष ऐतिहासिक उत्तरदायित्व है, जो वह रामायण के अपने अभिन्न संबंध के परिप्रेक्ष्य में पूर्ण करने में समर्थ है। आज हिंदी को संख्या बल पर मान्यता की आवश्यकता तो है ही, किंतु उसमें विपरीत परिस्थितियों से जूझने के लिए आवश्यक शक्ति और क्षमता उत्पन्न करने के लिए अपनी संस्कृति से और अधिक जुड़ने की आवश्यकता है, वही उसमें संख्या बल के साथ-साथ गुणवत्ता की अधिकाधिक सृष्टि करेगा और तभी वह भारत ही नहीं, संपूर्ण मानवता की नियति से जुड़ी हुई अपनी नियति को फलीभूत कर सकेगा। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रामचरितमानस में जो धर्म है, वह मानवीय कर्तव्यों की पहचान कराकर मानवीय गुणों से युक्त एक आदर्श मुनष्य बनाने का है। ऐसे शुद्ध सनातन धर्म के बिना नैतिकता की बात करना थोथापन है। 'रामौ विग्रहवान धर्मः' श्रीराम धर्म की मूर्ति हैं, किसी मजहब, पंथ या संप्रदाय के नहीं। वह धर्म, जो जाति और देश की सीमाओं से उठकर विश्व की समस्त मानवता को अपने में समाहित कर लेता है। श्रीराम और रामायण इसीलिए पूरे विश्व के हैं, विश्ववन्द्य हैं, सर्वमान्य हैं। व्यक्ति विशेष या संप्रदाय विशेष का अज्ञान ही उस अखंड ज्ञान-पुंज को समझने में बाधक हो सकता है। अंधकार ही प्रकाश का विरोधी होता है। संपूर्ण विश्व के विभिन्न देशों में 'विश्व साहित्य संस्कृति संस्थान' के द्वारा या उसके सहयोग से आयोजित अब तक नौ विश्व रामायण सम्मेलन श्रीराम और रामायण की सर्वमान्यता की एक बार फिर पुष्टि करने में समर्थ हैं जिनमें संसार की सभी जातियों, धर्मों, शासन-पद्धतियों और शारीरिक रंगों के देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लेकर जीवन में प्रेरणा और धन्यता अनुभव की है और यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति, राष्ट्र या विश्व के जीवन में वास्तविक सुख, शांति और भाईचारे का निर्माण रामायण के आदर्शों और संदेशों से संभव है। ऐसा ही एक (छठा) विश्व रामायण सम्मेलन मारीशस में 1990 में आयोजित हुआ था।

अनुकूलता की लहर

इस समय भारत सहित संसार भर में रामायण की अपनी एक लहर है चाहे वह फिल्मों और दूरदर्शन के माध्यम से हो अथवा शिक्षण संस्थाओं में पठन-पाठन के रूप में हो, चाहे विश्व भर की प्रमुख भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से हो और चाहे विभिन्न कलाओं के माध्यम से कलात्मक अभिव्यक्तियां हों। किंतु जब फिल्मों का प्रसंग आया है तो यह विशेष रूप से आवश्यक है कि सस्ती और वासनामय फिल्मों के माध्यम से होने वाला हिंदी का व्यापक प्रचार भले ही भाषा का प्रचार दिखाई पड़े, किंतु यह भाषा से जुड़ी संस्कृति और दर्शन के विरुद्ध है। भारत के हिंदीतर भाषी प्रदेशों और संसार के दूसरे देशों में हिंदी फिल्मों को कुछ लोकप्रियता मिली और उसके साथ हिंदी का कुछ प्रचार भी हुआ, किंतु अधिकांश फिल्मों ने भारतीय समाज और संस्कृति का बहुत गलत चित्र पेश किया या यूं कहिए कि अनजाने में भारत को बदनाम किया है। दूरदर्शन की रामायण श्रृंखला ने देश-विदेश में शायद पहली बार भाषा के प्रचार के साथ, उससे जुड़ी संस्कृति का भी प्रभावी ढंग से परिचय कराया और उसे जो विश्वव्यापी लोकप्रियता प्राप्त हुई, उससे रामायण की विश्वव्यापी लहर के अस्तित्व की पुष्टि होती है। आस्थावादी लोग इसे ईश्वरेच्छा मानते हैं। इसके साथ ही विश्वभर के देशों में रामचरितमानस की लोकप्रियता दिन दूनी रात चौगुनी दिखाई पड़ती है। अखंड रामायण पाठ और सुंदरकांड पाठ के सैंकड़ों आयोजन मैंने स्वयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदेशों में देखे हैं। रामलीला भी देखी है। यहां तक कि पश्चिमी देशों में भी यह लहर बहुत शक्तिशाली है। इन कार्यक्रमों में युवा पीढ़ी विशेष रूप से जुड़ रही है। यद्यपि संस्कृत की वाल्मीकि रामायण, तमिल की कंब रामायण, बंगला की कृतिवास रामायण आदि रामायणों के साथ-साथ अन्य प्रदेशों तथा पड़ोसी देशों की रामायणें भी अपना महत्व रखती हैं, किंतु इन सबमें तुलसीकृत रामायण रामचरितमानस ही अपनी विशिष्ट अद्वितीय भूमिका अदा कर रही है जिसका भारत की लगभग सभी प्रादेशिक भाषाओं और विदेश की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

'मानस' हिंदी का गौरव मुकुट

अंत में हम पुनः दोहराना चाहेंगे कि रामचरितमानस हिंदी का गौरव मुकुट है जिसके माध्यम से हिंदी को वह संपूर्ण निधि या धरोहर उपलब्ध है, जो अबतक केवल देवभाषा संस्कृत को उपलब्ध थी। वस्तुतः आज यह विचार करने की आवश्यकता है कि जिस देश में श्रीराम जैसे लोकादर्श, रामायण जैसी मानव आचरण की संहिता और रामराज्य जैसी श्रेष्ठतम राजव्यवस्था है, वह आदर्श विचार और व्यवस्था के आयात के लिए किसी भी देश का मुंह ताके, इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है।

इसीलिए पूर्वकाल के इतिहास के अनुभव की पृष्ठभूमि में वर्तमान की भयावह समस्याओं और गंभीर चुनौतियों को देखते हुए केवल हिंदी ही नहीं बल्कि सभी भारतीय भाषाओं का रामायण से अन्योन्याश्रित संबंध पुनः सार्थक ढंग से जोड़ना चाहिए। वह पहले से ही जुड़ा है, इस वास्तविकता को केवल स्वीकार कर अनुगमन करने की आवश्यकता है। चूंकि हिंदी के राष्ट्रभाषा, राजभाषा और विश्वभाषा होने के कारण उसका एक विशेष ऐतिहासिक उत्तरदायित्व है, जो वह रामायण के अपने अभिन्न संबंध के परिप्रेक्ष्य में पूर्ण करने में समर्थ है। आज हिंदी को संख्या बल पर मान्यता की आवश्यकता तो है ही, किंतु उसमें विपरीत परिस्थितियों से जूझने के लिए आवश्यक शक्ति और क्षमता उत्पन्न करने के लिए अपनी संस्कृति से और अधिक जुड़ने की आवश्यकता है, वही उसमें संख्या बल के साथ-साथ गुणवत्ता की अधिकाधिक सृष्टि करेगा और तभी वह भारत ही नहीं, संपूर्ण मानवता की नियति से जुड़ी हुई अपनी नियति को फलीभूत कर सकेगा। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देश के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाने वाली हिंदी ही राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है।

—सुभाषचंद्र बोस

सबको हिंदी सीखनी ही चाहिए—इसके द्वारा भाव विनिमय से सारे भारत को सुविधा होगी।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

हिंदी अब सारे भारत की राष्ट्र भाषा बन गई है। हमें उस पर गर्व होना चाहिए।

—सरदार वल्लभभाई पटेल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दक्षेस देशों का साहित्य

गोविंद सिंह

सिंधु नदी के ऊपर किसी जगह हवाई जहाज के कप्तान ने घोषणा की, कि देहली या दिल्ली में बारिश के बाद ऐसे कुहरे का साम्राज्य है कि हम लोगों को संभवतः उत्तर-पश्चिम सीमांत पर कहीं उड़ना होगा। ... हम उड़े भी। हमारे सामने सुबह का बंगाली सूर्य था, बहुत नीचे कपास के फाहे थे, सिंधु-गंगा घाटी की सिलेटी धुंध के घेरे में हजार सिरों वाला सफेद भेड़ों का झुंड था और बायीं ओर चमकीले सफेद और सुनहरे बख्तर में काराकोरम और हिमालय के प्राचीर थे। ... काराकोरम और हिमालय मुजाहिदीन फौजों की तरह खड़े थे, अपनी लश्करी तलवार चमकाते हुए एक अभियान जो अपने दक्षिण की ओर कूच करने से हिचकिचाता है, क्योंकि वहां असाधारण रूप से विपुल कुछ पक रहा है।

चेक साहित्यकार मिरोस्लाव होलुब के भारत यात्रा वृत्तांत (समास-एक) से ली गई ये पंक्तियां बताती हैं कि भारतीय उप महाद्वीप में ऐसा कुछ है जिसकी तरफ दुनिया के तमाम कोनों में बैठे साहित्यकारों-चिंतकों की निगाहें लगी हुई हैं। जिन्हें आशा है कि भारत में आज भी ऐसा कुछ हो रहा होगा, जो भटके हुए विश्व को राह दिखा सकता है, जो हथियारों के जखीरे पर बैठे मनुष्य को शांति का संदेश दे सकता है, शायद कोई बुद्ध, गांधी या विवेकानंद भारत की भीड़ भरी गलियों में मिल जाए या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कालिदास या रवींद्रनाथ ठाकुर के सुर सुनाई पड़ें।

आखिर भारतीय उपमहाद्वीप या जिसे हम इधर दक्षेस (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) नाम से जानने लगे हैं, उसमें ऐसा क्या है जो विदेशी मनीषियों को आकृष्ट करता है। वह कौन सा तत्व है जो हजारों वर्षों से उस महादेश की संस्कृति को जिलाए हुए है? प्रोफेसर चाइल्ड को उद्धृत करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू कहते हैं, ''सिंध सभ्यता, एक विशेष वातावरण में, मनुष्य के जीवन का पूरा संगठन प्रकट करती है, और यह अनेकानेक वर्षों के प्रयत्नों का ही परिणाम हो सकती है। यह एक टिकाऊ सभ्यता थी। उस समय भी उस पर हिंदुस्तान की अपनी छाप पड़ चुकी थी और यह आज की हिंदुस्तानी संस्कृति का आधार है।'' (डिस्कवरी ऑफ इंडिया)। नेहरू को हिंदुस्तानी संस्कृति के केंद्र में विविधता में एकता दिखती है। वे कहते हैं, ''यद्यपि ऊपरी तौर पर हमारे देश के लोगों में विविधता और विभिन्नता दिखाई देती है, लेकिन सभी जगह वह समानता और एकरूपता भी मिलती थी, जिसने कि हमारे दिन, चाहे जैसे बीते हों, हमें एक साथ रखा।''

यही बात भारतीय उपमहाद्वीप के साहित्य में भी लक्षित होती है। बावजूद तमाम विविधताओं, विवादों के उसकी आत्मा एक है। यहां धार्मिक मतभेद हो सकते हैं, भाषाई विवाद हो सकते हैं, रहन-सहन और जीवन शैलियों में विविधता मिल जाएगी, लेकिन साहित्य की मूल चिंताएं, जो निश्चय ही सभ्यता का केंद्रीय तत्व बनाती हैं, एक हैं। पर दुर्भाग्य से पाश्चात्य संस्कृति की ऐसी छाया है कि हम अपने ही देश की दूसरी भाषाओं के साहित्य के बारे में बहुत कम जानते हैं जबकि ब्रिटेन, अमेरिका व फ्रांस के साहित्य की बारीक पकड़ रखते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप या दक्षेस के अंतर्गत फिलहाल सात देश हैं। भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान और मालदीव। अलग-अलग राष्ट्र होते हुए भी वे एक ही सभ्यता के पोषक हैं, एक ही हिमालय की छाया में विकसित, पल्लवित हो रहे हैं। दक्षेस (सार्क) संगठन बनने के बाद निश्चय ही इन देशों के बीच साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियां और आदान-प्रदान शुरू हुए हैं। इसलिए इस संगठन का खासा महत्व है कि इसने अपनों से आपस में कम से कम संवाद तो शुरू करवाया। वरना इससे पहले तो बड़ी दमघोंट संवादहीनता थी। इस संवादहीनता की वजह से पश्चिम के समक्ष भी इस उपमहाद्वीप के साहित्य की कोई मुकम्मल तस्वीर उभर नहीं पाती थी। हमारे आपस में अनुवाद या भाषांतर की बड़ी कमी है। अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण पश्चिम का कोई भी लेखक तत्काल अनूदित होकर हिंदी या बांग्ला में पहुंच जाता है लेकिन हम सिंहली के बड़े से बड़े कवि को जानते तक नहीं। यह विडंबना अब खत्म होनी ही चाहिए। पाश्चात्य साहित्य के साथ हमारा संबंध बराबरी का होता तो भी बात और अच्छी थी। वहां भी संबंध दाता और पाता का है अर्थात् उनके साहित्य का तो हम तत्काल अनुवाद करा देते हैं लेकिन क्या वे भी हमारे साहित्य को पढ़ने में दिलचस्पी दिखाते हैं? शायद नहीं। यह एक नए तरह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का उपनिवेशवाद है जो ऊपर से दिखता नहीं लेकिन सांस्कृतिक स्तर पर जिसने समूचे दक्षिण एशिया को अपने शिकंजे में जकड़ रखा है। इसलिए यदि दक्षिण एशियाई देश आपस में एक हो जाएं तो साहित्य संस्कृति का बड़ा उद्धार हो।

दक्षिण एशियाई देशों के पास हजारों साल पुरानी सांझी संस्कृतिक विरासत है, यह क्षेत्र मानवीय नवरचना का महान केंद्र रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही इस क्षेत्र के नैसर्गिक सौंदर्य और धनधान्य ने दुनिया के विविध वर्गों, राजाओं, सम्राटों को आकृष्ट किया। आर्य, ग्रीक, पारसी, अरब, शक, हूण, मुगल, पठान, मंगोल और न जाने कौन-कौन सी जातियां आईं। इस तरह जातियों के आपस में इतने विविध किस्म के मिश्रण हैं कि उन्हें पृथक कर पाना कठिन है। इसलिए आर्नल्ड टॉयनबी के शब्दों में ''दक्षिण एशिया में सभ्यता एक आयामी की बजाय बहुलवादी हो गई है।''

अपनी अलग-अलग आंतरिक व्यवस्थाओं के बावजूद दक्षिण एशियाई देशों के साहित्यकारों की बुनियादी चिंताएं एक सी ही हैं। इन चिंताओं में प्रमुख हैं—भूख, गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, दिशाहीनता, सांस्कृतिक शून्यता और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद। अपनी-अपनी व्यवस्थाओं से टकराने और उसमें मानवीय स्वातंत्र्य के लिए जगह बनाने की चिंता भी सर्वत्र दिखती है। एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के गरीब देश जिस तरह से अमीर देशों की गिरफ्त में आते जा रहे हैं, उससे मुक्ति की कामना दिखती है हमें दक्षिण एशियाई साहित्य में। प्रगति और विकास के साथ-साथ अपनी अस्मिता की तलाश या पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध भरी दुनिया में हाथ में नन्हा सा पवित्र दीपक लेकर अपना चेहरा दिखाने की छटपटाहट है दक्षेस देशों के साहित्य में।

हमारी सरहदें भौगोलिक दृष्टि से भले ही हमें अलग करती हों, लेकिन साहित्य जोड़ने की निरंतर कोशिश करता रहता है। पाकिस्तान के बनने के बाद से आज तक राजनीतिक स्तर पर हम एक दूसरे से अलग ही ज्यादातर समय रहे। लेकिन पिछले दिनों भारत आए पाकिस्तानी कथाकार इंतिजार हुसैन का कथन कितना सकारात्मक है। इंतिजार हुसैन का एक कथा संग्रह (अंग्रेजी मे) 'लीव्ज' नाम से हाल ही में रूपा एंड कंपनी से छपा है, इसकी ज्यादातर कहानियों के स्त्रोत जातक व पौराणिक कथाओं से लिए गए हैं। मुसलमान और पाकिस्तान होते हुए भी इंतिजार ने इस देश की पुराकथाओं का सहारा लिया है। इंतिजार कहते हैं, 'बैताल पच्चीसी', 'पंचतंत्र', 'अलिफ लैला', 'सिंहासन बत्तीसी' की कहानियों से तो मैं पहले ही परिचित रहा हूं। 1972 में 'जातक कथाएं' भी पढ़ीं। इन कथाओं को अंग्रेजी में पढ़ते हुए मुझे लगा कि जिस युग की बात इनमें की जा रही है, और जिस लूट-खसोट, रिश्वत, वासना, प्रेम, वियोग के हवाले इनमें हैं, वैसी ही चीजें तो हमारे समाज में भी घट रही हैं। मुझे लगा कि डाँडे कहीं मिल रहे हैं। मुझे यह भी लगा कि कथा भंडार की यह जो इतनी बड़ी धरोहर है, कहानी से कहानी बुनने की जो कला है, वह तो वास्तव में बहुत बड़ी चीज है, बस यहीं से इन कहानियों की शुरुआत हुई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फर्रादा हफीज की एक छोटी सी कहानी है 'रब न करे'। इस कहानी का एक अंश यहां प्रस्तुत है :

"मैं जब डिस्पेंसरी पहुंची तो खिड़की में खड़े कंपांउडर ने मेरी तरफ ध्यान ही न दिया। जब मैंने बार-बार उससे दवा का तकाजा किया तो उसने पहले मुझे घूर कर देखा फिर डांट कर सर ढकने और लाइन में खड़े होने को कहा। लाइन बहुत लंबी थी और वह दवा देने की बजाय दूसरों के मामलात में ज्यादा दखल अंदाजी कर रहा था। मैं घबराहट में बार-बार दुपट्टा सर पर डालती, वह बार-बार सर से ढुलक जाता और सब लोग मेरी तरफ तकने लगते। मेरे पांव नंगे थे और पथरीली जमीन पर भागने की वजह से जख्मी हो गए थे। मगर मुझे इसकी परवाह नहीं थी। एक ही फिक्र थी—मां की। लंबी कतार कम होने में ही न आती थी। लोग लाइन तोड़कर आगे निकल जाते। मैं बार-बार ढुलकते दुपट्टे को संभालती रही और डिस्पेंसरी बंद हो गई। मैं नाकाम व नामुराद घर पहुंची। तो मेरी मां मर चुकी थी और मेरे बहन-भाई उससे लिपटकर रो रहे थे।"

इस कहानी को पढ़कर कहीं से भी यह नहीं लगता कि यह कहानी किसी और देश या जमीन की कहानी है, वही लालफीताशाही, वही दकियानूसी नजरिया, वही भ्रष्टाचार, वही खोखले हो चुके जीवन मूल्य और इन सब प्रतिकूल स्थितियों से बार-बार सर टकराने की एक अकेली कोशिश। यही भारतीय मूल्यों की पराकाष्ठा भी है और नदी की धवल धारा की तरह निश्छल प्रवाह भी। एक ऐसा प्रवाह जो कभी रुककर पंकिल नहीं होना चाहता, जो मानवीय आकांक्षाओं के साथ अन्याय नहीं सहन कर सकता। मुहम्मद इकबाल, सआदत हसन मंटो, फैज अहमद फैज, जोश मलीहाबादी से लेकर एक दम आज के कवियों, शायरों की रचनाओं में यह दर्द बरकरार है। आज के पाकिस्तानी रचनाकारों में फहमीदा रियाज, जोन इलिया, निगार सइबाई, नासिर कालमी, मुस्तफा जैदी, किश्वर नाहीद, ताज सईद आदि ऐसे अनेक नाम हैं जो पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बंटवारे को (कम से कम अपने कलाम में) स्वीकार नहीं कर पाते और आज भी अपने साहित्य में भारतीय संस्कृति के रंग भरते हैं, कुछ महीने पूर्व पाकिस्तान के मशहूर शायर जोन इलिया भारत की यात्रा पर आए थे। बाराबंकी के मुशायरे में अपनी आव भगत का उत्तर उन्होंने कुछ यूं दिया :

मिलकर तपाक से न हमें कीजिए उदास
खातिर न कीजिए कभी हम भी यहां के थे।
क्या पूछते हो नामो-निशाने मुसाफरां
हिंदोस्तां में आए हैं, हिंदोस्ता के थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुलदीप तलवार ने एक संस्मरण में लिखा है, ''चलती दफा रेलवे स्टेशन जाते हुए रिक्शा से सफर कर रहे थे, एक जगह रिक्शा रुकवा कर अपनी कमीज उतारी और जमीन पर लेट गए। एक दो शायर मित्र भी साथ थे। उन्होंने जब यह पूछा कि यह क्या कर रहे हो, कहने लगे, ये मिट्टी कुछ समय तक तो मुझे यहां की याद दिलाती रहेगी।''

अपनी माटी से यह अगाध स्नेह हिंदुस्तानी शायरों में ही हो सकता है जो पाकिस्तान बनने के बावजूद बरकरार है। जौहर निगाह की कुछ पंक्तियां गौरतलब हैं :

मेरी जमीन भी तुम्हारी जमीन से मिलती है
दरीदा पीर-ए-हस्ती बेबसी भी एक सी
हमारे इतिहास और भूगोल समान हैं
हमारी सोच और हमारे सपने भी मिलते-जुलते हैं।

हिंदुस्तान के बंटवारे को नकारने वाली असंख्य रचनाएं भारतीय साहित्यकारों ने रची हैं जिनका जिक्र करना यहां मुनासिब नहीं होगा क्योंकि हिंदुस्तानी साहित्यकार तो लिखता आया है, हम तो यह कहना चाहते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप के रचनाधर्मी किस हद तक एक तर्ज पर लेखन कर रहे हैं।

भारत भूमि से जुड़े रहने की ऐसी ही छटपटाहट बांग्लादेशी साहित्यकारों में भी दिखती है। काजी नजरूल इस्लाम जिस तरह आज भी पूरे बंगाल के कवि हैं, उसी तरह गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर बांग्लादेशियों के लिए पूज्य हैं। 'रवींद्रनाथ' शीर्षक कविता में अल महमूद लिखते हैं :—

सुनो रवींद्रनाथ!
आज अगर बो दूं तुम्हारी समूची कविता में
और उसे सींचू रातों-दिन
कोई कनखा नहीं फूटेगा, जानता हूं सच्चाई मैं
तुम्हारा बांग्लादेश, प्यारे टैगोर, हो चुका है ऐसा बांझ

बांग्लादेशी साहित्य पर भाषा आंदोलन का जबर्दस्त प्रभाव रहा है। गौरतलब है कि यदि बांग्लादेश में बांग्ला को बचाने का आंदोलन न छिड़ा होता तो आज बांग्लादेश न बना होता। अलाउद्दीन अल आजाद, गनी जहारी, शहीद कादरी, हसन हफीर्जुरहमान, फजल शहाबुद्दीन और सिकंदर अबू जफर आदि ऐसे नाम हैं जिन्होंने बांग्ला भाषा आंदोलन से प्रेरणा ग्रहण कर रचना की। बांग्लादेशी कवि भी बंगाल के विभाजन को लेकर दुःखी रहे हैं। पश्चिमी हिस्से से जो मुस्लिम रचनाकार पूर्वी बंगाल गए उन्हें हमेशा पश्चिमी धरती की यादें सताती हैं। वे खुद को अपनी माटी से जुदा समझें भी तो कैसे?

दाउद हैदर की कविता 'ओ मेरे कलकत्ता' की कुछ पंक्तियां यहां द्रष्टव्य हैं :

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ओ कलकत्ता!
तुम कोई ऐसे वैसे शहर तो नहीं
जिसे मैं नुमाइश में रख सकूं
या किसी शो केस में बंद रखूं
फिर मुझे नहीं मालूम
कि क्यों मैं तुमसे इतना प्यार करता हूं।

तीसरी दुनिया के तमाम देशों की तरह बांग्लादेशी रचनाकार भी लगभग वैसी ही समस्याओं से गुजर रहा है। गरीबी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, बाढ़ या अकाल और अभावों भरी जिंदगी। सोहराव हसन की कुछ पंक्तियां गौरतलब हैं :—

इस धरती पर मैं वैसी शांति की बात कर
सकता हूं/जबकि लाखों लोग भूखों मर रहे हैं।
मैं शांति की वकालत कैसे कर सकता हूं
जबकि सातवां बेड़ा पड़ोस के दरवाजे पर
दस्तक दे रहा है/ओ परवरदिगार/मुझे बताओ
जब पूरी तीसरी दुनिया/जल्लाद के फंदे के
नीचे हो/मैं कैसे प्रजातंत्र और शांति की
अपील करूं?

सातवें और आठवें दशक में उभरे कवियों में निर्मलेंदु गून, रफीक आजाद, अबुल हसन और दाउद हैदर आदि के नाम प्रमुख हैं। इन्हें आज काफी लोकप्रियता प्राप्त है। इनमें से बहुत से लोगों ने स्वयं भी बांग्लादेशी मुक्ति संघर्ष में भाग लिया। कुछेक ने देश से बाहर रहकर भूमिगत रहकर देश-सेवा की। रफीद आजाद की कविता की कुछ पंक्तियां यहां प्रस्तुत हैं जो बांग्लादेश बनने के बाद लिखी गई थीं :

तबाही के मलबे पर पड़ी हैं भोर की किरणें
रेस्तरां से मेरे लिए रोज सुबह नाश्ता लाने वाला
वह लड़का/आज मुझे तिराहे पर लेटा पड़ा मिला
खून में लथपथ थी उसकी कमीज
खंडहर हुए मकानों के बीच से
एक और लड़का
चुन रहा है ईंटों के टुकड़े।

बांग्लादेश में कविता, कहानी का माहौल बड़ा ही जीवंत है, नाटक के क्षेत्र में भी नित नए प्रयोग देखने को मिलते हैं। तसलीमा नसरीन के उपन्यास 'लज्जा' पर तो प्रतिबंध लगा ही है, जिसमें छह दिसंबर की अयोध्या घटना के बाद के बांग्लादेशी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माहौल की दर्दभरी दास्तान वर्णित है। कुल मिलाकर पाकिस्तान और बांग्लादेश के साहित्य को हम किसी भी अर्थ में विदेशी साहित्य नहीं मान सकते। वे न सिर्फ अभी तक विद्रोह व बंटवारे के नोस्टोल्जिया से पीड़ित हैं बल्कि उनकी रचनात्मक चिंताएं भी कमोबेश हमारी ही हैं।

भारत के उत्तर में हिमालय पर्वमाला से घिरा देश नेपाल अलग देश होते हुए भी पूरी तरह से भारत के अंग जैसा ही है, दोनों देशों के निवासी आपस में किसी तरह का भेदभाव नहीं मानते। धर्म, रीति रिवाज, साहित्य, संस्कृति हर दृष्टि से नेपाल और भारत दो भाइयों की तरह हैं। नेपाली भाषा भी भारतीय आर्यभाषा परिवार की भाषा रही है। कुछ लोग तो इसे पहाड़ी हिंदी की तरह हिंदी की उपभाषा भी कहते हैं। जो भी हो यह हिंदी की सबसे निकटस्थ भाषाओं में से एक है। नेपाल में लंबे अर्से तक राजतंत्रीय शासन व्यवस्था के कारण वहां का साहित्य भी राज्याश्रय में पनपा। लेकिन यह साहित्य हिंदी के रीतिकालीन साहित्य जैसा ही है पर नेपाली कांग्रेस और साम्यवादी आंदोलनों के कारण काफी कुछ भूमिगत साहित्य भी लिखा गया। पर इसका यह मतलब नहीं कि नेपाली के साहित्य की परंपरा कमजोर रही है, भानुभक्त आचार्य अठारहवीं शताब्दी के मशहूर कवि रहे हैं। उन्हें नेपाली भाषा का तुलसीदास कहा जाता है, जिन्होंने रामायण की आम बोलचाल की नेपाली में पुनर्रचना की। इसके बाद मोतीराम भट्ट, केदान मान व्यथित, वसंत शर्मा के नाम प्रकाश में आए। लेकिन यह 1900 ई. से पहले की बात है और वह साहित्य भी भक्ति या रीतिकालीन साहित्य के ज्यादा करीब है।

बीसवीं शताब्दी के नेपाली कवियों में लेखनाथ पौद्याल, बाल कृष्ण शर्मा और लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा प्रमुख हैं। इनके अलग-अलग प्रयासों से नेपाली साहित्य को नए आयाम प्राप्त हुए। साठ के दशक में मोहन कोईराला, बैरागी कैनला और ईश्वर बल्लभ के नाम चर्चित हुए। इस काल की कविता पुरा संदर्भों से भरपूर रही। इस कविता पर भारतीय छायावाद का ज्यादा असर रहा। हिंदी और नेपाली साहित्य में भेद कर पाना इसलिए भी मुश्किल होता है कि नेपाली साहित्य के दो गढ़ों में से एक काठमांडू में है तो दूसरा दार्जिलिंग (भारत) में। और प्रमुख नेपाली कवि बालकृष्ण शर्मा के शब्दों में ''दार्जिलिंग जो आज सोचता है, उसे नेपाल कल सोचेगा'', बहरहाल इन दिनों नेपाल के साहित्यिक वातावरण में कई नई धाराएं दिखाई पड़ रही हैं। एकदम आज की पीढ़ी में बानीरा गिरि का नाम प्रमुख है। बानीरा भी भारत के दार्जिलिंग जिले से नेपाल जा बसी हैं। उनकी कविताओं में यदि एक तरफ नारी का संघर्ष है तो दूसरी तरफ दमित, शोषत प्रजा का दुख दर्द भी। बानीरा की कविताएं आपको जगाए रखने वाली कविताएं हैं ताकि समाज की तरफ़ से आप आंखें न मूंद लें। उनकी 'काठमांडू' कविता दर्शनीय है :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भट्ठी हो गया है काठमांडू
एक लाख वाट के दाह से धधकता
राजधानी की अनाथ बालाएं
बैठी हैं सीता की तरह धधकती चिता पर
तैयार अपने सुनहरे शरीर तपाने को
हिम धवल फाख्ते हैं उड़ते हैं अनंत नीलाकाश में
एक कारागार है हर नागरिक की आंखों में
और जैसे ही जल रनपोखर का डूबता है रंगों में
आ जुटते हैं काले तस्कर
मोटे पाखंडी, चुगलखोर, उठाई गीर
सबकी शुद्धि हो जाती है।
यद्यपि मैं रहती हूं काठमांडू में
काठमांडू मुझमें नहीं रहता।

निश्चय ही समाज की यह तस्वीर खीचने के लिए साहस चाहिए और वह भी उस युग में जब राजतंत्रीय शासन व्यवस्था हो। नेपाली कथा साहित्य में भी कमोवेश वही प्रवृत्तियां मौजूद हैं जो भारतीय साहित्य में। यह नेपाली समाज का जीवंत दर्पण तो है ही भारतीय समाज, भारत में रह रहे 30-40 लाख नेपालियों के जीवन की झलक भी प्रस्तुत करता है। दार्जिलिंग के एक वकील रूपनारायण सिंह द्वारा रचित कहानी 'अन्नपूर्णा' (1927) नेपाली कहानी के इतिहास में मील का पत्थर रही है। तीस के दशक के अंतिम वर्षों में लिखी विश्वेश्वर प्रसाद प्रसाद कोइराला की कहानी 'कर्नल का घोड़ा' कहानी का अपना महत्व है। यह कहानी समाज में व्याप्त अनमेल विवाह पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। प्रेमचंद की 'निर्मला' उपन्यास में भी लगभग यही समस्या उठाई गई है। भारतीय नेपाली कथाकारों में शिवकुमार राय व इंद्रबहादुर राय प्रमुख हैं। बालकृष्ण शर्मा, गुरुप्रसाद मैनाली, पुष्कर शमशेर भी प्रमुख कथाकारों में हैं। 1962 में प्रकाशित शंकर के उपन्यास का अर्द्ध मुदित नयन और डूबता हुआ सूरज बुद्ध के जीवन पर आधारित है। आधुनिक नेपाली कथा साहित्य पर इसका बड़ा असर रहा है।

भारत के धुर दक्षिण में श्रीलंका का साहित्य यद्यपि हिंदी से थोड़ा भिन्न है लेकिन भारत की चार द्रविड़ भाषाओं के ज्यादा करीब है। श्रीलंका में सिंहली, तमिल और अंग्रेजी में साहित्य-रचना हो रही है। श्रीलंकाई समाज को भी साढ़े चार सौ वर्ष पुर्तगाली, डच और अंग्रेजी शासन के अधीन रहना पड़ा, लेकिन आजादी के लिए उसे भारत की तरह से व्यापक संघर्ष नहीं करना पड़ा। भारत की आजादी के साथ ही श्रीलंका को भी आजादी मिल गई। फिर भी उसके साहित्य में भी भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियां यथेष्ट मात्रा में मौजूद हैं। अमूमन पाश्चात्य जगत में भी श्रीलंकाई साहित्य को भारतीय साहित्य का विस्तार मान लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रीलंका में मूलतः सिंहली भाषा रही है। यह भी भारोपीय-द्रविड़ भाषा परिवार की भाषा है। तमिल भी उत्तरी हिस्से में बोली जाती है जिससे दोनों भाषाओं में साहित्यिक आदान-प्रदान होता रहा है। सन् 1948 में आजादी के बाद श्रीलंका में सिंहली राष्ट्रवाद की धारा प्रबल हुई। वहां के सांस्कृतिक माहौल में भी सिंहली राष्ट्रवाद का वर्चस्व रहा। एदिरिवीरा सरच्चन्द का नाटक 'मुनाम' जेम्स पीयरिस की फिल्म 'रेखावा' (1956) और मार्टिन विक्रमसिंघे का उपन्यास 'वैराग्य' ने सिंहली समाज की धड़कनों को बारीकी से मापने की कोशिश की और सचमुच श्रीलंकाई साहित्य में नए मुहावरे ने जन्म लिया। इससे सिंहली समाज-संस्कृति में भी नवजागरण का दौर आया।

श्रीलंका गद्य का उद्‌भव पद्य की अपेक्षा पहले हुआ। बल्कि सम्राट अशोक द्वारा श्रीलंका में बौद्ध धर्म के प्रचार के समय से ही वहां गद्य का प्रचलन रहा है। इस प्रकार भारत की धर्म साधना का वहां के सांस्कृतिक पर्यावरण पर गहरा असर रहा है। विक्रमसिंघे का 1944 में प्रकाशित उपन्यास *'बदलता हुआ गांव'* सिंहली उपन्यास के इतिहास में एक मील का पत्थर है। यह सिंहली सोच, संवेदनशीलता और कल्पनालोक को बखूबी उभारता है। इनके अतिरिक्त गुणदास अमरशेखर और सायमन नवगट्टेगामा, करुणा परेरा के नाम प्रमुख हैं। करुणा परेरा की एक कहानी है 'कर्मों का फल'। इसे पढ़कर कहीं से भी नहीं लगता कि यह किसी और देश की कहानी है। वही जीवन मूल्य वही मानववाद, वही आदर्श और वैसी ही गरीबी। फिर भी जीवन के प्रति एक अटूट आस्था। इस कहानी की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

> *नानी इस सब के बारे में क्यों नहीं जानती। पूर्व जन्म के कर्मों पर तो उसका इतना विश्वास है कि हर दुख-सुख को वह कर्मफल के साथ जोड़ लेती है। किसी बड़े आदमी को गुस्सा आ जाए तो भले कर्मों की वजह से और यदि किसी छोटे आदमी को गुस्सा आ जाए तो बुरे कर्मों का फल। यही दर्शन है नानी का।*

''इधर अम्मा की नौकरी भी छूट गई। तो क्या यह भी कर्मों का ही फल है? हमारे लिए नौकरी का अर्थ दो वक्त के दाल-भात और एक फांक प्याज से ज्यादा कभी रहा भी नहीं।

''विचारों का प्रवाह थमा, चावल की मीठी सी खुशबू मेरे नाक में घुसी, लगा, क्या कभी वह दिन भी आएगा जब मच्छी की खुशबूदार तरकारी के साथ भात खाने को मिलेगा। अम्मा को नौकरी मिली थी तो लगा था कि शायद दिन फिर गए हैं लेकिन आज वह नौकरी भी छूट गई है तो क्या वह सिर्फ मृगमरीचिका ही थी?''

सिंहली कवियों में प्रमुख हैः श्री गुणसिंघे, विमल दिस्सानायके, परक्रमा कोडितुवकू। इनमें भी सिंहली स्वाभिमान, समाज की कथा को अभिव्यक्ति मिली है।

तमिल के महाकवि आर. मुरुगैय्यन और सिल्लैय्यूर सेल्वराजन ने काव्य साहित्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को आगे बढ़ाया। श्रीलंका की तमिल कविता भी महाकवि सुब्रहमण्यम भारती के राष्ट्रवाद से काफी प्रभावित रही। शायद इसीलिए उसे श्रीलंका में वह प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई जो सिंहली साहित्यकारों को मिली। नए तमिल साहित्यकारों में एम.ए.नूहमन, एस, मौनागुरु, वी. कान्तावनम् और पुथवाई रत्नदुरै प्रमुख हैं। तमिल कथाकारों में खास हैं—पी. थंबीराज, के साद्दानाथन और नंदी।

दक्षेस समूह में दो और छोटे देश हैं—भूटान और मालदीव। भूटान में डेंग्खा और नेपाली भाषाएं बोली जाती हैं जबकि मालदीव में विदेही। दोनों ही भाषाओं में प्रचुर लोक साहित्य उपलब्ध है लेकिन लिखित साहित्य की खास परंपरा अभी विकसित नहीं हो पाई। फिर भी ये देश समाज और संस्कृति के स्तर पर भारत के अत्यंत करीब हैं।

इस प्रकार भारतीय उप महाद्वीप की साहित्य परंपरा विविधताओं के बावजूद पूर्णतः एक है। समाज के स्तर पर जो विविधताएं हमें दिखती हैं वे आत्मा के स्तर पर आपस में कितनी गुंथी हुई है इसका अहसास हमें दक्षेस देशों के साहित्य को पढ़कर होता है। आज जरूरत इस बात की है कि इन भाषाओं को करीब लाया जाए और भाषांतर की प्रक्रिया को तेज किया जाए। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थाई जनमानस और भारतीय संस्कृति

डॉ. रामप्रकाश सक्सेना

भौगोलिक दृष्टि से थाई देश भले ही हमारा निकटतम पड़ोसी न हो किंतु सांस्कृतिक दृष्टि से वह निकटतम ही नहीं आत्मीय भी है। थाई देश में या थाई वायुयान में घुसते ही जब कोई हाथ जोड़कर सदाबहार मुस्कराहट के साथ आपका स्वागत करे, तो आपको लगेगा कि यह हमारा ही वृहत भारत है। जैसे-जैसे आप थाई वासियों के साथ थोड़े दिन रहेंगे तथा उनके रीति-रिवाज, तीज-त्योहारों से अवगत होंगे, वैसे-वैसे आपको यह विश्वास हो जाएगा कि थाई जनमानस में भारतीय संस्कृति व्याप्त हो गई है।

भौगोलिक स्थिति : 'थाई देश' का प्राचीन नाम 'स्याम' है। 1939 से वे अपने देश को 'प्रदेश दैय' लिखते हैं, पर उच्चारण 'प्रथेय थाई' करते हैं। इसके उत्तर व पश्चिम में म्यानमार (बर्मा) है, दक्षिण में मलेशिया, उत्तर पूर्व में लाओस तथा दक्षिण पूर्व में कंपूचिया है। भारत और थाई देश के बीच म्यानमार देश है, अर्थात यह हमारे निकटतम पड़ोसी का पड़ोसी है।

थाई देश का क्षेत्रफल 513,115 वर्ग किलोमीटर है। इसका उत्तर भाग पर्वतीय है। यह पर्वत हिमालय का दक्षिण पूर्वीय भाग है और हिमालय की भांति सुंदर भी है। दक्षिण पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व में समुद्र तट है। सुंदरता में ये केरल व गोवा की याद दिलाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस देश में भारत की भांति तीन मौसम हैं—शीत, ग्रीष्म और वर्षा। प्रथम ऋतु का समय नवंबर से फरवरी तक, द्वितीय का मार्च से मई तक तथा तृतीय का जून से अक्तूबर तक है।

जनसंख्या : 1991 की जनगणना के अनुसार वहां की जनसंख्या 5 करोड़ 70 लाख है। 95 प्रतिशत लोग बौद्ध, 3.9 प्रतिशत मुसलमान, शेष में ईसाई, हिंदू आदि हैं। प्रवासी भारतीय काफी कम हैं। जो हैं भी वे केवल राजधानी बैंकाक में व्यापार करते हैं। संप्रति कुछ भारतीय मजदूर भी मजदूरी की तलाश में वहां जाने लगे हैं।

थाई जनजीवन में भारतीय संस्कृति के दर्शन

थाई जीवन के हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। इस लघु लेख में कुछ शीर्षकों के अंतर्गत इस बात को दर्शाने का प्रयत्न किया गया है।

धर्म : थाई देश के 95 प्रतिशत लोग बौद्ध धर्म की थेरवादी शाखा को मानते हैं। थाई राष्ट्र (जिसको वे 'राठ' कहते हैं, जो राष्ट्र का पालि रूप है) और बौद्ध धर्म का अटूट संबंध है। थाई राष्ट्र वर्तमान रूप में 700 वर्ष पूर्व विकसित हुआ और इसी समय से उसने बौद्ध धर्म को अपनाया।

थाई संविधान में राजा को राष्ट्र का प्रतीक माना गया है। उसका बौद्ध होना अनिवार्य है। संविधान के अनुसार 'संघ' अपना शासन स्वयं करेगा। राज्य संघ की केवल मदद करेगा, हस्तक्षेप नहीं।

थाई देश में हर नगर तथा गाँव में बौद्ध मंदिर, मठ या स्तूप मिल जाएंगे। भारतवासियों की भांति वे इनको श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और मंदिर, मठ या स्तूप की तरफ से निकलते समय हाथ जोड़कर प्रणाम करना नहीं भूलते। लगभग हर घर में बुद्ध की छोटी या बड़ी प्रतिमा मिल जाएगी। यात्रा करते समय थाई वासी बुद्ध की छोटी-मोटी मूर्तियां गले में पहनते हैं।

जीवन में एक बार हर थाई वासी भिक्षु बनता है, चाहे वह एक दिन या एक घंटे के लिए ही क्यों न हो।

अशोक के समय में ही बौद्ध धर्म की दो शाखाएं विकसित हो गईं थीं—थेरवाद व महासंधिका। अशोक स्वयं प्रथम को मानता था। यही थेरवाद श्रीलंका तथा थाई देश में गया। यह बौद्ध धर्म की दक्षिणी शाखा है। उत्तर शाखा वाले अपने धर्म को महायान और थेरवादियों को हीनयान शाखा का मानते हैं।

हिंदू या ब्राह्मण धर्म के अवशेष : बौद्ध होते हुए भी थाई जन जीवन में हिंदू धर्म के अवशेष बखूबी देखे जा सकते हैं। इसका कारण ऐतिहासिक है। पांचवीं से तेरहवीं शताब्दी तक मध्य थाई देश पर मोन और खमेरों का आधिपत्य रहा। मोन ने अपनी सभ्यता और संस्कृति को भारत से ग्रहण किया और ये बौद्ध थे। पर खमेर हिंदू थे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यद्यपि बाद में उन्होंने भी बौद्ध धर्म की महायान शाखा को स्वीकार कर लिया। हिंदू धर्म के अवशेष संप्रति उनके जन जीवन के इतने अभिन्न अंग बन गए हैं कि एक साधारण थाई यह भी नहीं जानता कि ये अवशेष बौद्ध-इतर हैं। भारतीयों की भांति थाई जीवन में स्थानीय देवताओं का स्थान है। इसी प्रकार बैंकाक में एरवान होटल के सामने ब्रह्मा (जिसे वे 'दाव महा ब्रह्म' लिखते हैं और उसका उच्चारण—थाव महा फ्राम करते हैं) की मूर्ति को थाई वासी प्रणाम करना नहीं भूलते। थाई भाषा में बैंकाक का नाम 'क्रुङदेव' है, जिसका अर्थ होता है—देवताओं का नगर। इसी प्रकार इस राजधानी का दूसरा नाम 'रत्न कोस इंद्र' (इंद्र का रत्न भंडार) भी है। वहां एक राजा हुए हैं, उनका नाम इंद्रजीत था।

थाई जनजीवन में 'राम' का विशेष महत्व है। वे अपने राजा के नाम में 'राम' लगाते हैं। संप्रति थाई देश के नरेश का नाम 'भूमिबल अतुल्य तेज राम नवम' है। बैंकाक से पूर्व थाई देश की राजधानी 'अयोध्या' थी। यह नगर इस समय बैंकाक से 80 किलोमीटर उत्तर में है। थाई देश में बच्चों को राम कथा पढ़ाई जाती है, जिसे वहां 'रामकैयरत' (राम कीर्ति का अपभ्रंश रूप) कहा जाता है। 'रामकैयरत' के लेखक नाग प्रदीप हैं।

थाई लोक कथाओं में या मंदिरों के भिन्न चित्रों तथा मंदिर के प्रांगण में कई भारतीय पौराणिक पात्र देखे जा सकते हैं, यथा एरावण (एरावत-इंद्र का हाथी), किन्नर-किन्नरी (पौराणिक अर्ध पुरुष/स्त्री व अर्ध पक्षी) गरुड़ नाग। यक्ष तो थाइलैंड के मंदिरों के द्वारपाल ही हैं।

संस्कार : भारत के कुछ हिंदू संस्कारों के अवशेष अभी भी थाई ग्रामीण समाज में देखे जा सकते हैं। बच्चा पैदा होने पर सूप में रखा जाता है। जिनके बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं, वे अपने बच्चों का किसी अन्य के हाथों बेच देते हैं। बाद में उससे ले लेते हैं। बच्चे का मुंडन तथा चोटी रखने का प्रावधान है। मृत्यु पर पार्थिव शरीर को जला दिया जाता है। जलाने के पीछे वही भारतीय दर्शन है कि शरीर चार तत्वों—पृथ्वी (मास, हड्डी), पानी (खून, पसीना, लार), अग्नि (शरीर की ऊर्जा) तथा वायु (सांस) से मिलकर बना है। जलकर ये तत्व अपने मूल तत्व में विलीन हो जाते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि हिंदुओं में पांचवे तत्व आकाश को भी मानने की परंपरा है।

मृतक के दाह संस्कार के समय पानी से भरे तीन घड़ों को घर का मुखिया एक बार में तोड़ता है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है तो ऐसी मान्यता है कि उस घर में कोई दूसरी मौत भी होगी।

दाह संस्कार के दूसरे दिन अस्थियों व राख को बटोर कर या तो समुद्र में या नदी में विलीन कर लिया जाता है या मंदिर में गाढ़ दिया जाता है।

जिस प्रकार भारत में हिंदू श्राद्ध पक्ष (आश्विन कृष्ण पक्ष में) में अपने पूर्वजों (प्रेतों) की तृप्ति के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं। उसी प्रकार थाई वासी अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देशीय कलेंडर के दसवें महीने के कृष्ण पक्ष में (जो भारतीय कलेंडर का आश्विन कृष्ण पक्ष ही है) भिक्षुओं को भोजन कराते हैं। थाई भाषा में इसे 'स्राद' कहते हैं, जो 'श्राद्ध' का ही विकसित रूप है। दक्षिण थाई देश दक्षिणी भाग में 'स्राद' को 'जिङप्रेत' कहते हैं। वहां के निवासियों की मान्यता है कि लोग पाप करते हैं तथा जिन्हें मरने के बाद निर्वाण प्राप्त नहीं होता, वे 'प्रेत' हो जाते हैं और 'नरक' भोगते हैं। 'स्राद' (श्राद्ध पक्ष) में प्रेतों को अपने रिश्तेदारों द्वारा भोजन प्राप्त करने के लिए पृथ्वी पर आने की अनुमति मिल जाती है। लोग अपने मृतक पूर्वजों की याद में भोजन कराते हैं। यह भी मान्यता है कि प्रेतों को इस प्रकार प्रसन्न करने से अपनी भी समृद्धि होती है।

त्यौहार तथा अनुष्ठान

भारतीयों की भांति थाईवासी भी उत्सव प्रेमी हैं। अतः वहाँ वर्ष भर कोई न कोई त्यौहार या अनुष्ठान चलता रहता है। इस लेख में उन त्यौहारों का जिक्र किया जा रहा है, जिन पर भारतीयता की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। थाई वासी स्वयं इस बात से वाकिफ हैं कि उनके कुछ त्यौहारों की जड़ें बौद्ध-इतर हिंदू (वे ब्राह्मण शब्द का प्रयोग करते हैं) धर्म में खोजी जा सकती हैं।

संक्रात : थाई वासी 13 अप्रैल को संक्रात कहते हैं, क्योंकि उस दिन सूर्य मेष राशि (प्रथम राशि) में प्रवेश करता है। यह पारंपरिक थाई नववर्ष का त्यौहार है। उत्तर भारत में इस दिन 'बैसाखी' का त्यौहार मनाया जाता है। थाई देश में इस त्यौहार को मनाने के लिए 13 से 15 अप्रैल तक सार्वजनिक अवकाश रहता है। यह किसानों का भी प्रमुख त्यौहार है। किसान इस समय खाली रहता है, क्योंकि इस समय तक फसल कट जाती है और नई फसल बोने के लिए समय बाकी होता है।

थाई देश में इन दिनों गर्मी प्रारंभ हो जाती है। इस त्यौहार में चार चांद लगाने के लिए वहाँ होली जैसा वातावरण रहता है और लोग एक-दूसरे के ऊपर पानी फेंकते हैं।

विसाख पूजा : वैसाख की पूर्णिमा को भगवान गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। उसी दिन उनको ज्ञान प्राप्त हुआ और निर्वाण भी। इस दिन सार्वजनिक छुट्टी रहती है और लोग रात को प्रसन्नता प्रकट करने के लिए मोमबत्ती जलाते हैं। रात को दीपावली जैसा माहौल दिखाई देता है।

लय क्रादङ : यह त्यौहार भारत की दीपावली की भांति है। पर दीपावली कार्तिक की अमावस्या को तथा लय क्रादङ कार्तिक की पूर्णिमा को मनाया जाता है। थाई वासियों का यह बारहवाँ महीना (चंद्र से गणना) होता है। लोग केलों के पत्तों की टोकनी या कागज की छतरी बनाकर उस में दीपक या मोमबत्ती जलाकर नदी या झील में छोड़ देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

<u>माघ पूजा</u> : यह त्यौहार माघ महीने की पूर्णिमा को मनाया जाता है। यह बौद्ध भिक्षुक दिवस कहलाता है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन सारे संसार से 250 अरहंता भगवान बुद्ध को अपनी श्रद्धा व्यक्त करने आए थे और उस दिन बुद्ध ने प्रवचन दिया था, जिसको 'ओवाद पाटिमोक्ख' कहा जाता है।

<u>हल चलाने का शाही अनुष्ठान</u> : प्राचीन भारत में यह परंपरा थी कि अच्छी फसल होने की कामना के लिए राजा स्वयं ब्राह्मणों के मंत्रोच्चारण के साथ हल चलाता था। जग प्रसिद्ध है कि राजा जनक को हल चलाते समय ही सीता मिली थीं। थाई देश में यह परंपरा आज तक चली आ रही है। यह अनुष्ठान मई के किसी दिन होता है। तारीख तय करने का काम ब्राह्मण करता है। यह शाही अनुष्ठान बड़ी धूम धाम से राजधानी बैंकाक के मध्य में स्थित सनाम ल्हवङ मैदान में किया जाता है। ब्राह्मण सफेद कपड़े पहने शंख बजाते हुए राजा की अगुवाई करते हैं। राजा के रक्षक लाल यूनिफार्म पहने होते हैं तथा हल-बैल की देखरेख उन्हीं के जिम्मे होती है। हल चांदी का होता है तथा उसमें दो सफेद बैल जुते रहते हैं। कुछ सुंदर युवतियां (जो अप्सराओं की प्रतीक मानी जाती हैं) कंधे पर कांवर लेकर चलती हैं। कांवर की एक टोकनी सोने की ओर दूसरी चांदी की होती है। इन टोकनियों में धान (चावल) रखा जाता है। राजा स्वयं या उसका प्रतिनिधि धान के बीज डालता चलता है। इस शाही अनुष्ठान को देखने लाखों लोग इकट्ठे होते हैं।

यहाँ दो बातें द्रष्टव्य हैं। प्रथम, थाई देश में हल में बैल नहीं भैंस जोतने की परंपरा है। पर इस अनुष्ठान में सफेद बैलों द्वारा ही हल चलवाया जाता है। दूसरे, थाई लोग बौद्ध हैं। फिर भी बैंकाक में कुछ ऐसे लोग हैं, जिन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। ये भाषा, वेशभूषा, खान पान सभी में अन्य बौद्धों की भांति हैं, पर केवल इस दिन इनको विशेष महत्व दिया जाता है। अन्यथा हर धार्मिक कार्यक्रम में भिक्षुओं को ही बुलाया जाता है। इन ब्राह्मणों का बैंकाक में एक मंदिर भी है, जिनमें शंकर, ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियां स्थापित हैं।

<u>चातुर्मास्य तथा दीक्षा</u> : भारतवर्ष में बौद्ध भिक्षु तथा जैन मुनि वर्षा ऋतु के 4 महीने यात्रा नहीं करते तथा एक ही स्थान पर रहते हैं। थाई देश में जुलाई से सितंबर तक के वर्षाकाल में (थाई कलेंडर के आठवें से दसवें चंद्रमास तक) केवल तीन महीने भिक्षु यात्रा नहीं करते। इन दिनों मठों में ही प्रवचन तथा विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम होते रहते हैं।

थाई देश में जीवन में एक बार हर व्यक्ति को भिक्षु बनना पड़ता है। प्रायः इन्हीं दिनों दीक्षा के कार्यक्रम बौद्ध मठों के हॉलों में आयोजित किए जाते हैं। इन दिनों बौद्ध मठों में काफी चहल-पहल रहती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाषा

थाई चीनी की भांति एकाक्षरी अयोगात्मक परिवार की भाषा है, जिसमें स्वरों व व्यंजनों के अतिरिक्त पांच सुर भी हैं, जिनके बदलने से समान व्यंजन-स्वर वाले शब्दों का भिन्न अर्थ हो जाता है। इस भाषा ने मोन तथा खमेर भाषाओं से सैकड़ों शब्द ग्रहण किए। बाद में जैसे-जैसे थाई वासियों पर हिंदू तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे उनकी भाषा में संस्कृत तथा पालि के हजारों अनेकाक्षरी शब्द भी आने लगे।

यहां यह दृष्टव्य है कि इन शब्दों का लिखित रूप तो बिल्कुल भारतीय है, पर उच्चारण इतना भिन्न है कि केवल सुनकर आप उनके स्रोत को नहीं पहचान सकते, जैसे 'नगर' और 'पुरी' के उच्चारण हैं—नाखोन, बुरी।

इस लेख में लिखित रूप दिए गए हैं। कहीं कहीं कोष्ठक में उच्चारण दे दिया गया है।

थाई में वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली के निर्माण में संस्कृत से सहायता ली जाती है। थाई व्याकरण ने तो शब्दावली भारत से ही प्राप्त की है। उदाहरणार्थ—नाम (संज्ञा), सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, पूर्वपद, संधान (समुच्चय बोधक), एक बचन, बहु बचन, बचनानुक्रम (शब्दकोश), आदि।

इनके अतिरिक्त व्यक्तियों, प्रांतों, जिलों, नगरों आदि के नामों पर भारतीय नामों का बहुत अधिक प्रभाव है।

व्यक्तियों के नाम : अधिकतर थाईवासी नामकरण में एक ऐसा नाम भी रखते हैं जिसका स्रोत भारतीय है। उदाहरणार्थ पुरुषों के कुछ नाम देखिए—अभिजात, नवगुण, आदित्य, सोभण, सूर्य, अमिताभ, सुद्धिवंश, विरति, अरूण। इसी प्रकार कुछ स्त्री नामों पर दृष्टि डालिए—रत्ना, मधुरस, सुकञ्ञा (सुकन्या का पालि रूप), सोभा, सुमाली।

स्थान या क्षेत्र के नाम : जैसा पूर्व में कहा गया है कि थाई देश की प्राचीन राजधानी का नाम अयोध्या ही था। इसके अतिरिक्त 'पुरी' लगाकर कई नाम थाई देश में प्रचलित हैं, जैसे बेत्रपुरी, राजपुरी, लबपुरी, कंचनपुरी, चंदपुरी, जनपुरी, मंदपुरी, प्राचीनपुरी, सिरीपुरी, धनपुरी। एक 'पुरीराम' भी है। 'नगर' लगाकर भी थाई में कई नाम प्रचलित हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध नाम 'नगर पठम' ('प्रथम' का पालि रूप) का है। इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि थाई देश में सबसे प्रथम स्तूप की स्थापना इसी नगर में हुई। अन्य नाम 'नगर नायक' हैं। कुछ नाम 'धानी' लगाकर भी बने हैं, जैसी सुराज धानी, पदुमधानी, उत्रधानी (उत्तर का थाई रूप)।

इनके अतिरिक्त अन्य नामों का भी भारतीय स्रोत देखा जा सकता है, यथा—विचित्र, विष्णु लोक, बैर, मुक्ताहार, यसोधर, जीय भूमि, गोराज।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वृक्षों के नाम : कुछ वृक्षों के नाम भी भारतीय हैं, तथा—तन बोधि (वृक्ष पीपल), तन चंपा, तन असोक (अशोक) आदि।

थाई लिपि तथा वर्णमाला

सुखोथाई (प्राचीन थाई देश की राजधानी) के महाराजा राम खम हैङ ने सर्वप्रथम 1283 ई. में थाई वर्णमाला का निर्माण किया। यह लिपि मोन-खमेर लिपियों पर अधारित थी, जब कि मोन-खमेर लिपियां ब्राह्मी लिपि की दक्षिण भारतीय शाखा से विकसित हुई थीं। राजा राम खम हैङ ने नव विकसित थाई लिपि में भारतीय तथा मोन मॉडेलों से कुछ भिन्नता ला दी।

आधुनिक थाई वर्ण माला पर यहां संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है। थाई भाषा में वर्णमाला को 'अक्षर' कहते हैं। इसकी विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

1. थाई वर्णमाला में 44 व्यंजन वर्ण हैं। इनमें दो वर्ण संप्रति अप्रचलित हैं।
2. देवनागरी के व्यंजन वर्णों में 'अ' स्वर निहित रहता है, अर्थात क = क् + अ। पर थाई लिपि में व्यंजन वर्ण केवल 'व्यंजन' ध्वनि का ही द्योतक होता है। इस प्रकार थाई लिपि देवनागरी की भांति अक्षरात्मक (सिलेबिक) न होकर वर्णात्मक (अल्फा-बेटिक) है। इसी कारण थाई में 'अ' स्वर की मात्रा व्यंजन वर्ण के ऊपर लगाई जाती है।
3. लेखन में दो व्यंजनों को मिलाकर लिखने की परंपरा नहीं है। रोमन लिपि की भांति वर्णों को अलग-अलग ही लिखा जाता है।
4. थाई वर्णमाला में व्यंजनों का क्रम देवनागरी की ही भांति है, पर इस लिपि में कुछ अतिरिक्त वर्ण भी हैं, जो देवनागरी में नहीं हैं। यद्यपि थाई लिपि अलग है, पर पाठकों की सुविधा के लिए थाई वर्णमाला को देवनागरी में प्रस्तुत कर यहां लिखा जा रहा है। अतिरिक्त वर्णों के नीचे नुक्ता लगा दिया गया है।

क्	ख्	ख़्	(अप्रचलित)	ग्	ग़्	(अप्रचलित)	घ्	ङ्	
च्	छ्	ज्	ज़्	झ्	ञ				
ट़्	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्				
त़	त्	थ्	द्	ध्	न्				
प़	प्	फ्	फ़्	ब्	ब़्	भ्	म्		
य्	र्	ल्	व्	श्	ष्	स्	ह्	औ	ह्

नोट : 1. 'ळ' और 'ह्' वर्णों का प्रयोग नहीं के बराबर है।
2. 'औ' वर्ण स्वर के अंतर्गत भी आता है। यदि यह व्यंजन के रूप में प्रयुक्त होता है, तो इसका उच्चारण 'काकल्य स्पर्श' होता है।
3. कोई उपयुक्त वर्ण न मिलने के कारण मैंने 'औ' वर्ण का प्रयोग किया है। पाठक इससे भ्रमित न हों।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

5. वर्णमाला में 'स्वर वर्णों' को स्थान प्राप्त नहीं है, क्योंकि वे प्रायः व्यंजनों के साथ मात्रा के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार थाई लिपि में स्वरों तथा द्विस्वरों को व्यक्त करने के लिए 32 चिह्नों या मात्राओं का प्रयोग किया जाता है। इनमें कुछ मात्राएं व्यंजन वर्ण के ऊपर (जैसे अ, ह, ई, आदि की मात्राएं), कुछ मात्राएं व्यंजन वर्ण के नीचे (यथा उ ऊ की मात्राएं), कुछ वर्ण के आगे (यथा—'आ' की मात्रा) कुछ वर्ण के पीछे (यथा 'ए, ओ' आदि की मात्राएं) कुछ वर्ण के आगे तथा पीछे (यथा ह्रस्व ए, ओ, आदि की मात्राएं), लगा दी जाती हैं। यदि अलग से 'स्वर' वर्ण का ही प्रयोग करना हो, तो 'औ' वर्ण में ही उस मात्रा को लगा दिया जाता है। अर्थात इस वर्ण के ऊपर 'ई' की मात्रा लगा दी जाए तो इसका उच्चारण 'ई' होगा।

   'ऋ' के लिए अलग वर्ण है, जो व्यंजन के बाद लिखा जाता है, देवनागरी की भांति मात्रा के रूप में नहीं। किंतु आजकल 'ऋ' के स्थान पर 'रि' या 'ई' की मात्रा लिखने की परंपरा है।
6. थाई भाषा सुरात्मक है। उसमें 5 सुर हैं। चार सुरों को व्यक्त करने के लिए थाई लिपि कुछ चिह्नों का प्रयोग करती है। इन चिह्नों के नाम भारतीय हैं। एक, दो, त्री, चत्वा।

ज्योतिष शब्दावली

समय गणना में भारत सदैव ही विश्व में अग्रणी रहा है। थाई देश में ज्योतिष का ज्ञान भारतीय धर्म तथा संस्कृति के साथ-साथ पहुंचा। भारत की भांति थाई देश में तीज-त्यौहार चंद्रमा पर् आधारित गणना से निर्धारित होते हैं। थाई देश में चंद्र पर आधारित महीना महाराष्ट्र की भांति शुक्ल पक्ष प्रथमा से प्रारंभ होता है और अमावस्या को समाप्त । उत्तर भारत में महीना कृष्ण पक्ष प्रथमा से आरंभ होकर पूर्णिमा को समाप्त होता है। दोनों देशों में चंद्र वर्ष और सूर्य वर्ष में एकरूपता लाने के लिए हर तीन वर्ष बाद एक अधिक मास होता है। भारत में महीनों के नाम चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अग्रहायण, पौष, माघ, फाल्गुन हैं। थाई देश में चंद्र वर्ष अग्रहायण से प्रारंभ होता है तथा महीनों को पहला, दूसरा, तीसरा, आदि नामों से जाना जाता है।

संवत : भारत में कई संवत प्रचलित हैं। पर अखिल भारतीय स्तर पर दो का अधिक महत्व है (1) ईसवी (2) शक संवत। प्रथम संवत एक जनवरी से प्रारंभ होता है और दूसरा 2। मार्च से। थाई में संवत को 'शक राज' कहा जाता है। वहाँ भी कई संवत प्रचलित हैं, पर राष्ट्रीय स्तर पर दो का महत्व अधिक है—(1) बुध शकराज (संक्षिप्त रूप ब. श.) तथा (2) ग्रिस्त शकराज (संक्षिप्त रूप ग. श.) ग्रिस्त का अर्थ ईसा होता है। 1993 में बुद्ध संवत 2536 है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थाई वासियों ने अपने राष्ट्रीय कलेंडर में भारतीय तथा ग्रियोरियन कलेंडरों का सुंदर सम्मिश्रण किया है। दोनों संवत। जनवरी से प्रारंभ होते हैं, पर थाई महीनों के नाम राशियों पर आधारित हैं

ग्रिगोरियन	*थाई*	*ग्रिगोरियन*	*थाई*
जनवरी	मकरा गोम	फरवरी	कुंभबंध
मार्च	मीना गोम	अप्रैल	मेषा योन
मई	वृषभा गोम	जून	मिथुना योन
जुलाई	कर्कडा गोम	अगस्त	सिंह गोम
सितंबर	कन्या योन	अक्तूबर	तुला गोम
नवंबर	वृश्चिका योन	दिसंबर	धनवा गोम

नोट : जो महीने 31 दिनों के हैं उनके नाम के आगे 'गोम' (जिसका अर्थ 'पैना' होता है) लगा दिया जाता है। जो महीने 30 दिनों के होते हैं, उनके आगे योन (जिसका अर्थ 'छोटा' होता है) प्रयुक्त किया जाता है। 28 दिनों के महीने 'कुंभ' के आगे 'बंध' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

दिन, तारीख, समय : थाई में 'वार' को 'वन', तारीख को 'वंदी' तथा समय को 'वेल' कहते हैं। दिनों के नाम थाई में इस प्रकार हैं—वन चंद्र (सोमवार), वन अंगार (मंगलवार), वन बुध, वन बृहस्पति, वन शुक्र, वन सौर (शनिवार) तथा वन आदित्य (रविवार)।

नक्षत्र : थाई में नक्षत्रों के नाम इस प्रकार हैं—अश्विनि, भरणी, कतिका (कृत्तिका), रोहिणी, मिगाशिरा (मृगशिरा), आर्द्रा, पुनबसु (पुनर्वसु) पुण्य, आश्लेषा, मघा, पुर्ब फल्गुणी (पूर्वाफाल्गुणी), उत्रा फल्गुणी (उत्तरा फाल्गुणी), हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, जेष्ठा (ज्येष्ठा), मूला (मूल), पुर्बाषाद (पुर्वाषाढ़ा), उत्राषाद (उत्तराषाढ़ा), श्रावण, धनिष्ठा, शतभिष्णा (शतभिष), पुर्ब भद्रपद (पूर्वाभाद्रपद), उत्तरा भाद्रपद) रेवती।

फलित ज्योतिष : थाई देश ने फलित ज्योतिष भी भारत से ग्रहण किया है। वहां नक्षत्रों के वे ही नाम हैं, जो भारत में प्रचलित हैं। उनका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। वहां भी जन्म पत्रिका बनाई जाती है। उनकी जन्म पत्रिकाएं दक्षिण भारतीयों की भांति गोल होती हैं। थाई जन्म पत्रिकाओं में रवि, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहू, केतु ग्रहों के लिए क्रमशः 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 व 9 नंबरों का प्रयोग किया जाता है। राशियों के नाम भी भारतीय हैं। इनका जिक्र महीनों के नामों के संदर्भ में किया जा चुका है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य तथा लोक कलाएं

बौद्ध सिद्धांतों तथा जातक कथाओं ने न केवल थाई साहित्य को वरन् लोक कथाओं को पूर्णतया प्रभावित किया है। मंदिरों तथा मठों में जातक कथाओं तथा रामायण पर आधारित सुंदर भित्ति-चित्र व तैल-चित्र दिखाई देते हैं। थाई वासियों ने हमारे प्राचीन साहित्य की भी रक्षा की है। वर्षों पहले तिपिटक (त्रिपिटक) भारत से लुप्त हो गया था। पर थाई देश में उपलब्ध था।

थाई देश की नृत्य-नाटिकाओं में राम-रावण प्रसंग तथा सुर-असुर युद्ध को दर्शाया जाता है। खोन (मुखौटा) नृत्य थाई शास्त्रीय नृत्य का एक भाग है। इसमें राम-रावण युद्ध दिखाया जाता है। इसमें हनुमान नृत्य विशेष प्रसिद्ध है। भारत की भांति थाई देश में मारे-नृत्य काफी लोकप्रिय है। 'महाजनक' में भगवान बुद्ध के पिछले जन्मों से संबंधित कहानियों को प्रदर्शित किया जाता है। इसकी कथा इस प्रकार है। एक बार राजा जनक और उनकी प्रिय पत्नी लंबी समुद्री यात्रा पर निकले। रास्ते में तूफान आ गया। जब जहाज डूबने लगा तब उनको बड़ी कठिनाई से अपनी मंजिल तक सुरक्षित पहुंचाया गया। इसीलिए यह नृत्य जल देवी को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है।

अन्य समानताएं

यदि आप थाई देश जाएं तो हर भारतीय को ऐसी बहुत सी चीजें मिलेंगी जिन में भारतीयता झलकती है। उन्होंने योग का प्रचलन भारत से ही सीखा। भारत की भांति वहां कई भिक्षु समाधि लेकर अपने प्राण त्यागते हैं। वहां मालिश (मसाज) का बहुत अधिक प्रचलन है। भारत के प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तक चरक संहिता में मालिश की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। थाईवासियों की मान्यता है कि उन्होंने यह विज्ञान और कला भारत से ही सीखी। भारत की भांति वहां भी अतिथि को देवता का रूप माना जाता है। थाई घर में प्रवेश करते समय जूते बाहर उतारते हैं। महाराष्ट्र में यह परंपरा अब भी है। भारत की भांति थाई सामान्य जन धार्मिक हैं पर लोगों में धार्मिक कट्टरता नहीं है। भारत की तरह वहां हर नागरिक को अन्य धर्म मानने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

संस्कृति की समानता के कारण थाई देश में हिंदी फिल्मों को बहुत पसंद किया जाता है। थाई टेलिविजन पर सप्ताह में दो बार हिंदी फिल्में दिखाई जाती हैं। इन फिल्मों को थाई भाषा में 'डब' करके ही प्रदर्शित किया जाता है।

सभी पड़ोसी देशों में भारतीय संस्कृति का बोलबाला है। महत्वपूर्ण बात यह है कि थाई वासी स्वयं ही संस्कृति के मामले में भारत को अपना गुरु मानते हैं तथा वे आज भी सांस्कृतिक खुराक भारत से प्राप्त करने की आशा करते हैं। उनको शिकायत है कि इस मामले में भारत अपना कर्तव्य नहीं निभा रहा है। इसी कारण वहां चीन का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सांस्कृतिक वर्चस्व बढ़ रहा है। चीन का सांस्कृतिक अतिक्रमण रोकने के लिए भारत को पहल करनी चाहिए। थाई देश के केवल एक ही विश्वविद्यालय में हिंदी पढ़ाई जाती है। वहां पालि और संस्कृत पढ़ाई तो जाती हैं पर उच्चारण ठीक नहीं पढ़ाया जाता। भारतीय सरकार वहां कई विश्वविद्यालयों में हिंदी व अन्य भारतीय भाषाएं पढ़ाने की व्यवस्था कर सकती है। दूसरे, संस्कृत तथा पालि के 'उच्चारण रीडर' तथा उनके मानक उच्चारण के कैसेट तैयार कर वहां भेजे जा सकते हैं। थाई से हिंदी तथा हिंदी से थाई में प्रत्यक्ष अनुवाद होना चाहिए। इस प्रकार साहित्यिक तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान से दोनों देश लोभान्वित होंगे। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

''ज्ञान समस्त प्रकार की सीमाओं और बंधनों से परे है। इसका विकास चाहे संसार के किसी भी क्षेत्र में हुआ हो किंतु यह समस्त मानव जाति की थाती होती है। समस्त मानवों को इस पर समान अधिकार प्राप्त होता है चाहे वह जिस भी देश और राष्ट्र से संबंध रखते हों।''

—मौलाना अबुल कलाम आजाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्व हिंदी लोकगीतों में जीवन-मूल्य

डॉ. कामता कमलेश

लोक साहित्य किसी जाति, भाषा और समाज की अस्मिता की आंतरिक पृष्ठ-भूमि होता है फलतः उसी के आधार पर संस्कृति और साहित्य रूपी गंगा-यमुना के दर्शन होते हैं। मानव के जीवन में लोक-साहित्य का अति महत्वपूर्ण स्थान है। इस संसार में कोई भी देश और जाति नहीं है जिसमें लोक-साहित्य का प्रचलन न हो। प्रत्येक जाति में लोक-साहित्य प्रचुर मात्रा में वर्तमान रहता है, चाहे वह जाति सभ्य हो या असभ्य। लोक-मानस में जो कलात्मक प्रवृत्तियां विद्यमान रहती हैं, वही लोक-साहित्य है। अशिक्षित जातियों में भी किसी न किसी प्रकार के लोक-साहित्य का अस्तित्व रहता है। अधिकतर लोक-साहित्य लिपिबद्ध नहीं होता। वह जन-मानस में पीढ़ी दर पीढ़ी कंठों में जीवित रहता है। कंठ-परंपरा द्वारा ही इसका प्रचलन और विकास होता रहता है।

उन्नीसवीं शताब्दी हिंदी साहित्य के इतिहास में एक प्रमुख स्थान रखती है क्योंकि इसी समय सर्वप्रथम हिंदी का लोक-साहित्य भारत की सीमा पार कर बाहर गया है और उसकी विदेश-यात्रा का श्रीगणेश हुआ। किसी भी भाषा या साहित्य की कोई भौगोलिक सीमा नहीं बनाई जा सकती।

वस्तुतः हिंदी का लोक-साहित्य भारतीय हिंदी प्रदेश जैसे—उत्तर प्रदेश, बिहार,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान की देन है। इन प्रदेशों में अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, राजस्थानी बोलियां अस्तित्व में हैं। भारत से बाहर इन्हीं प्रदेशों के अधिकांश श्रम-वीर नायक अपनी बलिष्ठ भुजाओं में असीम ऊर्जा और मन में दृढ़ आस्था लेकर कलकत्ता से समुद्री जलयान से हजारों मील की दारुण यात्रा कर विश्व के अनेक देशों में पहुंचे थे। जैसे—मारीशस, फीजी, गुयाना, ट्रिनीडाड, दक्षिणी अफ्रीका, जमैका, सूरीनाम आदि।

मैंने अपनी फीजी यात्रा में वहां एक लोक-गीत विदेसिया तर्ज पर सुना जिसमें तत्कालीन जन-जीवन की यातना का मर्म भेदी दृश्य चित्रित है—

फरंगिया के राजुआ मां छूटा मोरा देसुआ हो/गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया।
भोली हमें देख आरकाटी भरमाया हो/कलकत्ता पार जाओ पांच साल रे बिदेसिया।।
डीपुआ मां लाये पकरायो कागदुआ हो/अंगूठुआ लगाए दीन्हा हाय रे बिदेसिया।
पाल के जहाजुआ मां रोय-धोय बैठी हो/कैसे होई काला-पानी पार रे बिदेसिया।।
जिअरा डराय घाट क्यों नहीं आए हो/बीते दिन कई मास रे बिदेसिया।
आई घाट देखा जब फिजीआ कै टापुआ हो/भया मन हमरा उदास रे बिदेसिया।।
कुदाली, कुरबाल दीना हाथुआ मां हमरे हो/घाम मां पसीनुआ बहाए रे बिदेसिया।
खेतुआ मां 'तास' जब देवे 'कुलम्बरा' हो/मार-मार हुकम चलाए रे बिदेसिया।।
काली कोठरिया मां बीते नांही रतिया हो/किसके बताई हम पीर रे बिदेसिया।
दिन-रात बीती हमरी दुख मां उमरिया हो/सूखा सब नैनुवा के नीर रे बिदेसिया।।

इस लोक-गीत में जीवन की व्यथा-कथा स्वयं ही अनुभव होने लगती है। इसी प्रकार का एक प्रवासी विरह का गीत मैंने अपने सूरीनाम प्रवास में भी सुना था—

छोड़ अइली हिंदुस्तानवा बबुआ पेटवा के लिए
छोड़ली मइया, बप्पा, बंधु सारा परिवारवा
कि छूटल मिलन की आस।
पहली भरम मां छूटल पटना कै सहरवा
छूट गइले प्यारी गंगा मइया कै अंचरवा
नांही मनली एकौ बाबा भइया कै कहनवा
बबुआ पेटवा के लिए।
छोड़ अइली हिंदुस्तानवा बबुआ पेटवा के लिए।।
रोते होइ हैं जोरू और गोद के गदेलवा
कि करि-करि ददुवा कै आस।
फूटी गइली करम की टूटी गइली नातवा
समुझ-समुझ मन रोये कलकतवा
जियरा के बुझावे काही गावे लगली गानवा
बबुआ पेटवा के लिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छोड़ आइली हिंदुस्तानवा बबुआ पेटवा के लिए।।
स्वर्ग से जहान मोरा छुटल वेद और पुरानवा
कि होयगा धरम नास।
राम-धाम छूट गइले मिला बनवसवा
चुन्नी-खुद्दी खाय-खाय काटलीहै घासवा
मांझा कै गुलामी करली तो मिल दुई दानवा
बबुआ पेटवा के लिए।
छोड़ आइले हिंदुस्तानवा बबुवा पेटवा के लिए।।

लोक-साहित्य जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में अपनी बेबाक अभिव्यक्ति के लिए चर्चित होता है। मनुष्य के जीवन में जन्म, विवाह, मृत्यु आदि ऐसी अवस्थाएं हैं जिन्होंने संस्कार का रूप ग्रहण कर लिया है। इसके अतिरिक्त नैसर्गिक शक्तियों ने आस्था एवं विश्वास रखने में भी मानव जीवन में संस्कार बना लिया है। पूजा-पाठ, यज्ञ, तीज-त्योहार, किस्सा-कहानी, कथा-वार्ता, नृत्य-संगीत सब मानव समाज में प्रचलित हैं। इन सभी सामाजिक संस्कारों पर लोकगीत का गायन होता है।

सभ्यता समाज की आत्मा होती है। लोकगीत का संबंध समाज की आत्मा से होता है, शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के ऊपरी आवरण से नहीं होता। अतः लोकगीत किसी वर्ग विशेष का गीत नहीं है, बल्कि उस सांस्कृतिक समाज का गीत है जो अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठावान होता है तथा उस पर गर्व का अनुभव करता है।

लोक-साहित्य की सभी विधाएं लिखित न होने के कारण उनमें स्थान भेद के अनुसार पाठ-भेद भी बहुत पाया जाता है। लंबे काल तक लोककण्ठ में प्रवाहित रहने के कारण प्रत्येक क्षेत्र के लोकगीत अपने मूल रूप को छोड़कर कुछ न कुछ रूपगत नवीनता अवश्य ग्रहण कर लेते हैं। इसका मूल कारण भौगोलिक दूरी है। भारत के लोग जब यहां से हजारों मील दूर अन्य देशों जैसे—मारीशस, फीजी, गुयाना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड गए तो वे वहां के शब्दों एवं उच्चारण को अपने व्यवहार में अनायास ही लाने लगे। दूरी के कारण जिस प्रकार भाषा-भेद की सृष्टि होती है उसी प्रकार उनके कुछ प्रतीक भी बदल जाते हैं। फीजी के प्रस्तुत लोकगीत में स्थानीय प्रयोग इसी प्रकार हुआ है—

ननदिया मांगे फूलाझरी रे।
सब गइयन मां बैलवा बड़ा है
वाहू ननद के देव
पिया तुम सोयेव कि जागेयेव
ननदिया बैलवा लेती नहीं रे।
ननदिया मांगे फूलाझरी रे।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब 'कइबीतिन' में 'रातुमारा' बड़ा है
वाहू ननद का देव
पिया तुम सोयेव कि जागेयेव
ननदिया 'रातुमारा' का लेती नहीं रे।
ननदिया मांगे फूलाझरी रे।।
सब सहिबन मां 'हालन' बड़ा है
वाहू ननद का देव
पिया तुम सोयेव कि जागेयेव
ननदिया हालन का लेके चली रे।
ननदिया मांगे फूलाझरी रे।।

इस गीत में कइबीतिन, रातुमारा, हालन, फीजी के शब्द हैं। इसी प्रकार एक और गीत में फीजी के शब्द दर्शनीय हैं—

'नगोना' हमसे छूटै न प्यारी।
देस छूटा, जात छूटी
छूटे बाप महतारी
'नगोना' हमसे छूटै न प्यारी।
इस 'टापू' का भांग 'नगोना'
पी के रात गुजारी।।

इसमें नगोना, टापू शब्द स्थानीय रूप को दशति हैं। मारीशस में गन्ने की कटिया के समय गाये जाने वाले लोकगीत में अनेक शब्द वहां के अनुसार प्रयोग में आये हैं, जैसे—

उठे फजिर 'लापेला' पर जाना रे।
उठे फजिर के 'लापेला' पर जाना रे।।
इधर-उधर 'कान', 'पलाते' बिच मां मकई हो
एक जगह गोड़ पिया तोहें चमकइबें
लापेला पर जाना।
देसअ के ए भइया आये 'मिरिचिया'
काहे सोचत दिन रतिया
मार कुदारी, हींच पछाड़ी चल अगाड़ी
ए ही 'मिरिचिया' की रीत
लापेला पर जाना।।

यहां लापेला, कान, पलाते, मिरिचिया शब्द स्थानीय रूपों में प्रयोग किए गए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं। इसी प्रकार सूरीनाम के एक गीत में वहां के शब्द समाहित कर आधुनिक गीत बनाने का प्रयास किया गया है—

'सिरनामवा' कै लरकन देखा गजब कै चाल दिखावत बाय।
उधर दुलहिनियां नव्वा पै जाय के 'ब्याव हेउ' बार कटावत बाय।।
इधर तो भइया लुंगी, धोती बांध-बांध एड़ी तक छुपावत बाय।
उधर दुलहिनियां 'कनतोरो' मां जाय के आधी टांग दिखावत बाय।।
भइया घिरहू औ गिरधारी काम उठाओ सिर पर भारी
जुग-जुग जियो नाम कमाओ पहिले अपना घरवा सम्हारो
फिर बाहर चलाओ कटारी।।

इस गीत में सिरनामवा, ब्यावहेउ, कनतोरो आदि शब्द स्थानीय रूप से प्रयोग किए गए हैं। इसी लोकगीत के समान मारीशस में भी एक लोकगीत प्रचलित है। दोनों में आधुनिक समाज की निंदा की गई है। मारीशस में गाया जाने वाला लोकगीत इस प्रकार है—

आइल नया जमाना घर में नांही बाटे खाना तबो सिनेमा जाना
आजकाल छोकड़ा 'बीटुल' बनेला, रंग-बिरंग कै 'सिमिज' पहने ला।
छोकड़ी नियर आपन बार छोड़ेला, गली में चले ला त एक्टर बने ला।
पापा कालेज के फ़ीज देवेला, बेटा चुरा के सिनेमा देखेला।
सुबु शाम घर में लड़ाई होवेला, बाहर में बड़ाई करे ला।
आज काल छोकरी बार काटेला, 'लापुद' 'लोस्यों' से मुंह लिपे ला।
सारी के बदले 'मिनिजय' पहिन ला, इज्जत मरजाद पर लात मारे ला।

परंपरागत संस्कृति शास्त्रीय धर्मों, संप्रदायों और ग्रंथों की सीमा का अतिक्रमण करती हुई स्वच्छंद भाव से लोकमानस में यात्रा करती रहती है। उच्च वर्ग अथवा शिष्ट वर्ग की संस्कृति को 'शिष्ट वर्गीय संस्कृति' और निम्न वर्ग अथवा सामान्य जनता की संस्कृति को 'लोक-संस्कृति' कहा जाता है। संस्कृति की मूलधारा समस्त असुविधाओं के जाल से छन कर उस बृहत्तर लोक-समाज तक पहुंचती रही और लोक-जीवन में उसका स्वतंत्र ढंग से पोषण और विकास होता रहा। लोक-साहित्य इसी लोक-संस्कृति की सहज एवं व्यापक अभिव्यक्ति है। इसी का चित्रंण पहले वर्णित लोकगीतों में हुआ है।

बिहार, उत्तर प्रदेश से जाने वाले श्रमिक अपने साथ लोक-जीवन की सभी प्रवृत्तियों को साथ ले गये। उनके एकाकी और श्रममूलक क्षणों और सुनसान रातों में लोक-साहित्य के गीत, कथाएं, किस्सा, पहेलियां और पद ही नवीन जीवन ऊर्जा के प्रेरक तत्व रहे हैं। इसीलिए सूरीनाम, गुयाना, ट्रिनीडाड, फीजी और मारीशस के बहुल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रवासी भारतीय समाज में भारत के ही अधिकांश विषय और उपमान मिलते हैं। क्योंकि उनकी जड़ें उनके अंतस्तल में गहरे पैठी हुई हैं, जिनका सहज रूप में निकल पाना कठिन है।

संस्कार गीत प्रायः सभी राष्ट्रों में भारत से समान ही गाए जाते हैं जैसे—सोहर गीत, मुण्डन गीत, नकछेद-कर्णछेद गीत, जनेऊ गीत, विवाह गीत, ऋतु गीतों में फाग, चैता, कजरी, झूला, बारहमासा, कहंरवा, बिरहा, पचरा, जंतसार, निरवाही, मंगल गीत, परिछन गीत, मांडौ छवाई, इमली घोंटाई, बिदाई गीत, संझा गीत, गारी, झूमर, चनैनी, धोबी गीत आदि।

शिक्षा और वैज्ञानिक उपकरणों के प्रचार-प्रसार से मौखिक तथा कंठ परंपरा का लोक-साहित्य अब लिपिबद्ध भी होने लगा है। लोक गीतों के कैसेट्स बन गए हैं और लोक कथाओं पर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मारीशस के श्री प्रह्लाद रामशरण ने 'मारीशस की लोक कथाएं' नाम से एक संकलन प्रकाशित कराया है जिसको उ.प्र. सरकार ने पुरस्कृत भी किया है। मारीशस के लोक-साहित्य पर भारत में दो शोध-प्रबंध भी लिखे गए हैं। पहला—डा. कुबेर मिश्र द्वारा—मारीशस के भोजपुरी लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन। यह शोध-प्रबंध काशी विद्यापीठ के डॉ. शंभुनाथ सिंह के निर्देशन में लिखा गया है तथा दूसरा—श्रीमती संयुक्ता देवी—मारीशस में हिंदी और प्रह्लाद रामशरण का हिंदी साहित्य। यह शोध-प्रबंध रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के अंतर्गत जे.एस. हिंदू कालेज, अमरोहा, उ.प्र. हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. कमलेश के निर्देशन में संपन्न हुआ है।

फीजी के श्री राम नारायण गोविंद ने फीजी के प्रचलित हिंदी लोकगीतों का संकलन किया है। इसी राष्ट्र के श्री जोगिंद्र सिंह कंवल ने भी अच्छे लोकगीतों को एकत्रित किया है। फीजी में झिनकी नाम की एक भारतीय महिला थी, जिसने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण तक त्याग दिए। जिसका उदाहरण फीजी के जन मानस में आज तक व्याप्त है। एक लोकगीत में उसकी व्यथा इस प्रकार व्यक्त की गई है—

बिपत झिनकी की सुने को दईया
सहिबा है बड़ा पिटईया।
है अपना सरदार चुगलखोर
बैरन है राम दईया।।

विवाह संस्कार सर्वत्र होते हैं। लोकगीतों में इनका सजीव चित्रण होता है। मंगल, आशीष एवं स्नेह-ममत्व के बीच यह संपन्न होता है। सूरीनाम में विवाह का यह गीत भारतीय परंपरा एवं रीति-रिवाजों के अनुकूल है। बेटी का हाथ पीला कर उसे सहर्ष दान कर पिता उऋण होना चाहता है। सूरीनाम के इस लोकगीत में इसके संकेत मिलते हैं—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मड़वे मां कांपइ बेटी का बाबा
कब बेटी उऋण होब, हो रामा।
कहां पाइबे लोटिया, कहां पाइबे धोतिया
कहां पाइबे कुशवा कै दाम
कुशवा पंइतिया लइके बाबा संकलपै,
अब बेटी उऋण होब।

विवाह के अवसर पर बनाए गए माड़ो के नीचे खड़ा हो पिता सोचता है—बेटी का विवाह कर उऋण होना है। बेटी के चले जाने पर मेरा लोटा, धोती और कुश की पवित्री कौन लाकर देगा? पर लोटा खरीद लूंगा, धोती खोज लूंगा, कुश की पवित्री ले लूंगा किंतु बेटी से उऋण होना है। बाबा अर्थात् पिता ने हाथ में कुश लेकर संकल्प कर कन्या-दान किया और बेटी ब्याह कर उऋण होता है।

मारीशस के एक लोकगीत में पाणिग्रहण के समय कन्या का भाई वर और कन्या के हाथ के ऊपर जल की धार गिराता है—

चौका चढ़ि बैठे लीन गौरा सिया देवि
गौरा सिया देवि, वर जे करेला सविकार जी।
एक ओर बैठेला नैहर के लोगवा,
नैहर के लोगवा, एक ओर ससुरा कै लोग जी।
सबसे उत्तिम फल कन्या कै दान हो,
कनिया कै दान हो, वर जे करेला सविकार जी।
माता-पिता मिलि देवे कन्या-दान हो,
कन्या कै दान हो, भ्रातन जल बरसाये जी।

जल की धार पाणिग्रहण के समय डाली जाती है। कुछ बड़ी स्त्रियां दो पंक्ति का यह गीत भी गाती हैं—

अरे अरे भइया कवन रामा तोहरी धरियो न टूटे हो।
जो धरिया टूटि जइ हैं बहिनियां से हरवा हो।।

फीजी में बेटी की शादी होने पर पराई होने से पूरे परिवार और संबंधियों को दुख होता है। प्रस्तुत लोकगीत में यही दर्शाया गया है—

बाबा जो बाबा पुकारे, बाबा न बोले
बाबा देख कवन पूता सेंदुर
बेटी पराई भई।
भइया जो भइया पुकारे, भइया न बोले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भइया देख कवन पूता सेंदुर
बहिनी पराई भई।
मामा जो मामा पुकारे, मामा न बोले
मामा देख कवन पूता सेंदुर
भयने पराई भई।
काका जो काका पुकारे, काका न बोले
काका देख कवन पूता सेंदुर
बेटी पराई भई।

इस लोकगीत की ही तरह पारिवारिक संस्कारों के अनेक गीत समय-समय पर गाये और सुने जाते हैं। बेटी की बिदाई का मर्म स्पर्शी गीत मारीशस के लोक-जीवन में सहज ही गाया जाता है—

सांझ कै उगेली अंजोरिया ए बाबा, सुकवा उगेला भिनुसार रे।
सूरज किरन मोके लागे ए बाबा, गोरिया बदन कुम्हिलाई रे।।
कहतू त बेटी तमुआ तनैती, कहतू त छतरी उरेहि रे।
होत भिनुसार बाबा बोलले चिरैया, लगबो सुनर वर साथ रे।।
दुधवा कै निखियो न दीहलू ए बेटी, लगलू सुनर वर साथ रे।
काहे कै दुधवा पियवला ए बाबा, काहे कै कइला दुलार रे?
जनते तू रहला कि धीयवा पराई, लगली सुनर वर साथ रे।।

हालैण्ड में सूरीनाम के बहुत से प्रवासी भारतीय रहते हैं जिनका रहन-सहन, रीति-रिवाज सभी भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत है। भोजपुरी और अवधी बोली से प्रभावित है इनकी बोल-चाल की भाषा। बेटी की विदाई के समय एक लोकगीत में मां-बेटी को घी की गागर की तरह छिपाती फिरती है—

मइया जो धेरिया छिपावे जइसे घिउ गागर हो।
मइया जो रोवे भितर होइके, बाबा रोवे हो।
डोलिया पकरिके बीरन भइया रोवें, बहिनी परी होइगे हो।।

मैंने अपने सूरीनाम प्रवास में यही गीत सुना था। मानवीय जन-जीवन के प्रायः सभी प्रसंगों को लोकगीतों में व्यक्त किया गया है। जिसके माध्यम से हिंदी की बोलियां अब भी मारीशस, फीजी, सूरीनाम, हालैण्ड, गुयाना, ट्रिनीडाड, जमैका, कनाडा आदि देशों में बोली एवं समझी जाती हैं। यद्यपि उनमें स्थानीय प्रभाव और कहीं-कहीं रोमन लिपि के माध्यम से इन्हें सुरक्षित रखा गया है। इनमें हुए प्रकारान्तर के मूल कारणों एवं प्रभाव पर वर्तमान हिंदी शोधकर्त्ताओं को समुचित शोध करना चाहिए। इनके उच्चारण, ध्वनियों और संबंधों का सही रूप प्रस्तुत करने से हिंदी का लोक-साहित्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी अस्मिता, गौरव और अस्तित्व की रक्षा करने में सफल हो सकता है।

लोकगीतों में होली जिसे फीजी, सूरीनाम आदि देशों में फगुआ या फाग के नाम से अधिक जाना जाता है, का भी विशद वर्णन मिलता है। सूरीनाम में तो होली (फगुआ) राष्ट्रीय त्योहार माना जाता है। इस दिन यहां सार्वजनिक अवकाश भी रहता है। सैकड़ों लोकगीत इन सुंदर राष्ट्रों में अब भी बड़ी तन्मयता और रसमयता के साथ गाये और सुने जाते हैं। आज आवश्यकता है कि विश्व में फैले हुए हिन्दी लोकगीतों को संकलित कर उन्हें सुरक्षित रखने की। वैज्ञानिक उपकरणों एवं सुविधाओं के आधार पर इनका संरक्षण सहज ही किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति और बोली के लिए समर्पित उत्साही साहित्यप्रेमियों, अनुसंधानकर्त्ताओं का सर्वत्र स्वागत होगा तथा विश्व हिंदी साहित्य में उनके इस कार्य को महत्व भी मिलेगा, ऐसी मुझे आशा है।

विश्व में बिखरे पड़े प्रचलित लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो निश्चय ही एक नवीन उपलब्धि होगी। यह तुलनात्मक अध्ययन भाषागत, विषयगत, भावगत, रूपगत, ध्वनिगत और परंपरागत आधार पर किया जा सकता है। स्थानों, नामों और दृष्टांतों में गायक अपनी सुविधानुसार प्रयोग और परिवर्तन कर लेता है जिससे एक लोकगीत दूसरे राष्ट्र में अपनी पहचान बनाने में अधिक लोकप्रिय हो जाता है, यही लोकगीतों की अपनी विशेषता होती है।

मैंने अपने सूरीनाम, मारीशस, फीजी, गुयाना, ट्रिनीडाड की यात्राओं में स्वयं देखा और सुना है कि यहां के लोक-गायक अपने ढंग से इसे गाते हैं। लोकगीतों में आये नाम और स्थान जिस अवसर या परिवार में गीत गाया जाता है, उसी का प्रयोग स्वयं कर लिया जाता है। दूल्हा, समधी, दामाद, बहनोई, ननद, बाबा, बाप, भइया और साले आदि के नामों को बदलते हुए ही गाया जाना एक प्रक्रिया और रीति है। इसी प्रकार स्थानों का भी परिवर्तन होता है।

इन्हीं लोकगीतों, लोक-कथाओं के माध्यम से विश्व में फैले लाखों प्रवासी भारतीयों ने अपने स्वाभिमान और अस्मिता की रक्षा की है। यदि हिंदी का यह लोक-साहित्य जो कि प्रचुर समृद्ध एवं धनी है, सुरक्षित तथा प्रकाशित कर दिया जाए तो हिंदी के 'विश्व भाषा' के स्वप्न को सहज ही साकार बनाया जा सकता है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ICCR PUBLICATIONS

(Forthcoming Titles)

Handicrafts of India
Kamaladevi Chattopadhyay
(Reprint)
This edition examines the whole gamut of Indian crafts through man's historical, cultural and sociological evolution over several centuries.
Demy 4to; Cloth with jacket.

Indian Music: *B.C. Deva*
(Reprint)
This volume explains in a simple manner the intricacies of an extremely sophisticated music. Its various chapters give lucid description of raga, tala and musical scales and forms.
Royal 8vo; Cloth with jacket.

Vision of India
(Fourth revised and enlarged edition)
An anthology of the writings of great Indians who shaped India's consciousness in their times and played significant roles in the regeneration and reintegration of its culture.
Royal 8vo; Cloth with jacket.

Directory of Cultural Organizations in India
It is comprehensive Directory, the first of its kind in India, figuring detailed information about cultural organizations of national importance. It will be a useful reference guide to scholars, libraries and institutions in the field of art, culture, dance, music, theatre, literature etc. To be brought out in two hardbound volumes, it is likely to be published by June 1994.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्व हिंदी सम्मेलन संभावनाएं एवं उपलब्धियां

डॉ. भक्तराम शर्मा

हिंदी अपनी गरिमा के कारण केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व के अनेक देशों में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी है तथा विदेशी विद्वानों ने भी उसे अध्ययन-अध्यापन एवं शोध का विषय बनाकर इसके गौरव को चार चांद लगाए हैं और अनेक ग्रंथ मां-भारती को अर्पित किए हैं। वस्तुतः हिंदी भाषा के अध्ययन विश्लेषण की परंपरा का प्रारंभ प्रायः विदेशी विद्वानों ने ही किया। हमारे देश में आधुनिक भारतीय भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन, प्रथम भाषा-सर्वेक्षण, प्रथम कोश-निर्माण, प्रथम व्याकरण-निर्माण, प्रथम पाठ्य-पुस्तकें और उनका मुद्रण आदि कार्यों में बहुत बड़ा योगदान विदेशियों का रहा है। इनमें मैक्समूलर, ग्रियर्सन, विलियम केरी, मैकग्रेगर आदि प्रमुख हैं। ज्ञातव्य है कि हिंदी भाषा का प्रथम व्याकरण सर्वप्रथम डच भाषा में लिखा गया था, तत्पश्चात उसका लैटिन में अनुवाद हुआ था।

आज हिंदी भारत में ही नहीं, अपितु संसार के अनेक देशों में बड़ी लोकप्रिय भाषा है। उसे संसार की श्रेष्ठतम और समृद्ध भाषाओं में परिगणित किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए हिंदी एक सर्वथा सशक्त और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सक्षम भाषा बनती जा रही है। विदेशी हिंदी विद्वान अनवरत हिंदी साधना में संलग्न हैं। उनकी रचनाएं भारत में छपती, बिकती तथा पढ़ी जाती हैं। इस प्रकार हिंदी की सेवा में अनेक पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों, साहित्य-प्रेमियों, शोधकर्त्ताओं, पाठ्य-पुस्तक निर्माताओं, वैयाकरणों और अनुवादकों का अनेक स्तरीय योगदान रहा है।

कई विदेशी हिंदी विद्वानों ने हिंदी भाषा के प्रति अपनी अटूट निष्ठा का परिचय दिया है। उनके सक्रिय सहयोग से ही हिंदी-स्पेनी कोश, हिंदी-अरबी कोश, हिंदी-चीनी कोश, हिंदी-फ्रांसीसी कोश, चेक-हिंदी कोश, जर्मन-हिंदी कोश आदि कोशों का निर्माण संभव हो सका है। हिंदी भाषा विद्वान सृजनात्मक साहित्य के निर्माण में भी संलग्न हैं।

हिंदी की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया से परिचय करवाने हेतु तथा उसके भावी विकास की संभावनाओं पर विचार-विमर्श हेतु प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में, द्वितीय मारीशस में तथा तृतीय नई दिल्ली में आयोजित किए गए। उसी श्रृंखला में अब चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन पुनः दिसंबर 1993 में मारीशस में होने जा रहा है। इन सम्मेलनों से हमें क्या-क्या उपलब्धियां हुई तथा क्या-क्या संभावनाएं हैं, आदि पर जरूर विचार करना चाहिए।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन का दायित्व लिया था। *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* के शाश्वत आदर्श और भाषागत सद्भाव एवं सहयोग से नए युग का सूत्रपात करने के पुनीत उद्देश्य से प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन जनवरी 1975 में नागपुर में संपन्न हुआ। विश्वभर के लगभग 30 देशों के लगभग 122 प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। साथ ही भारत के कोने-कोने से भी तीन हजार प्रतिनिधि और पर्यवेक्षक पधारे थे। उपस्थित प्रतिनिधियों ने समवेत स्वर से हिंदी की महत्ता को स्वीकारते हुए यह मांग की, कि हिंदी को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्यक् स्थान मिलना चाहिए। यह भी अनुभव किया गया कि हिंदी मात्र संख्या के बल पर ही नहीं, अपितु अपने अंतर्निहित गुणों के कारण भी इसकी अधिकारिणी है और इसकी चतुर्दिक प्रतिष्ठा का दायित्व भारत के हिंदी-प्रेमियों पर निर्भर है।

सम्मेलन के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व की ओर संकेत करते हुए स्वागत समिति के अध्यक्ष और तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बी.पी. नाईक ने कहा :

> *इस सम्मेलन की कल्पना अत्यंत भव्य और व्यापक है और हमें लगा कि इसको सफल बनाने में यदि हमारे हाथ से अल्प-स्वल्प-सी भी सेवा हो सके तो हम धन्य होंगे। हमारी यही दृष्टि रही है कि केवल मराठी और हिंदी ही नहीं, भारत और विश्व की सभी भाषाएं प्रेम और सहयोग की भावना से रहें और विश्व में शांति और मैत्री की स्थापना करने में*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मदद करें। इसीलिए हमने पूरे अंतःकरण से इस सम्मेलन का समर्थन किया है।

इस ऐतिहासिक समारोह का उद्घाटन करते हुए भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से है। यह करोड़ों की मातृभाषा है और करोड़ों लोग ऐसे हैं जो इसे दूसरी भाषा के रूप में पढ़ते हैं। भारत की समस्त भाषाओं के महत्व को स्वीकारते हुए उन्होंने कहा था कि सभी भाषाएं भारत की सांस्कृतिक परंपरा की समान उत्तराधिकारिणी हैं।

इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए मारीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में मारीशस का एक प्रतिनिधि मंडल भारत आया था। समारोह की अध्यक्षता करते हुए सर शिवसागर रामगुलाम ने कहा था कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए महत्व इस बात का है कि यह अंतर्राष्ट्रीय भाषा है। मारीशस, गुयाना, फीजी और अफ्रीका के कई देश यह मानते हैं कि भारत की राष्ट्रभाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में उनका हाथ रहा है।

हिंदी की मूलभूत और व्यापक समस्याओं पर वैचारिक आदान-प्रदान का मंच प्रस्तुत करने हेतु सम्मेलन की सात विचार-गोष्ठियों को निम्नलिखित तीन विषयों के अंतर्गत विभाजित किया गया था

1. हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति,
2. विश्व मानव की चेतना, भारत और हिंदी, तथा
3. आधुनिक युग और हिंदीः आवश्यकताएं और उपलब्धियां

विश्व मानव की चेतना, भारत और हिंदी विषय के अंतर्गत तीन विचार गोष्ठियां हुई

(क) शाश्वत मूल्यों की खोज (ख) जन-संचार के साधनों की भूमिका (ग) विश्व मानव का मूल्यगत संकट और भाषा तथा लेखन के संदर्भ में युवा पीढ़ी की मानसिकता।

तीसरा विषय हिंदी के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित थाः (क) प्रशासन विधि और विधायी कामों की भाषा (ख) ज्ञान-विज्ञान का महत्व (ग) भाषा-शिक्षा एवं सहायक सामग्री।

इन गोष्ठियों में वैचारिक आदान-प्रदान के पश्चात इस सम्मेलन में तीन निर्णय लिए गए :

1. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को भी आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाए
2. वर्धा में विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हो, और
3. विश्व हिंदी सम्मेलन की उपलब्धियों का स्वामित्व प्रदान करने की दृष्टि से कोई ठोस योजना बनाई जाए।

प्रस्तुत सम्मेलन के महासचिव अनंत गोपाल शेवड़े ने सम्मेलन की वैचारिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पृष्ठभूमि और अभिप्रेत लक्ष्यों की जानकारी दी। आयोजन के पीछे आयोजकों की जो दृष्टि रही है उसकी चर्चा करते हुए उन्होंने बताया, हिंदी को सभी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं के प्रति नितांत आदर की भावना रखते हुए और भारत की सभी पंद्रह प्रमुख भाषाओं का स्नेह और सहयोग प्राप्त करके ही आगे बढ़ना है, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बने। भारत का संविधान हिंदी से इसी प्रकार के उत्तरदायित्व के निर्वाह की अपेक्षा रखता है। इसी भावना से हमने विश्व हिंदी सम्मेलन के मंच से भारत की पंद्रह प्रमुख भाषाओं के ज्येष्ठ और वरिष्ठ साहित्यकारों को सम्मानित करने का निश्चय किया है। इसके अलावा ऐसे हिंदी सेवियों का भी .सम्मान करने की योजना है जिनकी मातृभाषा हिंदी को छोड़कर अन्य कोई भाषा हो या रूसी, अंग्रेजी, चेक जैसी कोई विदेशी भाषा हो। यह सम्मान तो केवल प्रतीकात्मक है जिसके द्वारा भारत की तथा विश्व की सभी भाषाओं के प्रति हिंदी अपना विनम्र अभिवादन करती है।

हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय महत्व को ध्यान में रखते हुए हिंदी के विदेशी विद्वानों का भी अभिनंदन किया गया था। भारतीय भाषाओं के प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यकारों का भी सम्मान और अभिनंदन किया गया जिसका उद्देश्य यह था कि हिंदी सभी भारतीय भाषाओं की भगिनी है और वह उन्हीं के सहयोग एवं स्नेह से आगे बढ़ सकती है।

निःसंदेह प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन में एक विशाल वैश्विक दृष्टि रखी गई थी। इसका व्यापक स्तर पर स्वागत भी हुआ। क्योंकि इस सम्मेलन के एक वर्ष बाद द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन मारीशस में होना था अतः समस्त हिंदी प्रेमी जनता उसकी तैयारियों में लग गई। इस सम्मेलन की उपलब्धियों के साथ-साथ उसकी कुछ सीमाएं भी रहीं, जिसकी पूर्ति द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन में करने का लक्ष्य बनाया गया।

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन

द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन 28-31 अगस्त, 1976 को मारीशस में महात्मा गांधी संस्थान में हुआ। मारीशस में आयोजित सम्मेलन में भारत की ओर से लगभग साठ हिंदी सेवियों और साहित्यकारों का राजकीय प्रतिनिधि मंडल भेजा गया था। तत्कालीन केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह इस प्रतिनिधि मंडल के नेता थे। राजकीय प्रतिनिधि मंडल के साथ ही लगभग डेढ़ सौ हिंदी सेवी गैर सरकारी तौर पर वहां गए थे। भारतीय प्रतिनिधियों में पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेंद्र नाथ अश्क, विमल मित्र, अनंत गोपाल शेवड़े जैसे हिंदी विद्वान एवं साहित्यकार और हिंदी सेवी भी थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जापान, फ्रांस, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, स्वीडन, इटली, इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी, हंगरी आदि 20 अन्य देशों के प्रतिनिधियों ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया था।

इस सम्मेलन में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के बोध वाक्य *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* को स्वीकार किया गया था, जिसके अनुसार विश्व एक परिवार की संकल्पना को बल मिला।

वास्तव में हिंदी के इतिहास में यह पहला अवसर था जब भारत से बाहर विदेश मे हिंदी के कवियों, लेखकों, मनीषियों, साहित्यकारों, पत्रकारों ने एक साथ मिल बैठकर विचार-विमर्श किया।

सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए मारीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री एवं अनन्य हिंदी प्रेमी डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने मारीशस में भारतीय भाषाओं के विकास का क्रम बताते हुए कहा :

> *हमारा विश्वास है कि इन भाषाओं की रक्षा से हमारे देश की संस्कृति की रक्षा होनी है और इन संस्कृतियों के मेल से हम मारीशस में नई संस्कृति का निर्माण करेंगे, जिसमें सबका योगदान होगा। मेरा विश्वास है कि हिंदी प्यार और एकता की भाषा है। यह हमेशा से जनता की भाषा रही है। भारत और मारीशस दोनों को स्वतंत्र कराने में हिंदी का हक रहा है।*

अध्यक्षीय भाषण में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता डॉ. कर्ण सिंह ने हिंदी की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा :

> *आज हिंदी सभी प्रकार के विचारों की एक समर्थ वाहिनी बन चुकी है और बोलने वालों की संख्या को देखते हुए यह चार प्रमुख भाषाओं में से एक है। इसमें अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने की क्षमता है। देववाणी संस्कृत के साथ-साथ तो हिंदी का अधिक सामीप्य है, क्योंकि वह हिंदी की ही नहीं, कई भाषाओं की जननी है। इस अवसर पर एकत्र सदस्यगण के सामने मैं यह प्रार्थना करना चाहूंगा कि जहां वे हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रसर हैं, वहां उनका संस्कृति की ओर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। इस सशक्त सजीव भाषा के सीखने के प्रबंधक हर उस देश में होने चाहिए जहां हिंदी भाषा को समृद्ध बनाने में सहायता होगी। इसके अतिरिक्त हिंदी तथा अन्य भाषाओं में परस्पर अनुवाद जरूरी है। भारत में लिखे जाने वाले हिंदी साहित्य को अन्य देशों तक और अन्य देशों के साहित्यकारों की हिंदी रचनाओं को भारत पहुंचाना एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है। इसी से हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं की आवश्यकता है, जो हिंदी का संदेश विश्व के हर उस क्षेत्र तक पहुंचाएं जहां हिंदी भाषी तथा हिंदी प्रेमी रहते हों।*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्मेलन तीन दिन तक चला। इसमें चार विचार-सूत्रों का आयोजन किया गया, जिनमें चार प्रमुख विषयों पर विचार-विमर्श हुआ :

1. हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप
2. जनसंचार के साधन और हिंदी
3. स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका
4. विश्व में हिंदी के पठन-पाठन की समस्याएं।

हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप

सभी विद्वानों ने हिंदी की महानता बतलाते हुए इसे राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनने पर बल दिया। यह सिफारिश की, कि इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एक क्रमबद्ध कार्यक्रम बनाया जाए। हिंदी के ऐतिहासिक योगदान की चर्चा करते हुए वक्ताओं ने बतलाया कि इसके माध्यम से कवियों, साहित्यकारों, संतों, विचारकों ने अपनी अनुभूतियों से देश-विदेश को जागृत किया है और वे इसे सार्वदेशिक तथा अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनाने में निरंतर प्रयत्नशील हैं।

डॉ. धर्मवीर भारती ने विषय का उद्घाटन करते हुए कहा :

हिंदी का यह इतिहास सचमुच एक वर्तमान या समकालीन इतिहास की एक विचित्र-सी कहानी है। संसार में मारीशस का विशेष महत्व इस दृष्टि से भी मैं मानता हूं कि यह एक ऐसा देश है जिसने अपनी आजादी की लड़ाई हिंदी भाषा के सहारे लड़ी और उन मूल्यों की, मानव अस्मिता की उस स्थापना के लिए उसने अपनी भाषा के माध्यम से प्रयास किया। आज यह सचमुच बड़े गर्व की बात है कि स्थान-स्थान पर वह लड़ाई जीती गई और आज हिंदी भाषी इस स्थिति में हैं कि सारा संसार उन्हें समानता के स्तर पर देखता है और अपना संबंध बढ़ाने के लिए हिंदी के प्रति उसके मन में कुतूहल है, प्यार है, जिज्ञासा है, ज्ञान की पिपासा है।

सोमदत्त बखोरी ने *हिंदी को राष्ट्रसंघ में उचित स्थान मिलना चाहिए* का प्रश्न उठाया। उन्होंने साथ ही यह चेतावनी दी थी कि जब हम ही इसकी इज्जत करने को तैयार नहीं, तब राष्ट्रसंघ या दुनिया से क्या आशा की जा सकती है। उन्होंने यह भी राय दी कि प्रवासी हिंदी साहित्य को भारतीय हिंदी साहित्य का एक अभिन्न अंग बन जाना चाहिए।

डॉ. ओदोलेन स्मेकल ने हिंदी के विरोधियों के आरोपों का खंडन करते हुए अपना मत इस प्रकार प्रकट किया :

हम हिंदी के विरोधियों के आरोपों से प्रारंभ करें, जो अधिकतर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यद्यपि स्वयं हिंदी बोलने में असमर्थ और अक्षम हैं, हिंदी पर अक्षमता का आरोप लगाते हैं। अक्षमता से उनका अभिप्राय यह है कि हिंदी अविकसित, विपन्न, दुरूह, बोझिल और आधिकारिक, शासनिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक, शिल्पवैज्ञानिक, प्राविधिक आदि विशिष्ट विषयों की कार्रवाई के लिए अनुपयुक्त, अयोग्य है। इन आरोपों का प्रत्युत्तर स्वयं हिंदी का पिछले तीन दशकों का इतिहास दे सकता है। इस तीस वर्षीय अवधि में जबकि उसके विरोध्यियों की औपनिवेशिक नींद भी नहीं टूट सकी कि हिंदी कितनी समृद्ध हो गयी, यह इतना आगे बढ़ी है कि वे अनुमान भी नहीं कर सकते क्योंकि हिंदी के विकास की प्रवृत्तियों की पहचान उनको नहीं है। यह तो हम भाषाविदों तथा हिंदी के अध्येताओं को भली भांति ज्ञात है कि हिंदी की कितनी प्रगति हुई है।

श्रीकांत वर्मा ने किसी भाषा की अंतर्राष्ट्रीयता के दो प्रमुख लक्षण बताए। पहला यह कि वह देश की सीमाओं को लांघ जाती है और दूसरा उसका कोई व्याकरण नहीं होता है। उनके मतानुसार हिंदी को अगर अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप विकसित करना है तो उसे अधिक से अधिक उदार बनाना होगा। उदारता आती है व्याकरण को अधिक उदार बनाने से और उसमें अधिक से अधिक शब्दों को स्वीकार करने की शक्ति का विस्तार करने से।

जनसंचार के साधन और हिंदी

इस सत्र में सर्वश्री वासुदेव सिंह, प्रो. के. दोई, मोहन लाल मोहित, कमलेश्वर ने सक्रिय भाग लिया। इसमें हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रबंध-व्यवस्था में आने वाली समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया गया। स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं के बंद होने पर गहरी चिंता व्यक्त की गई। कमलेश्वर का मत था कि पत्रिकाओं को चलाने के लिए हमें हिंदी को वर्तमान की भाषा बनाना होगा। रेडियो और टेलीविजन की भाषा, समाचार-पत्र की भाषा पर भी विचार हुआ। कहा गया कि रेडियो-टेलीविजन की भाषा, समाचार-पत्र की भाषा चाहे जितने लोगों तक पहुंच पाती हो, हमें निश्चित रूप से कम्युनिटी लिसनिंग और कम्युनिटी रीडिंग को देखना पड़ता है। उन माध्यमों से हम पहुंच पाते हैं उनके बीच में। प्रश्न हिंदी का आता है। आप पहुंचना चाहते हैं तो निश्चित रूप से आप इन साधनों को सुगम तथा सुबोध कीजिए ताकि टेलीविजन-रेडियो को भी हम गांव में उनके प्रश्नों से जोड़ सकें और इन्हें जनता के करीब ला सकें।

स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका

इस सत्र की चर्चा का सारांश यह था कि आज हिंदी सारे विश्व को सूत्रबद्ध करने का प्रयास कर रही है, इसका सारा श्रेय स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं को जाता है। ये

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संस्थाएं न केवल हिंदी का प्रचार कर रही हैं अपितु हिंदी-संस्कृति का प्रचार कर रही हैं। वे सारी मानवीय संस्कृति को, सारी मानवीय चेतना को उद्‌बोधित करने का प्रयास कर रही हैं। अतएव हिंदी के माध्यम से सारे विश्व में एक नई संस्कृति, एक मानव संस्कृति का निर्माण करने का प्रयास इस सम्मेलन का उपादेय लक्ष्य है।

स्वैच्छिक संस्थाओं में हिंदी प्रचारिणी सभा, नागरी प्रचारिणी सभा, सस्ता साहित्य मंडल, अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ, अंतर्राष्ट्रीय सारस्वत विद्यापीठ, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा आदि संस्थाओं का विशेष उल्लेख किया गया। निष्कर्ष यह निकाला गया कि हिंदी भाषा के प्रचार के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं ने बड़ा काम किया है। उससे हिंदी का प्रचार हुआ है। हिंदी के प्रचार में महात्मा गांधी का स्थान सर्वोपरि है। हिंदी केवल भाषा ही नहीं सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। अतः विश्व हिंदी सम्मेलन को सांस्कृतिक क्षेत्र में भी काम करना है।

विश्व में हिंदी के पठन-पाठन की समस्या

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में इस सत्र का आयोजन हुआ। वक्ताओं का विचार था कि हिंदी के अध्ययन एवं अध्यापन की प्रणाली को और सशक्त बनाया जाए। उसके लिए नए अविष्कारों का प्रयोग किया जाए और शोध के क्षेत्र को व्यापक बनाया जाए। भाषा और साहित्य की रक्षा के लिए मातृभाषा को ही अध्ययन-अध्यापन का माध्यम बनाया जाना चाहिए। द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी के अध्यापन और विदेशी भाषा के रूप में हिंदी के अध्यापन की पाठ्य-सामग्री के अभाव और उसकी पूर्ति की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया।

इस सम्मेलन में दो सुझाव दिए गए कि :—

1. मारीशस में एक विश्व हिंदी केंद्र की स्थापना की जाए जो सारे विश्व में हिंदी की गतिविधियों का समन्वय कर सके।
2. एक अंतर्राष्ट्रीय हिंदी पत्रिका का प्रकाशन किया जाए जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके जिसमें मानव विश्व का नागरिक बन सके और विज्ञान तथा अध्यापन की महाशक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण कर सके।

वस्तुतः मारीशस के नागरिकों ने द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन को एक अंतर्राष्ट्रीय भाषायी सम्मेलन ही नहीं वरन् विश्व सांस्कृतिक अनुष्ठान के रूप में आयोजित किया। अपार स्नेह, अगाध निष्ठा एवं अद्वितीय श्रद्धा के पवित्र वातावरण में संपन्न द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर अनेक उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण कार्यक्रम आयोजित किए गए। डाक टिकट का विमोचन, भव्य पुस्तक प्रदर्शनी, कवि सम्मेलन तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने सम्मेलन को सद्‌भाव, समरसता एवं सौहार्द्रता प्रदान करने में उल्लेखनीय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूमिका निभायी। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि भौगोलिक सीमाओं की बनावटी दूरी को सांस्कृतिक एकात्मकता समाप्त कर सकती है।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन सात वर्ष के लंबे अंतराल ब्राद भारत की राजधानी नयी दिल्ली में 28-30 अक्तूबर को संपन्न हुआ। नागपुर और मारीशस में संपन्न क्रमशः प्रथम और द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजनों से हिंदी को एक मंच मिला था। वह विश्व स्तर की भाषा बनी। तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी के विकास की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को गति देते हुए इसके राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय रूप को पुष्ट करना लक्ष्य रखा गया। इसका उद्देश्य जाति, धर्म, वर्ण और राष्ट्रीयता को संकुचित सीमाओं से परे, हिंदी को प्रेम, सेवा और शांति की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास रखा गया।

विचार गोष्ठियां

प्रथम दोनों सम्मेलनों के आयोजन से न केवल भारत तथा अन्य देशों के मैत्रीपूर्ण संबंध सुदृढ़ हुए थे वरन् राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रीय स्तर से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ले जाने की ऐतिहासिक प्रक्रिया को बल मिला था। सम्मेलन की योजना का एक मूलभूल उद्देश्य हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय रूप को और अधिक पुष्ट करना था। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर इस सम्मेलन में जो त्रिदिवसीय विचार-गोष्ठियों का आयोजन किया गया उन्हें दो खंडों में विभाजित किया गया था :

(क) खुला अधिवेशन और

(ख) समानांतर संगोष्ठियां

खुले अधिवेशन को निम्नलिखित तीन विषयों में विभाजित किया गया था :

1. अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रसार की संभावनाएं और प्रयास
2. भारत के सांस्कृतिक संबंध और हिंदी
3. मानव-मूल्यों की स्थापना में हिंदी की भूमिका।

अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रसार की संभावनाएं और प्रयास में यह विचार प्रकट किया गया कि विश्व के विभिन्न देशों में इस भाषा का अध्ययन-अध्यापन होता है और इसे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इसलिए अब यह आवश्यक हो गया है कि इसे विश्व भाषा के रूप में संयुक्त राष्ट्रभाषा में स्थान मिले। आयोजकों से जोरदार शब्दों में कहा गया कि वे हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनाए जाने के लिए सुनियोजित ढंग से कार्रवाई करें, तभी हिंदी विश्व मंच पर आ सकेगी।

भारत के सांस्कृतिक संबंध और हिंदी सत्र में हिंदी को भारत की आत्मा स्वीकार करते हुए कहा गया कि हिंदी भाषा मात्र नहीं है बल्कि भारत के अंदर चलने वाली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंतः प्रवृतियों की प्रतीक है, भारत के विराट रूप की चेतना है। हिंदी को विश्व की भाषा बताते हुए कहा गया कि जिस दिन हिंदी इस देश की भाषा बनेगी और जहां-जहां भारतीय मूल के लोग बसे हुए हैं उन देशों में उसको स्थान मिलेगा, उस दिन वह संयुक्त राष्ट्र संघ में लोकतंत्र के विराट प्रतीक के रूप में अपना स्थान ग्रहण करेगी। इसके लिए हमें संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं है। संघर्ष तो यह करने की आवश्यकता है कि इस देश के अंदर हिंदी को स्थान मिले।

मानव मूल्यों की स्थापना में हिंदी की भूमिका में कहा गया कि यह स्वाभाविक ही है कि हिंदी की व्यावहारिक समस्याओं की चर्चाओं की परिणति मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा में हो। हिंदी केवल एक भाषा ही नहीं है, वह मानव-मूल्यों की अधिष्ठात्री भी है। मानव-स्थापना से ही मानव मूल्यों की स्थापना हो सकती है। हिंदी आत्मान्वेषण की लोक कल्याण की भाषा रही है। यह सत्य की भाषा है और सत्य में ही सभी मूल्य समाहित हैं। हिंदी भविष्य में पूर्व और पश्चिम के बीच सेतु का कार्य करेगी क्योंकि यह समग्रता, समन्वय और सामंजस्य की भाषा है।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन में कुछ बातें स्पष्ट रूप से उभर कर आईं। पहला तथ्य इस रूप में निखर कर आया कि अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी के प्रसार तथा विकास की अनेक संभावनाएं हैं। किंतु इनका प्रतिपादन तथा उन्हें साकार करने के लिए जितने प्रयासों की आवश्यकता है, उसका बहुत कम अंश अभी तक हो पाया है। यह भी तथ्य उभरकर आया कि आधुनिक भारत में हिंदी का बहुमुखी विकास हुआ है। हिंदी ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में काफी प्रगति की है। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया कि हिंदी भाषा राजभाषा के साथ-साथ एक समृद्ध विश्व भाषा है यह निश्चय हुआ कि अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक स्थायी समिति का गठन किया जाए।

इस प्रकार इन तीनों सम्मेलनों के फलस्वरूप हिंदी की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सदर्भों की भूमिका न केवल स्पष्ट हुई वरन् आज के परिवेश में भाषा वैमनस्य के कटुतापूर्ण वातावरण में भाषायी मैत्री के लिए विश्व हिंदी सम्मेलन की भूमिका और अधिक प्रबलता से उभरकर सामने आई। इससे भारत तथा अन्य देशों के मैत्रीपूर्ण संबंध ही दृढ़ नहीं हुए वरन् राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रीय स्तर से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाने की ऐतिहासिक प्रक्रिया को भी बल मिला है।

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन दस वर्ष के लंबे अंतराल बाद पुनः मारीशस में 2-4 दिसंबर 1993 को मनाया जा रहा है। इसका आयोजन मारीशस सरकार के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थाओं के मंत्रालय के तत्वावधान में हो रहा है। सम्मेलन मारीशस द्वीप के मध्य में स्थित महात्मा गांधी संस्थान, मोका में वहां के प्रधानमंत्री सर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनिरुद्ध जगन्नाथ के संरक्षण में होगा। इस सम्मेलन में ससार के विभिन्न देशों के करीब तीन सौ प्रतिनिधियों के भाग लेने की संभावना है। भारत सरकार ने भी सम्मेलन के आयोजकों को आश्वासन दिया है कि वह अपना एक सरकारी प्रतिनिधि मंडल भेजेगी।

प्रस्तुत सम्मेलन का मुख्य विषय है: *विश्व में हिंदी*। इस सम्मेलन के आयोजन के मुख्य उद्देश्य होंगे :

1. विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहित करना।
2. विश्व में हिंदी भाषा तथा साहित्य की उपलब्धियों एवं संभावनाओं पर विचार-विमर्श करना।
3. हिंदी के माध्यम से संस्कृति को आज के संदर्भ में देखते हुए संबल प्रदान करना तथा सांस्कृतिक अस्मिता को बनाकर रखने की दिशा में प्रयास करना।

उपर्युक्त मुख्य विषयों पर विचार-गोष्ठियों के अतिरिक्त मारीशस में हिंदी और भारतीय संस्कृति पर विद्वानों द्वारा विशेष व्याख्यान भी होंगे। भाषा विज्ञान, साहित्य, लोक साहित्य, हिंदी और आधुनिक शिल्प-विज्ञान पर शोध लेख प्रस्तुत किए जाएंगे। मारीशस की सांस्कृतिक विरासत पर प्रकाश डालने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम, प्रदर्शनी, नाटक-मंचन आदि की व्यवस्था की जाएगी।

चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन में एक सचिवालय बनाए जाने का प्रस्ताव है जहां सम्मेलन में पारित प्रस्तावों को लागू करवाने और अगले सम्मेलन के संचालन की रूपरेखा बनाई जाएगी।

अपेक्षाएं एवं संभावनाएं

विश्व की भाषाओं में बोलने वालों की दृष्टि से चीनी और अंग्रेजी के बाद हिंदी का स्थान है। इसके बावजूद अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हिंदी जितनी मान्यता की हकदार है, उतनी अभी उसे प्राप्त नहीं हुई है। जो देश आर्थिक, वैज्ञानिक और राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली होते हैं आज उन्हीं की भाषा को ऊंची प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। उनकी भाषाएं सर्वक्षेत्रीय अग्रदूत बनी रहती हैं और विकासशील देशों की भाषाएं मात्र अनुवाद की भाषाएं बनकर अनुगामिनियों की तरह चला करती हैं। यह इसी बात से सिद्ध होता है कि फ्रेंच, जर्मन और जापानी भाषाएं अपेक्षाकृत कम जनसमुदाय की भाषाएं होते हुए भी अंतर्राष्ट्रीय भाषा-जगत में हिंदी से ऊंचे स्थान पर आसीन हैं।

विकासशील देशों की भाषाओं के मध्य हिंदी अब पर्याप्त विकसित स्थिति में मानी जाने लगी है और क्रमशः विश्व में उसका प्रचार और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है। तीन विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन से हिंदी के प्रचार-प्रसार में पर्याप्त वृद्धि हुई है। लेकिन कुछ बिंदु चिंतनीय हैं जिन पर ध्यान देने की महती आवश्यकता है।

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था कि संयुक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता प्रदान करने के लिए पूरा प्रयत्न किया जाए। लेकिन अब तक इस दृष्टि से कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया है। भले ही विदेश मंत्री के रूप में श्री अटल बिहारी वाजपेयी और श्री पी.वी. नरसिंह राव ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने भाषण हिंदी में कर दिए हों, लेकिन हिंदी को वहां सरकारी तौर पर मान्यता प्रदान कराने में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ या इस प्रकार की अन्य अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं संस्थानों में हिंदी का प्रयोग आरंभ करने के लिए न केवल भारत सरकार को उसके आर्थिक व्यय को वहन करना होगा अपितु उसके साथ ही इस कार्य के लिए उसे बड़ी संख्या में दुभाषिए और अनुवादकों को भी उपलब्ध कराना होगा।

तीनों विश्व हिंदी सम्मेलनों में विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना की बात को भी सर्वसम्मत प्रस्ताव के रूप में स्वीकृत किया गया था लेकिन अठारह वर्ष व्यतीत होने पर भी अभी तक विद्यापीठ की स्थापना खटाई में पड़ी हुई है। एक पक्ष वर्धा में इसकी स्थापना करवाना चाहता है जबकि दूसरा पक्ष इसकी स्थापना दिल्ली में ही करना चाहता है।

वस्तुतः भाषा का प्रश्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक है। अतः जब हम अंग्रेजी और अंग्रेजियत की मानसिकता और दासता से उबरकर भारत की स्वतंत्र सांस्कृतिक, सामाजिक सत्ता की खोज की ओर उन्मुख होंगे, निःसंदेह अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हिंदी की स्थिति भारत में हिंदी के महत्व पर निर्भर करेगी। अतः समस्त हिंदी प्रेमियों को भारत में हिंदी को समुचित स्थान दिलवाने में भगीरथ प्रयत्न करना होगा। जिस दिन भारत एक राष्ट्र के रूप में ऐसा करने का संकल्प ले लेगा उस दिन से हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप स्वतः निखरने एवं उभरने लगेगा। विश्व हिंदी सम्मेलनों का आयोजन भी तभी सार्थक बन पाएगा। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदेशों में हिंदी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानक हिंदी और भारत की अस्मिता

डॉ. ओदोलेन स्मेकल

(क) मेरी हिंदी लघुकथा

पैंतालीस वर्ष तक मैं हिंदी भाषा के विकास का साक्षी रहा हूं। हिंदी को मैंने अब तक का अपना जीवनकाल प्रदान किया—एक तो शिक्षण कार्य में, पाठ्य-पुस्तकों के प्रणयन में, हिंदी से चेक भाषा में और उल्टे चेक से हिंदी में अनुवाद कार्य में, तो सृजन कार्य के हर्षोन्माद की घड़ियों में। कविताएं लिखने के लिए मैंने हिंदी को अपनी दूसरी मातृभाषा के रूप में स्वीकृत किया है।

मानक हिंदी को अपनाने का मैं बराबर यत्न-प्रयत्न करता रहता हूं। दिन-प्रति-दिन कोई नया हिंदी शब्द, मुहावरा या लोकोक्ति और इसके साथ नवनिर्मित पारिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली अपना लेता हूं।

हिंदी के प्रति मेरा विचार बहुत कुछ भावपूर्ण है। अपना संवेगात्मक संबंध कोई पांच वर्ष पहले मैंने एक अपनी कविता में इस ढंग से जताया—

हिंदी का पूर्ण रूपेण ज्ञान
है सोम रस पान मेरे लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जितनी बार उसे पिया
उतने जीवन जिए
उतने ही मिले अभिनव प्राण

(ख) मानक भाषा और मानक हिंदी

केवल मानक भाषा अपने देश की सभ्यता की संदेशवाहिका होती है, उसे सुसंस्कृत भाषा कहा जा सकता है। वह साहित्यिक भाषा नहीं क्योंकि साहित्यकारों की अपनी अपनी साहित्यिक शैलियां होती हैं। केवल मानक भाषा राष्ट्रीय जीवन में अपनी अनन्य भूमिका निभा सकती है क्योंकि वह संस्कृति, कला, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, प्रविधि, राजनीति आदि क्षेत्रों में प्रयुक्त की जाती है। मानक भाषा सामान्य सूचना की साधारण दैनिक कार्य की भाषा शैली नहीं होती। अनौपचारिक संलाप की भाषा यानी सड़क पर बातचीत और आकस्मिक वार्तालाप की भाषा में बोलचाल की शैली विद्यमान है जो अधिकांशतः संकर भाषा या बोली है।

मानक हिंदी वह निखरी हुई, प्रांजल, प्रभावशाली है जिसमें पूरे भारत की आत्मा परिलक्षित होती है, वह तो देश की बोलती हुई आत्मा है, सारे देश की अस्मिता का दर्पण।

(ग) मानक हिंदी और भारत की अस्मिता

ऊपर जो मानक भाषा के बारे में बताया गया था, इससे स्पष्ट होता है कि केवल मानक हिंदी भारत के संपूर्ण इतिहास, उसकी समग्र संस्कृति की प्रतिनिधि भाषा हो सकती है। उसके परिमार्जित रूप में देश के सारे आत्मिक गुण निहित हैं। यह तो न केवल अनेक पीढ़ियों का उत्तरदान है परंतु यह नहीं भूलना चाहिए कि उसमें बीसवीं शताब्दी की नवनिर्मित पारिभाषिक शब्दावली भी समाविष्ट हुई है ताकि वह हरेक आधुनिक सामाजिक विषय के लिए उपयोगी और प्रयोज्य हो ताकि उसकी अभिव्यंजना शक्ति अपेक्षित, उच्च स्तर की हो।

भारत की आधुनिक एकता तथा उसकी परंपरागत अस्मिता बहुत कुछ मानक हिंदी पर निर्भर होती है। मानक भाषा और मानक हिंदी राष्ट्र चेतना को वर्चस्व प्रदान करती है। वह देश के नैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक या प्राविधिक उन्नयन के लिए परम अपेक्षित है। जैसे जापान, चेक देश या अन्य देशों में राष्ट्रीय पुनर्जागरण के समय वैसे भारत में भी मानक हिंदी या भाषा उत्प्रेरक शक्ति की भूमिका निभा सकती है। उस अवस्था में भाषा शास्त्र, अर्थशास्त्र के बराबर आता है या उससे कम, नगण्य नहीं होता। हम यहां तक कह सकते हैं कि वह आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है क्योंकि राष्ट्र के विकास के साथ मानक भाषा का विकास आनुषंगिक होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(घ) भारत में मानक हिंदी का अपर्याप्त ज्ञान

इसमें दो मत नहीं की भारत की अस्मिता अंग्रेजी के कारण इतनी धूमिल नहीं होती, जितनी मानक हिंदी के अपर्याप्त ज्ञान के कारण।

यह भारतवासियों को ठीक प्रकार से समझ लेना चाहिए कि विदेशी भाषा पढ़ने या सीखने का अर्थ अपनी भाषा की अवहेलना नहीं होती और न होनी चाहिए। यह तो निर्विवाद है कि कोई भी विषय हमें पढ़ने को अपनी भाषा में मिलना चाहिए, कोई भी विषय, न केवल साहित्यिक बल्कि वैज्ञानिक, औद्योगिक, आर्थिक और राजनीतिक अपनी भाषा में प्रत्येक भारतवासी को मिलना चाहिए, नहीं तो वह मूल चिंतक कभी न बन पाएगा।

(च) मानक हिंदी बोलने में गौरव

भारत में जैसा मैंने देखा मानक हिंदी के प्रति पहुंच धीरे-धीरे बदल रही है। मैं यह कहने का साहस कर रहा हूं कि ऊंचे धनी और शिक्षित वर्ग के जन तथा बुद्धिजीवी नागरिक और व्यापारीगण मानक हिंदी को निरादर या हेय दृष्टि से नहीं देखते। वे लोग मानक हिंदी को बोलने में संकोच इसलिए करते हैं कि उनका हिंदी ज्ञान अभी तक सभी वार्तालापी प्रकार्यों के लिए अपर्याप्त है जबकि अंग्रेजी में बोलना उनके लिए बाएं हाथ का खेल है। इसीलिए उसे प्राथमिकता देते हैं। इस अवस्था में अब यह चाहिए कि जो व्यक्ति हिंदी की रोटी खाते हैं उनको दूसरों के लिए मानक हिंदी का यथोचित उदाहरण दें। हिंदी कार्य को गति तब मिलेगी जब मानक हिंदी के प्रति अभिरुचि विशेषकर हिंदी भाषा भाषी समुदाय में जागृत की जाएगी।

यह बात स्पष्ट है कि मानक भाषा अपने आप नहीं फैलती। जहां तक मानक हिंदी की बात है, मैं कहूं कि यदि किसी को उस देश में मानक हिंदी अपनानी हो, सीखनी हो और इसका कहीं प्रचार किया जाए तो सबसे पहले उन पांचों हिंदी भाषा भाषी राज्यों में, उनकी राजधानियों में, उनके प्रमुख विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों और प्रशासन के कार्यालयों में।

यह तो ठीक है कि हिंदी भाषा भाषी क्षेत्रों में, गांवों में, कस्बों में साधारण लोग और ग्रामीण अपनी बोलियां बोल लें। परंतु सबसे पहले शिक्षितों को, शिक्षित वर्ग को ही मानक हिंदी सीखनी है चाहे वे हिंदू हो या मुसलमान। हरेक हिंदी वाले को न केवल बोलचाल की हिंदी जाननी चाहिए परंतु उसे मानक हिंदी भी अपनानी है, नवनिर्मित शब्द जो उनके व्यवसाय के लिए चाहिए, आत्मसात करने पड़ते हैं।

भाषा की परिधि में कोई चमत्कार नहीं घटता, कोई अचानक परिवर्तन नहीं हो जाता। भाषा की परिधि में केवल छोटे दैनिक कार्यक्रमों में सुधारों से ही मानक हिंदी को भारतीय समाज में उचित, अग्रगण्य स्थान दिलाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब तक स्वयं हिंदी भाषा भाषी समुदाय में और समुदाय द्वारा मानक हिंदी अपनाई नहीं जाएगी, जब तक भारतवासियों को मानक हिंदी बोलने में गौरव का अनुभव नहीं होगा, जब तक इस देश के कोने-कोने में भारत की परंपरागत प्रतिभा नहीं चमक उठेगी, तब तक भारतवासी आधुनिक संसार को अपना वास्तविक वर्चस्व दिखाने में पूर्ण समर्थ नहीं होंगे।

यह तो सभी भारतवासियों को समझ लेना चाहिए कि मानक हिंदी वह एक बिंदु है जिसमें पूरे भारत का सिंधु-दीर्घकालीन सभ्यता तथा गौरवशाली संस्कृतियों समेत समा गया है।

मानक हिंदी को भली भांति अपनाना हर एक देशभक्त का न केवल परम कर्त्तव्य होता है परंतु वह उसके लिए साथ-साथ आदर और सम्मान की बात है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी की वर्तमान स्थिति पर ढाई विचार

डॉ. रुपर्ट स्नेल

हिंदी की सेवा करने का मतलब क्या है, क्या होना चाहिए? हम किसी भाषा की सेवा क्यों करें? जब मैं इस बात पर विचार करना शुरू करता हूं तो हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का एक निबंध याद आता है। द्विवेदी जी कितने बड़े विद्वान थे; उन्हें साहित्याचार्य या गुरु के रूप में कितने ही लोग मानते थे! मुझे भी उनसे मिलने और बात करने का सौभाग्य मिला था, उन्नीस सौ सतहत्तर में। उस समय मैंने अभी अभी ब्रजभाषा में शोध करना शुरू किया था। द्विवेदी जी से मेरा परिचय वृंदावन के एक गोस्वामी मित्र ने करवाया, वाराणसी में। शाम का समय था, करीब छः बजे। अंधेरा हो चला था। जब हम द्विवेदी जी के घर पहुंचे तो उन्होंने बड़े प्यार से हमारा स्वागत किया। बैठक में कोई चार पांच लोग बैठे थे; साहित्यिक चर्चा चल रही थी। हम लोग हिंदी के मध्यकालीन साहित्य के बारे में बात करने लगे। इसके साथ ही साथ हम वह दूसरा काम भी करने लगे, जो कि साहित्यिक वार्तालाप का एक अनिवार्य हिस्सा है। यानी हम चाय पीने लगे। बैठे हुए सज्जनों में से किसी ने कहा कि हिंदी की असली सेवा पुराने जमाने के भक्त कवियों ने की थी। द्विवेदी जी ने इस बात का समर्थन नहीं किया, न ही इसके विरुद्ध कुछ कहा; पर बाद में उन्होंने कहा कि हां, बहुत ज़रूरी है कि हम इस बात पर ध्यान दें कि हिंदी के संदर्भ में इस 'सेवा' का क्या मतलब है। उन्होंने मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक लेख दिखाया जिसे उन्होंने कई साल पहले लिखा था। उस लेख का शीर्षक है—'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'। वैसे इस लेख में जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनसे मैं अब पूरी तरह सहमत तो नहीं हूं, पर हिंदी की सेवा के बारे में द्विवेदी जी का कहना बहुत ही उचित लगता है। उनका कथन इस प्रकार है :

> *"हम लोग जब हिंदी की 'सेवा' करने की बात सोचते हैं, तो प्रायः भूल जाते हैं कि यह लाक्षणिक प्रयोग है। हिंदी की सेवा का अर्थ है उस मानव-समाज की सेवा जिसके विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम हिंदी है। मनुष्य ही बड़ी चीज है, भाषा उसी की सेवा के लिए है।"*[1]

"यह लाक्षणिक प्रयोग है।" इस बात को भूलना सचमुच आसान है। पर इसे नहीं भूलना चाहिए, क्योंकि इसे भूलने से हम यह मानने लगते हैं कि हिंदी की सेवा के लिए उन अभिवृत्तियों और संस्कारों की आवश्यकता है जिनके साथ एक ठाकुर या देवी की सेवा की जाती है। हिंदी की परिकल्पना जब हम करते हैं तो किस तरह की प्रतिमा हमारी आंखों के सामने दिखाई देने लगती है? जिस भाषा को कबीरदास ने 'बहता नीर' कहा था, उसको देवी के रूप में मानेंगे तो क्या हम नतमस्तक होकर, हाथ जोड़कर उसके सामने खड़े हो जाएं? और जब उस महान भाषा और उसके बोलनेवालों के बीच एक गहरी खाई खोदी जाए, तो द्विवेदी जी के कथन का क्या होगा—"मनुष्य ही बड़ी चीज है, भाषा उसी की सेवा के लिए है"? कबीरदास की 'बहता नीर' वाली परिकल्पना को ध्यान में रखकर, हिंदी को देवी-देवता के रूप में देखना उचित नहीं लगता है। देवी न होकर वह भाषा एक जीवंत, चलती-फिरती मानव जाति का नमूना बनती है—कभी गंभीर विचारों वाली विद्या की प्रतिमा के रूप में, कभी बाजारों में खेलती हुई लड़की, कभी किशोरी, कभी सुंदरी। और वह सुंदरी अपने हिंदी भाषियों की संगिनी रहेगी, क्योंकि मनुष्य ही बड़ी चीज है, भाषा उसी की सेवा के लिए है।

कुछ ही दिन पहले की बात है। मैं इसी तरह की बातों के बारे में सोच रहा था, और साथ ही साथ वह दूसरा काम भी कर रहा था, जो कि सोचने का एक अनिवार्य हिस्सा है—यानी मैं चाय पी रहा था। सोचते-सोचते और चाय पीते-पीते मुझे नींद आने लगी। सपनों की दुनिया में प्रवेश पाने के लिए वीज़ा की कोई जरूरत नहीं होती; एक पल के अंदर मुझे पासपोर्ट कंट्रोल और कस्टम क्लीयरेंस दोनों से निवृत्ति मिली।

सपने में एक ज्ञानी, ऋषि की वेशभूषा धारण किए हुए और हाथ में एक मोटी-सी पुस्तक लिए, मेरे सामने दिखाई दिए। उन्होंने कहा कि आओ, तुम हिंदी भाषा के बारे में क्या जानना चाहते हो? मुझे सब कुछ मालूम है, काल की कोई सीमा नहीं है, मैं हरेक युग में भ्रमण करता हूं।

तो मैंने पास जाकर कहा कि "स्वामी जी, बीसवीं शताब्दी के हिंदुस्तान में हिंदी भाषा को वह स्थान क्यों नहीं मिला, जो कि उसे मिलना चाहिए था?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने कहा, "तुम बताओ, तुम्हारी अपनी राय क्या है?"

मैंने कहा, "शायद अंग्रेजी ने उसकी जगह छीन ली?"

उन्होंने हंसकर कहा, "अरे बिलकुल गलत है, तुम्हें कुछ नहीं मालूम; भारत की सिर्फ ढाई प्रतिशत आबादी को अंग्रेजी आती है।"

तो मैंने कहा, "शायद उर्दू ने ..."

पर उन्होंने मेरी बात को काटकर कहा कि हिंदुस्तान में उर्दू की हालत को देखो, हिंदी से भी बदतर है।

तो मैंने उनसे पूछा कि स्वामी जी, आप ही समझाएं, हिंदी को किसने हानि पहुंचाई थी?

एकदम सीधे खड़े होकर उन्होंने कहा, "इन हिंदी-वालों ने, जिन्होंने हिंदी को शुद्ध बनाने की कोशिश में उसको अनजाने बहुत बड़े खतरे में डाल दिया।"

मैंने कहा, "अच्छा, पर शुद्ध बनाने का मतलब क्या है?"

स्वामीजी ने जवाब दिया, "इसका मतलब यह है कि हिंदी में जो अरबी-फारसी के शब्द हैं, वे लोग उन्हें निकालकर उनकी जगह में संस्कृत मूल के शब्द लाना चाहते हैं। या संस्कृत के आधार पर ऐसे नए शब्द गढ़ना चाहते हैं जिनका मतलब कोई नहीं समझ पाता। लो, इस बात को एक दोहे के रूप में व्यक्त किया जाए—

जो बोली बोली सुनी, तुलसी मीरा सूर।
सो जब तें अति शुद्ध भई, तब तें सब तें दूर।।

पर मेरी बात नहीं मानोगे, तो जाकर इन बड़े-बड़े भक्त कवियों से जाकर पूछो। कबीरदास से ही बात करो। "देखो, कबीर साहब उधर बैठे हैं!"

मैंने मुड़कर देखा, तो कबीरदास अपने करघे के सामने बैठे हुए कुछ लोगों को उपदेश दे रहे थे। उन्होंने मुझे पास बुलाकर बैठने को कहा। आश्चर्य चकित होकर मैंने पूछा, "कबीर साहब, हिंदी की सेवा की जाए, तो कैसे?"

कबीर साहब ने मेरी तरफ एक ऐसी दृष्टि डाली जिसमें बेचैनी, परिहास और व्यग्रता का अजीब-सा मिश्रण था। हिंदी की सेवा? उन्होंने व्यंग्य-भरी आवाज में कहा।—हिंदी की सेवा? अरे किसी बोली की सेवा कैसे की जाएगी? जिस चीज को हमारी सेवा करनी चाहिए, उसी की सेवा हम ही करेंगे? बे सिर पैर की बात क्यों कर रहे हो तुम; बकवास मत करो। अगर सेवकों की सेवा की जाए, तो काम कौन करेगा? और मुझे द्विवेदी जी का कथन फिर याद आया—"मनुष्य ही बड़ी चीज है, भाषा उसी की सेवा के लिए है।" फिर कबीरदास ने एक नई साखी रचकर सुनाई—

सेवा क्यों करि कीजिए भाखा की मन लाय।
भजन बैल कौ होय तो कोल्हू कौन चलाय।।

इस साखी से काफी प्रभावित होकर मैंने सोचा कि इतने वर्षों से कबीर की वाणी को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पढ़ रहा हूं, अब उन्हीं के सामने खड़े होकर कुछ प्रश्न पूछने का जो मौका मिल रहा है, यह हाथ से छूट न जाए। थोड़ी-सी आशंका के साथ मैंने पूछा, ''कबीर साहब, जब आपने हिंदी भाषा को 'बहता नीर' कहा, और संस्कृत को 'कूप-जल' तो आपका कहने का मतलब क्या था?''

कबीर साहब खड़े हो गए। बोले, कहने का मतलब यह था कि हिंदी भाषा जो है, वह बोलचाल की भाषा है, इसीलिए भगत लोगों ने उसे अपनाया था अपना संदेस समझाने के लिए। पर मैंने सुना है कि तुम्हारे ज़माने में उसी बहते नीर में कूप जल मिलाके और विलायत की बोलियों का पुट डालके बोतल में भरके रखा गया है। बोतल का पानी! यह बोतल का पानी सब कहीं बिक रहा है तुम्हारे जमाने में, सब लोग उसे पी रहे हैं बड़े मजे से। वैसी हिंदी को बहता नीर कहना मुश्किल होगा, बल्कि उसे बोतल का पानी ही कहना होगा—यानी बहता नीर नहीं, कूप जल भी नहीं, उसे बिसलेरी कहेंगे! बिसलेरी जो है न, वह बिसलेरी जो हिंदुस्तान की हर चाई की दुकान पर बिकती है। इसीलिए मैं अभी इन भाई-बहनों से कह रहा था—

बहते नीर में डालि करि कुएं कौ यह तोय।
बिसलेरी नाम राखिए, पीवत हैं ... लोय।।

इस नई कबीर-साखी को ... लोग हंस... और भी साहस मिल रहा था। मैंने कबीरदास से ... न पूछा ... विद्यालय की क्लासों में काफी बहस होती रहती ... निर्गुण ... मौलिक भेद है। ...गा कि इस बात ... बीरदास ... हो उठे। ऊंचे स्वर ...—''सबसे ब... है वि... र्क नहीं है—कोई ...भेद नहीं। ... स्व ... जो बात है, समझे? ... बात!'' स...

... ।।

...म्हारे जम... झ रखा है! दुनिया के ...ने में ... नहीं किया जा रहा है! ...तुम्हारे ... कि जिंदगी क्या चीज है, ...नव... नना चाहते हैं कि 'चोली ...छे' ... के लिए तो 'खलनायक'

... आकर तुम्हें तुलसीदास जी

... घाट पर गोस्वामी तुलसीदास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुलाया, पर
कृपया आप
भाषाओं की

की मछलियां
न का कथन

गुसांई जी की सृज
गुसांई जी, आपने अप
स्थिति क्या है?

बिना कुछ कहे तुलसी
आवाज़ में कहा, मेरी समझ
शुद्धता के ढिंढोरे को पीटने
अलग-अलग भाषाओं का मिश्रण
का मेल है। पर आपके हिंदीवालों
को निकाल दिया जाए। तब मेरे राम
मानें या न मानें, पर आपको रसखान
जबान को कितनी अमूल्य देन प्रदान

सपनों की दुनिया में दूर की यात्रा
मैंने रसखान जी को वृंदावन की कुंजगलि
जो कि मैंने तुलसीदास जी से पूछा था—
अंतर है?" रसखान ने उत्तर दिया, हज़ा
तुम्हें इतना नीरस सवाल क्यों सूझा? को
जिसमें हमारे देश में सब लोग एक साथ
होनी चाहिए, न शैली की, न शब्दों की।
सोचता हूं। और हिंदी एक ऐसी सुंदरी है जिसे
कन्हैया भी अपनी गोपियों को भूल जाते। हां!
गोवर्धन पर्वत को उठाना भी भूल जाते!

फिर से मैंने निश्चय किया कि मुझे इस अ

CC-0. In Public Domain. Funding

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पढ़ रहा हूं, अब उन्हीं के सामने खड़े होकर कुछ प्रश्न पूछने का जो मौका मिल रहा है, यह हाथ से छूट न जाए। थोड़ी-सी आशंका के साथ मैंने पूछा, ''कबीर साहब, जब आपने हिंदी भाषा को 'बहता नीर' कहा, और संस्कृत को 'कूप-जल' तो आपका कहने का मतलब क्या था?''

कबीर साहब खड़े हो गए। बोले, कहने का मतलब यह था कि हिंदी भाषा जो है, वह बोलचाल की भाषा है, इसीलिए भगत लोगों ने उसे अपनाया था अपना संदेस समझाने के लिए। पर मैंने सुना है कि तुम्हारे ज़माने में उसी बहते नीर में कूप जल मिलाके और विलायत की बोलियों का पुट डालके बोतल में भरके रखा गया है। बोतल का पानी! यह बोतल का पानी सब कहीं बिक रहा है तुम्हारे जमाने में, सब लोग उसे पी रहे हैं बड़े मजे से। वैसी हिंदी को बहता नीर कहना मुश्किल होगा, बल्कि उसे बोतल का पानी ही कहना होगा—यानी बहता नीर नहीं, कूप जल भी नहीं, उसे बिसलेरी कहेंगे! बिसलेरी जो है न, वह बिसलेरी जो हिंदुस्तान की हर चाई की दुकान पर बिकती है। इसीलिए मैं अभी इन भाई-बहनों से कह रहा था—

बहते नीर में डालि करि कुएं कौ यह तोय।
बिसलेरी नाम राखिए, पीवत हैं सब लोय।।

इस नई कबीर-साखी को सुनकर सब लोग हंस पड़े। मुझे और भी साहस मिल रहा था। मैंने कबीरदास से एक ऐसा प्रश्न पूछा जिस पर विश्वविद्यालय की क्लासों में काफी बहस होती रहती है—यानी निर्गुण और सगुण भक्ति में क्या मौलिक भेद है। मुझे लगा कि इस बात को लेकर कबीरदास पहले से ज्यादा उत्तेजित हो उठे। ऊंचे स्वर में बोले—''सबसे बड़ी बात यह है कि इन दोनों में कोई खास फर्क नहीं है—कोई मौलिक भेद नहीं। दोनों एक ही तत्त्व के दो पहलू हैं। केवल नाम की बात है, समझे? नाम की बात!'' सुनो—

गुनिजन निरगुन सगुन में अंतर गिनत न लेस।
गजमुख गनपति कहत कोउ कोऊ कहत गनेस।।

पर तुम्हारे जमाने के लोगों ने धरम के बारे में न जाने क्या समझ रखा है! दुनिया के हर कोने में धरम के नाम पर क्या क्या किया जा रहा है—क्या नहीं किया जा रहा है! और तुम्हारे जमाने में जो जवान लोग हैं, उन्हें परवाह ही नहीं कि जिंदगी क्या चीज है, इस मानव जीवन के पीछे क्या अर्थ रखा है—सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि 'चोली के पीछे' क्या है! किसी को नायक के रूप में नहीं मानते, उनके लिए तो 'खलनायक' ही कुछ अर्थ रखता है।

फिर कबीर साहब मुझसे बोले, ''पर इतनी दूर से आकर तुम्हें तुलसीदास जी से भी बात करनी चाहिए। देखो, उधर खड़े हैं।''

फिर से मुड़कर मैंने फिर से देखा, तो वहां काशी के घाट पर गोस्वामी तुलसीदास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इधर-उधर टहल रहे थे। मुझे देखकर उन्होंने उंगली के इशारे से मुझे पास बुलाया, पर बोले कुछ नहीं। मैंने पूछा, हिंदी के कवियों में आप ही अग्रगण्य हैं। कृपया आप बताएं, आपके और हमारे ज़माने की हिंदी में क्या अंतर है? हिंदी में दूसरी भाषाओं की शब्दावली मिलाने का क्या परिणाम है?

गुसांई जी इतनी मीठी वाणी से चौपाइयां बोलने लगे कि गंगाजी की मछलियां पानी में से उछलकर उनकी बातें सुनने को उत्सुक हो रही थीं। तुलसीदास का कथन इस प्रकार था।

सब जन की यह हिंदी भाखा। सब जग में तो है नौलाखा।।
कहत सुनत जब आनंद आवै। मानुस देवन कौ पद पावै।।
संस्कृत देसी तद्भव बानी। और मिलावहु कहु का हानी।।
बहती है सरिता बोली की। लसति उजाली लहरें नीकी।।

गुसांई जी की सृजनशीलता को सुनकर मैं अवाक् रह गया। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा, गुसांई जी, आपने अपने जमाने की हिंदी की तारीफ की है, पर मेरे जमाने की हिंदी की स्थिति क्या है?

बिना कुछ कहे तुलसीदास जी दूर क्षितिज की ओर ताकने लगे। फिर धीमी आवाज़ में कहा, मेरी समझ में तो नहीं आता कि आपके ज़माने में लोग क्यों भाषा की शुद्धता के ढिंढोरे को पीटने पर तुले हुए हैं। स्वाभाविक है कि हर भाषा में कई अलग-अलग भाषाओं का मिश्रण होगा। संस्कृत को ही देखिए, उसमें कितनी बोलियों का मेल है। पर आपके हिंदीवालों का कहना है कि हिंदी में से अरबी-फारसी के शब्दों को निकाल दिया जाए। तब मेरे रामचरितमानस का क्या होगा? खैर आप मेरी बात को मानें या न मानें, पर आपको रसखान जी से जरूर मिलना चाहिए। उन्होंने हमारी हिंदी जबान को कितनी अमूल्य देन प्रदान कर दी है। उनसे मिलने के लिए आप ब्रज पधारें।

सपनों की दुनिया में दूर की यात्रा करने में भी देर नहीं लगती। मथुरा गया वहां मैंने रसखान जी को वृंदावन की कुंजगलियों में टहलते पाया। उनसे वही प्रश्न पूछा जो कि मैंने तुलसीदास जी से पूछा था—"आपके और हमारे ज़माने की हिंदी में क्या अंतर है?" रसखान ने उत्तर दिया, हज़ारों मील और सैकड़ों बरस की यात्रा तय करके तुम्हें इतना नीरस सवाल क्यों सूझा? कोई रस की चर्चा छेड़ें। हिंदी वह सुंदर जबान है जिसमें हमारे देश में सब लोग एक साथ बोल सकते हैं। इसमें कोई रोक-टोक नहीं होनी चाहिए, न शैली की, न शब्दों की। मेरा नाम रसखान है न, मैं तो रस की ही सोचता हूं। और हिंदी एक ऐसी सुंदरी है जिसे अगर साक्षात रूप में देखते तो श्री कृष्ण कन्हैया भी अपनी गोपियों को भूल जाते। हां! अपनी माखन-चोरी को भूल जाते, और गोवर्धन पर्वत को उठाना भी भूल जाते!

फिर से मैंने निश्चय किया कि मुझे इस अभूतपूर्व अवसर का फायदा उठाना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाहिए। मैंने नम्रता पूर्वक रसखान जी से निवेदन किया, रसखान साहब, इन विचारों के विषय पर आप एक सवैया बोलेंगे तो मैं जाकर अपने मित्रों को सुनाऊंगा। रसखान की आंखों में एक नई चमक दिखाई दी। बड़े रसीले स्वरों में सुनाने लगे—

कान्ह जो देखत सुंदर रूप अनूप तो छांड़त गोप किसोरी।
ए अधरा मधुरा जदि चाखत छांड़त ये सब माखन चोरी।।
हाँ बलि आज सुनो बिनु लाज यही कबि काज सही कहिबो री।
जो गिरिधारि लखैं कुच द्वै गिरि सो गिरिराज वहीं गिरि गो री।।

''जै हो! जै हो!'' की आवाज़ मेरे कानों में गूंजने लगी। फिर रसखान बोले, हां, हिंदी एक ऐसी सुंदरी है जिसे देखकर पूजा करने का मन होता है। हमारा कितना बड़ा सौभाग्य है इस जन्म में कि हमें इतनी मीठी भाषा बोलने का मौका दिया गया है। तुम जाओ, अपने दोस्तों से मेरा जय श्री कृष्ण बोलना और उनसे कहना कि हिंदी भाषा की सेवा करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हिंदी बोलने का मज़ा ले लें, बिना किसी तरह का संकोच, बिना सोचे कि इस भाषा का कौन सा शब्द किस संस्कृति से आया है।

रसखान का यह आदेश सुनकर मैं जाग उठा। जितने दोहे सवैये मैंने सपने में सुने थे, जल्दी ही उन्हें अपनी नोट-बुक में लिख लिया। उसी नोट-बुक के पहले पन्ने पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेख के आधार पर मैंने कुछ नोट्स भी लिखे थे। और उनका नाम फिर से देखने पर मेरे दिमाग में आया कि जिस उदारता से संत कवियों ने हिंदी भाषा को देखा था, उसी प्रकार की उदारता द्विवेदी जी में भी है—यहां तक कि उनके नाम में भी फारसी जबान का एक नमूना है। अपने 'अनामदास का पोथा' नामक उपन्यास की भूमिका में द्विवेदीजी ने लिखा था—

> *''मेरे श्रद्धेय गुरु संस्कृत के महान् विद्वान थे। उन्होंने कहा था कि तेरे नाम में मुसलमानियत की बू है। पितामह का दिया हुआ 'वैद्यनाथ' नाम ही ठीक है। बदल दे। मुझे 'बू' शब्द खटक गया। मैंने प्रतिवाद किया, ''गुरुजी, सुगंधि कहिए। अगर इसमें ऐसी सुगंधि है तो मैं इसे नहीं बदलने दूंगा। गुरुजी द्रवित हो गए। बोले, ''तो रहने दे।''*[2]

और आज हालांकि मुझे खुद कुछ लिखने का मौका दिया गया है, मैं अपनी ओर से कुछ नहीं लिखने वाला हूं, बस द्विवेदी जी की ये दो बातें दोहराना चाहूंगा :

1. ''मनुष्य ही बड़ी चीज़ है, भाषा उसी की सेवा के लिए है।''
2. ''गुरुजी, सुगंधि कहिए।''

---

1 हजारीप्रसाद द्विवेदी, *अशोक के फूल* (नवां संस्करण), इलाहाबाद 1968, पृ. 116.

2 हजारीप्रसाद द्विवेदी, *अनामदास का पोथा*, दिल्ली 1984, पृ. 4.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

त्रिनीदाद में हिंदी

डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय

दक्षिणी अमेरिका के उत्तर में वेस्टइंडीज नाम से अनेक छोटे-बड़े द्वीप-समूह फैले हुए हैं जिनमें एक द्वीप समूह का नाम त्रिनीदाद-टुबेगो है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में सन् 1845 के पश्चात् वहां सैकड़ों भारतीय मजदूरों के रूप में गए जो परस्पर 'जहाजी भाई' कहे जाते थे। वे बहुत पढ़े लिखे नहीं थे यद्यपि भारतीय संस्कृति के प्रति उनका अनुराग अनन्य था। पढ़ने लिखने के नाम पर वे तुलसी कृत रामायण बाँचते थे अथवा पुराण-महाभारत की कहानियां सुना देते थे।

वे लोग परस्पर वार्तालाप करते समय बोलचाल की हिंदी बोलते थे जो तत्कालीन भोजपुरी-अवधी थी। आज से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व की वह बोली कैसी रही होगी—उसकी कल्पना भर की जा सकती है। खड़ी बोली हिंदी से उनका परिचय नहीं के बराबर होगा क्योंकि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में खड़ी बोली पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक सीमित थी। वे लोग अपनी बोलचाल के प्रयोगों से काम चलाते थे और अंग्रेजी बिल्कुल नहीं जानते थे। धीरे-धीरे उनका हिंदी प्रेम इतना बढ़ा कि उनकी सरकार को इसके लिए विशेष प्रयत्न करने पड़े। उनके अनुरोध पर तथा स्वतंत्र रूप से भी भारत की ओर से वहां हिंदी प्रचार-प्रसार के अनेक प्रयास किए गए हैं।

यहां पर मुख्यतः चार शीर्षकों के अंतर्गत इस हिंदी कार्य का उल्लेख कर सकते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं—(1) मिशनरियों का सेवा कार्य, (2) प्रमुख संस्थाओं का सेवा कार्य (3) अन्य संस्थाओं का सेवा कार्य और (4) हिंदी प्रचार-प्रसार की समस्याएं।

मिशनरियों की हिंदी सेवा

त्रिनीदाद में भारतीय प्रवासियों की मानसिक स्थिति को सर्व प्रथम उनके शासकों ने नहीं, कनाडा मिशन के पादरियों ने समझा था जो वहां शिक्षा सुधार तथा धर्म प्रचार का कार्य करते थे। शासक तो उनसे केवल गन्ने के खेतों, चाय काफी के बागानों में प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक कठोर श्रम कराते थे। पादरियों ने लक्षित किया कि भारतीय समुदाय में धर्म प्रचार के लिए उन्हीं की भाषा सर्वोत्तम माध्यम होगी, अंग्रेजी या कोई अन्य भाषा यह कार्य नहीं कर सकती। इस प्रकार वहां हिंदी पढ़ाने-लिखाने का प्रारंभ कनाडा मिशन के प्रयत्नों से माना जा सकता है। यह मिशन प्रेस बिटेरियन शाखा का था।

उस समय त्रिनीदाद में इस मिशन के प्रधान रेवरेंड जॉन मार्टन थे जो प्रेस बिटेरियन बोर्ड, कनाडा के प्रथम मिशनरी के रूप में कार्यरत थे। उन्होंने आयरी विलेज, प्रिंसेस टाउन, जो दक्षिणी त्रिनीदाद में है, में 23 मार्च 1868 ई. को प्रथम भारतीय प्राइमरी विद्यालय खोला। इसमें पहले तो एक ही हिंदू परिवार के तीन बालक उपस्थित हुए। फिर धीरे-धीरे स्कूलों की संख्या बढ़ती गई। सन् 1911 तक इन स्कूलों की संख्या लगभग साठ हो गई थी। डॉ. मार्टन की प्रशंसनीय सेवा के कारण पचास वर्षों का यह समय सन् 1868-1918 'मार्टन युग' नाम से स्थानीय इतिहास में प्रसिद्ध है।

कहते हैं कि डॉ. मार्टन बरसात के दिनों में स्वयं मीलों चलकर भारतीयों की बस्तियों में जा पहुंचते थे। वहां जाकर वे स्वयं हिंदी बोलते और भारतीयों के साथ भाईचारे का व्यवहार करते थे। उनको अपने साथ ले जाकर दूसरों के घर जाते तथा स्कूलों में वे हिंदी बाइबिल पढ़ाते। उसकी व्याख्या करके लोगों को उन्हीं की बोली हिंदी में समझाते थे। कभीं वे ईसाई भजन गाकर सुनाते जिसका अच्छा प्रभाव पड़ता था। हिंदी बाइबिल भारत से मंगाई गई थी। इसकी प्राचीन प्रतियां अभी गिरजाघरों में रखी हुई हैं।

सन् 1890 के आसपास उनके सहायक मि. एण्डू गयादीन भी हिंदी में धार्मिक प्रवचन करने लगे। गयादीन का वास्तविक नाम अयोध्या प्रसाद था, सूर्यास्त के समय जन्म होने के कारण उन्हें गयादीन (दिनगया) कहा गया। डॉ. मार्टन के प्रभाव से वे ईसाई बने, फिर उन्हें कैरोनी जिले का धार्मिक कार्य सौंपा गया। इसी बीच उन्होंने भारतीय मजदूरों को हिंदी सिखाई और बैरकों से लेकर पाठशाला तथा गिरजाघरों के बीच सड़कें बनवाईं। डॉ. मार्टन ने तुनापुना नामक स्थान में एक हिंदी छापा खाना खोला जहां से गीतमाला प्रकाशित हुई। इसके भजन गयादीन ने प्रकाशित किए थे। फिर इसी छापेखाने से हिंदी में सरकारी सूचनाएं भी प्रकाशित की जाने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'गीतमाला' (हिंदी हिम बुक) की तत्कालीन हिंदी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है जिससे भाषा और धार्मिक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है:

सांझ पड़त मरियम अकुलानी।।
डगर डगर ढूंढ़तु है धाये, नाहिन देखे लाल अपानी।
सुधि नंदन के तुम कुछ जानो, सबही से पूछे बिलपानी।। 1।।
आतुर हवै तब मंदिर बहुरी, अंतर चौदिश हेरी समानी।
बड़े बड़े ज्ञानिन के संगे, बाद करत सुत पाई अपानी।। 2।।
मातु पिता पर कौने कारण, शोक विपति तुम ऐसो आनी।
प्रभु तब सादर उत्तर दीन्ही, माता के सुनि बैन रुखानी।। 3।।
काज करण पितु के मोहि चहिये, औलग तुम यह मर्म न जानी।
चेतहि जो सुनि यह उपदेशा, जान अधम सोई सदज्ञानी।। 4।।

आगे चल कर दूसरे पादरी डॉ. केनेथ ग्रांट तथा उनकी पत्नी ने भारतीय बालकों की सेकंडरी शिक्षा के लिए स्कूल खुलवाए जिसमें हिंदी सम्मिलित थी। कनाडा मिशन ने सन् 1922 तक यहां लगभग बहत्तर प्राइमरी स्कूल खोल दिए थे जिनमें चौदह हजार के आसपास छात्र पढ़ते थे। इन स्कूलों को कैनाडियन मिशन इंडियन स्कूल्स कहा जाता था। यहां रह कर भारतीयों ने हिंदी सीखने के साथ-साथ ईसाई धर्म के संपर्क से नई जीवन-दृष्टि प्राप्त की और अपने को नवींन परिस्थिति के अनुकूल बनाया।

प्रमुख संस्थाओं का सेवां कार्य

जैसा कि त्रिनीदाद की स्थानीय सूचनाओं से ज्ञात होता है, यहां नियमित रूप से हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य सन् 1950 से प्रारंभ हो पाया जिसके लिए इस समय चार संस्थाएं प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं—(1) सनातन धर्म महासभा (2) हिंदी एजुकेशन बोर्ड, (3) भारतीय विद्या संस्थान, और (4) हिंदी-निधि। भारतीयों द्वारा पूर्ण व्यवस्थित पहला सेकंडरी स्कूल सेंट जोजफ था जो 'आर्य प्रतिनिधि सभा' द्वारा खोला गया था। फिर 'सनातन धर्म महासभा', 'कबीर पंथ एसोसिएशन', 'मुस्लिम लीग' जैसी अनेक संस्थाएं प्राइमरी तथा सेकंडरी शिक्षा के लिए कार्यरत हुईं। त्रिनीदाद में भारत से आने वाले हिंदू पंडितों और मौलवियों ने हिंदी तथा उर्दू को जीवित्त बनाए रखा यद्यपि यहां सारा काम काज अंग्रेजी में होता था और आज तक होता है। इतना अवश्य हुआ कि भाषा चेतना के कारण ये लोग अधिकांश भारतीय बने रहे। अन्यथा जमैका, ग्रेनेडा, मार्तीनीक आदि द्वीप समूहों के भारतीयों की भांति वहां के भारतीय प्रवासी अपनी पहचान भूल बैठते।

1. त्रिनीदाद के पंडितों ने स्वयं एक महत्वपूर्ण संस्था का दायित्व निभाया है। 'आर्य सभा' तथा 'सनातन धर्म महासभा' इनके प्रमुख संगठन रहे हैं जिन्होंने भारत के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आर्य-समाज आंदोलन एवं सनातन धर्म सभाओं से क्रमशः प्रेरणा ली है। पंडितों ने वहां जाकर कथा वाचन, रामायण पाठ, हनुमान चालीसा आदि के गायन द्वारा हिंदी प्रचार तो किया ही, इसके साथ श्रीमद्‌भागवत्, शिव पुराण, विष्णु पुराण, गीता आदि का निरंतर साप्ताहिक विधान करते हुए भारत की सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखा है।

आर्य समाज और सनातन धर्म के प्रचारकों ने, शिव नारायण पंथ तथा कबीर पंथ के अनुयायियों ने अपने व्याख्यानों द्वारा हिंदी का महत्व बतलाया है, कबीर पंथी लोग जब चौका पूजा करते हुए आज भी कबीर साहब की साखियों, वेदों का सस्वर गायन करते हैं तो त्रिनीदाद में भारतीय संतों की वाणी साकार हो उठती है। वहां प्रायः हिंदू धर्म तथा हिंदी भाषा को एक ही मान कर समझा जाता है कि हिंदी एक प्रकार से धर्म का प्रचार करती है। इसका कारण यही है कि हिंदी प्रारंभ से ही पंडित-वर्ग के क्रियाकलापों से जुड़ी रही है। वैसे यह धारणा सही नहीं है।

वहां सनातन धर्म के वर्तमान पंडितों में पं. कृष्णा महाराज, डा. जी.बी. राजकुमार, पं. शंभुनाथ कपिल देव, डॉ. उमा महाराज, पं. श्यामसुंदर परस राम, पं. सत्यनारायन पांडे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जो हिंदी के कट्टर समर्थक हैं। दिवंगत पं भदेस सगन महाराज एक प्रकार से इन सभी पंडितों के नेता थे। इन पंडितों और प्रचारकों का केंद्रीय कार्यालय स्थानीय 'लक्ष्मी गर्ल्स स्कूल' में है जो उस देश की एक मुख्य शिक्षा संस्था है। 'सनातन धर्म महासभा' की स्थापना सन् 1952 में हुई और तभी से वह हिंदू धर्म तथा हिंदी भाषा की सेवा कर रही है।

इस समय महासभा द्वारा परिचालित स्कूलों में धर्मशिक्षा के लिए जो समय निर्धारित किया जाता है उसमें अध्यापक हिंदी पढ़ा सकते हैं। विगत चार पांच वर्षों से महासभा ने बाल विकास प्रतियोगिताएं, प्रारंभ की हैं जिसके क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय दो स्तर हैं। इनमें हिंदी के भजन, गीत, रामायण पाठ आयोजित किए जाते हैं तथा सर्वश्रेष्ठ छात्रों एवं स्कूलों को पुरस्कृत किया जाता है। इन स्कूलों में अब नए सिरे से हिंदी पढ़ाने का प्रबंध किया गया है। लगभग चालीस-पचास प्राइमरी स्कूलों के लिए हिंदी पाठ मालाएं तैयार कराई गई हैं।

आर्य समाज के पुराने प्रचारकों में वहां पं. अजुध्या प्रसाद का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। आजकल आर्य प्रतिनिधि सभा के पं. राधे गोसाँई, पं. हरिनाथ सीरीराम, पं. रामचरण गोसाँई ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है। इनके प्रयत्नों से आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित लगभग दस पाठशालाओं में हिंदी की व्यवस्था की गई है। 'डिवाइन लाइफं सोसायटी' के संचालक पं. सच्चिदानंद, कबीरपंथ के महंत जुगलदास, शिव नारायण सभा के महंत राम सरूप ने इसी प्रकार अपने कार्यक्रमों द्वारा लोगों में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न की है। ये पंडित विभिन्न प्रकार से अपने मंदिरों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माध्यम से यह कार्य करते आए हैं। वहां मंदिरों की हिंदी-सेवा चालीस-पचास वर्ष से कम पुरानी नहीं होगी।

2. सन् 1952 में भारतीय उच्चायोग (हाइ कमीशन) के तत्कालीन उच्चआयुक्त श्री आनंदमोहन सहाय ने भारतीय प्रवासियों की सर्वांगीण उन्नति के लिए 'हिंदी एजुकेशन बोर्ड' की स्थापना की थी। इस बोर्ड का प्रमुख कार्य त्रिनीदाद के गांवों में पाठशालाएं खोल कर परीक्षा लेना था। ये परीक्षाएं प्रारंभिक जूनियर तथा सीनियर तीन स्तरों पर आयोजित की जाती थीं। सीनियर स्तर की परीक्षा भारत की लोअर प्राइमरी परीक्षा के समान थी। इनमें दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास से प्रकाशित बच्चों की पुस्तकें निर्धारित की गई थीं। गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित 'शिशु पाठ-9' भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित थी। इसके अतिरिक्त छात्रों को भारतीय संस्कृति का सामान्य ज्ञान कराया जाता था।

भारतीय महापुरुषों की जानकारी देना, धार्मिक ग्रंथों का परिचय कराना, हिंदू तिथि त्यौहारों के विषय में सूचनाएं देना इस पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण अंग था जिससे हिंदी प्रेम बढ़ता था। सन् 1957 तक श्री एडवर्ड जोजफ पिल्लई की देखरेख में उक्त हिंदी बोर्ड का कार्य सुचारू रूप से चलता रहा। तदुपरांत भारत सरकार की ओर से श्रीमती इन्दुताई केलकर की त्रिनीदाद में नियुक्ति हुई और उनकी देखरेख में सन् 1963 तक लगभग छः सौ पचास छात्रों ने उस बोर्ड की परीक्षाओं में सफलता प्राप्त की। श्रीमती केलकर के भारत लौटने पर बोर्ड का प्रबंध ढीला पड़ता गया और छात्रों की संख्या लगातार कम होती गई।

सन् 1966 के आसपास भारत की ओर से भारतीय उच्चायोग, त्रिनीदाद में श्री हरिशंकर आदेश की नियुक्ति हुई जिनके प्रयत्नों से पुनः हिंदी प्रचार प्रारंभ हुआ और तीन चार वर्षों में लगभग पचास पाठशालाएं खोली गईं। वहां हिंदी छात्रों की संख्या भी एक हजार के आसपास हो गई। सन् 1967 में हिंदी बोर्ड ने चार हिंदी सेमीनार आयोजित कराए थे। सन् 1969 में एक सांस्कृतिक शिविर का आयोजन किया था जिसमें अनेक संस्थाओं ने भाग लिया। बोर्ड की अंतिम परीक्षाएं सन् 1970 में हुईं जिनमें स्थानीय सूचना के अनुसार 251 हिंदी छात्र उत्तीर्ण हुए थे।

कालांतर में आंतरिक मतभेदों के कारण बोर्ड की गतिविधियाँ सीमित होने लगीं। कुछ सदस्य उसे हिंदी शिक्षा तथा परीक्षा तक ही सीमित रखना चाहते थे। इसके विपरीत कुछ लोग उसमें भारतीय नृत्य, नाटक, संगीत की शिक्षा को भी समाविष्ट कराना चाहते थे। धीरे-धीरे मतभेदों के बढ़ते जाने से प्रबंध समिति की बैठकें तक बुलाना कठिन हो गया और वह बोर्ड क्रियाशून्य होकर रह गया।

3. त्रिनीदाद में हिंदी प्रचार की दृष्टि से 'भारतीय विद्या संस्थान' का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस संस्थान की स्थापना नवंबर 1966 में हुई और उद्देश्य रखा गया—हिंदी, उर्दू, संस्कृत, भाषाओं का विकास करना, गायन वादन, नृत्य, नाटक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के पठन-पाठन की व्यवस्था करना; तथा भारतीय संस्कृति के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा तैयार करना।

इसके संस्थापक श्री हरिशंकर आदेश ने अत्यधिक परिश्रम करके संस्थान का विकास किया जिसके लिए वे स्मरणीय रहेंगे। केवल चार-पांच छात्रों से प्रारंभ होने वाले उस संस्थान की सदस्य-संख्या इस समय दो हजार से ऊपर है। देश भर में फैली हुई उसकी तीस से अधिक पाठशालाएं हिंदी शिक्षा के साथ साथ भारतीय नृत्य तथा संगीत की शिक्षा देती है। औरंग्वेज नामक स्थान में स्थित उसका मुख्यालय 'आदेश आश्रम' कहा जाता है। संस्थान के तीन कार्य विशेष रूप से सराहनीय हैं—प्रति वर्ष हिंदी की परीक्षाओं के लिए छात्रों की तैयारी कराना, प्रति वर्ष सांस्कृतिक शिविरों का आयोजन करना और प्रतिमास 'ज्योति' पत्रिका का प्रकाशन करना।

प्रारंभिक हिंदी .शिक्षा के लिए संस्थान सर्व प्रथम चौथे फार्म तक स्वयं आंतरिक परीक्षाएं आयोजित करता है। फिर वे छात्र लंदन विश्वविद्यालय की 'आरडिनेरी' तथा 'एडवांस' परीक्षाओं में बैठ सकते हैं। वहां से राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, वर्धा (नागपुर) की परीक्षाओं तथा भारतीय विद्या भवन, बंबई की परीक्षाओं के लिए भी तैयारी कराई जाती है। स्वयं आदेश जी द्वारा तैयार पाठ्यपुस्तकें पढ़ाई जाती हैं जिनमें 'हिंदी विवेक' के दो भाग मुख्य हैं। उनमें हिंदी वर्णमाला से लेकर वार्तालाप के लिए छोटे छोटे वाक्य दिए गए हैं, हिंदी शब्दों के अर्थ अंग्रेजी में बतलाए गए हैं।

संस्थान के सांस्कृतिक शिविर लघुकालीन एवं दीर्घकालीन दोनों प्रकार के होते हैं जिनकी अवधि एक सप्ताह से लेकर तीन सप्ताहों तक रखी जाती है। इन्हें नगरों से दूर किसी गांव या पहाड़ी पर आयोजित किया जाता है। प्रातः काल से लेकर रात्रि तक सारी दिनचर्या निश्चित कर दी जाती है और शिविर का प्रत्येक सदस्य उसका पालन करता है, शिविर सामान्य रूप से लघु कालीन अर्थात एक सप्ताह के होते हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष बच्चे-वयस्क सभी सम्मिलित होते हैं। इन सदस्यों की संख्या कभी एक सौ, डेढ़-सौ तक हो जाती है।

प्रातः पांच बजे से शिविर का कार्यक्रम आरंभ होता है। दिन भर आसन, प्राणायाम, पूजा, हवन, वेद पाठ से लेकर फिल्म शो, वाद विवाद प्रतियोगिता नाटक, संगीत आदि की शिक्षा दी जाती है। इसी के साथ बाहर से आमंत्रित अतिथियों के व्याख्यान कराते हैं। पूरा शिविर अपने प्रमुख नेता की देखरेख में संपन्न होता है। सन् 1989 की जुलाई में एक दिन इन पंक्तियों के लेखक को भी वहां आमंत्रित किया गया था।

संस्थान की पत्रिका 'ज्योति' का प्रथम अंक मार्च, 1968 को प्रकाशित हुआ था। इसके मुख पृष्ठ पर लिखा हुआ है—

आंधी पानी ज्योति अंधेरा। चलते रहना काम है तेरा।

और अपनी घोषणा के अनुसार वह आंधी पानी को चीरती हुई प्रकाशित होती रहती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। पत्रिका के विविध अंकों में आदेश जी की हिंदी कविताएं प्रकाशित हुई हैं। उनकी पत्नी श्रीमती निर्मला आदेश तथा अन्य अध्यापकों ने गीतों की राग रागिनी से पाठकों को परिचित कराया है। भारतीय संस्कृति की सूचनाएं दी गई हैं तथा संस्कृत शब्दावली का अर्थ समझाया गया.है।

सन् 1974 में 'ज्योति' पत्रिका का विशेषांक 'ट्रिनीडाड में प्रथम हिंदी साहित्य साधक' प्रकाशित हुआ था जिसके लगभग सत्तर लेखों से स्थानीय विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। इसमें पचास-साठ ऐसे स्थानीय भारतीयों (ट्रिनिडाडियन इंडियंस) का परिचय है जिन्होंने हिंदी सेवा के साथ समाज सेवा का सराहनीय कार्य किया था। सन् 1987 में उस पत्रिका का 'स्मरणांक' प्रकाशित हुआ जिसमें संस्थान की विगत सेवाओं का उल्लेख किया गया है। संपादक आदेश जी का लेख 'त्रिनीदाद में मेरा प्रथम दिन' पठनीय है जिससे वहां की सन् 1966 की वस्तु स्थिति का अच्छा परिचय मिलता है।

संस्थान के एक सदस्य ने कहा था कि करीब तीस वर्ष पूर्व यहां के भारतीय प्रवासी हिंदी में परस्पर अभिवाद करना भूल चुके थे। उन्हें भारतीय संगीत का नाम मात्र याद रह गया था कि कुछ ऐसा होता है। संस्थान के प्रयत्नों से उन लोगों में भारतीय रहन-सहन के प्रति आकर्षण बढ़ा। संस्थान ने बाहर से हारमोनियम, तबला, बांसुरी आदि मंगा कर उन लोगों को सिखाया। कत्थक नृत्य सीखने के लिए कुछ छात्रों को भारत भेजा। त्रिनीदाद के भारतीय लोग परस्पर मिलते समय 'सीताराम' कह कर अभिवादन करते हैं। किंतु संस्थान के प्रभाव से 'नमस्ते' शब्द व्यापक हो चला है। भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार के लिए यह संस्था विशेष रूप से सक्रिय रही है और हिंदी की शिक्षा इसी का अंग है।

4. सन् 1986 में वहां एक नई संस्था 'हिंदी निधि' (हिंदी फाउंडेशन) की विधिवत् स्थापना हुई जिसकी कार्य परिषद् में साहित्यकारों, समाज सेवियों और अध्यापकों के अतिरिक्त प्रमुख राजनेताओं को भी सम्मिलित किया गया है। पूरी संस्था के क्रिया कलापों को तीन दिशाओं में नियोजित किया गया है—अर्थव्यवस्था, जनसंपर्क व्यवस्था, और अकादमिक व्यवस्था। इन तीनों क्रिया कलापों को पूरा करने के लिए तीन अलग अलग समितियां बनाई गई हैं। सोलह वर्ष से ऊपर का कोई भी व्यक्ति उस संस्था का सदस्य बन सकता है।

'हिंदी निधि' का उद्देश्य पूरे त्रिनीदाद-टुबैगो में हिंदी का अध्यापन तथा विकास करना है और इसका मुख्यालय 'तुनापुना' नामक स्थान में रखा गया है। काम कराने की सुविधा को ध्यान में रख कर चार क्षेत्रीय कार्यालय बनाए गए हैं। जहां शनिवार को हिंदी कक्षाएं चलाई जाती हैं। सन् 1986 में उसकी दो पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं। पहली पत्रिका हिंदी निधि विशेषांक में संस्था का इतिहास देकर उसकी योजनाओं का इस प्रकार उल्लेख किया गया है:

1. हिंदी को किसी स्तर पर अनिवार्य विषय नहीं बनाया जाए। स्थानीय शिक्षा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यवस्था के अनुसार सभी स्तरों पर उसका अध्ययन किया जा सकता है।

2. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 'ओ' तथा 'ए' स्तरों तक हिंदी का अध्यापन करने में विलंब नहीं किया जाए।

3. हिंदी की उपेक्षा के दुष्परिणाम हुए हैं। हिंदी के प्रति रुचि जगाने के लिए विशेष प्रयत्न किया जाए।

4. जिन प्राथमिक पाठशालाओं (प्राइमरी स्कूल) में हिंदी पढ़ाने की मांग हो, अथवा जो इसे स्वेच्छा से पढ़ाना चाहें, उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित किया जाए।

5. हिंदी अध्यापकों की समस्या नहीं है। कुछ स्कूलों में अध्यापक हिंदी पढ़ा सकते हैं, कुछ स्कूलों में वे प्रशिक्षित किए जा सकते हैं।

6. विभिन्न कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने होंगे तथा पुस्तकों में स्थानीय आवश्यकताओं का ध्यान रखना होगा।

7. प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में हिंदी प्रारंभ करने के लिए शासन से विशेष अनुरोध किया जाए क्योंकि इसकी प्रगति शासकीय नीति पर निर्भर है।

8. स्थानीय विश्वविद्यालय में भी हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि प्रतिवर्ष त्रिनीदाद के छात्र लंदन विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'ओ' तथा 'ए' स्तर की परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं।

उक्त संस्था की ओर से प्रकाशित दूसरी पत्रिका 'हिंदी परिचय' है जो प्रकारांतर से एक पाठ्य पुस्तिका है। अंग्रेजी-हिंदी में मुद्रित इसके सोलह पाठों में देवनागरी लिपि, हिंदी के स्वर और व्यंजन, लेखनविधि, संयुक्ताक्षर, हिंदी वाक्य, सामान्य प्रयोग आदि का सोदाहरण परिचय कराया गया है। उस संस्था का सर्वोपरि महत्व यह माना जा सकता है कि उसकी संस्तुति पर स्थानीय प्रशासन ने हिंदी पढ़ाने की समस्या पर गंभीर रूप से विचार किया और अपने शिक्षा विभाग को तत्संबंधी निर्देश दिए।

गत वर्ष 1992 में उक्त संस्था ने एक 'अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन' आयोजित करके त्रिनीदाद में एक अनूठा आयोजन किया जिसका उद्घाटन वहां के प्रधानमंत्री ने किया था। उन्होंने कहा कि वे अपने वायदे के अनुसार हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना चाहते हैं। सम्मेलन में यूरोप, अमेरिका के अनेक विद्वानों ने हिंदी के विकास, उसकी व्यापक भूमिका, उसके रचनाकारों की चेतना जैसे विषयों पर अपने शोधपूर्ण आलेखों द्वारा प्रकाश डाला। उसमें सम्मिलित होने के लिए पांच सदस्यों का एक भारतीय प्रतिनिधि मंडल भी गया था।

अन्य संस्थाओं का सेवा कार्य

इस संदर्भ में हिंदू मंदिरों तथा प्रचारकों के अतिरिक्त (1) स्थानीय रेडियो, रचनात्मक कार्यों का विवरण उल्लेखनीय है। चालीस पचास मंदिरों में प्रति रविवार को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी भजन मंडलियां एकत्र होकर सूरदास, मीरा बाई, और कबीर के भजन गाती हैं और विशेष अवसरों पर रामायण पाठ, भागवत पाठ कराया जाता है जिसकी व्याख्या अंग्रेजी में की जाती है। नई पीढ़ी के लोग यह कार्य हिंदी में करना चाहते हैं और बाहर जाकर हिंदी सीखते हैं।

1. इस दृष्टि से त्रिनीदाद रेडियो की सराहना की जाएगी जहां प्रातः काल पांच बजे से हिंदी भजन प्रसारित होने लगते हैं और बीच बीच में रुक कर रात्रि दस बजे तक सुनाए जाते हैं। कभी इतने पुराने फिल्मी गीत 'सिक्सटेन' नामक रेडियो से प्रसारित होते हैं कि अब वे शायद भारत में भी नहीं मिलेंगे। इन गीतों के द्वारा त्रिनीदाद के निवासी कुंदन लाल सहगल, खुर्शीद बेगम, हेमंत कुमार, पंकज मलिक के साथ-साथ अनूप जलोटा, हरि ओम शरण जैसे भजन गायकों से खूब परिचित हो गए हैं। और अब तो तलत अजीज, गुलाम अली, जगजीत सिंह जैसे लोकप्रिय गायकों की अनेक गजलें वहां सुनाई देती हैं। हिंदी कक्षाओं में वयस्क छात्र इन सिनेमा गायकों के विषय में पर्याप्त जानकारी रखते हैं। वे प्रायः इन गीतों का अर्थ जानना चाहते हैं। रेडियो ने वहां हिंदी का नाम तो जीवित रखा ही, उसे सीखने के लिए असंख्य लोगों को प्रेरित किया है, इसमें कोई संदेह नहीं।

2. स्थानीय टेलीविजन ने, जिसे बोलचाल में टी.वी. कहते हैं, फिल्म के माध्यम से हिंदी को लोकप्रिय बनाया है। इसके दो नियमित कार्यक्रम हिंदी के संदर्भ में प्रमुख हैं। एक तो प्रति इतवार को दिन में कोई हिंदी फिल्म दिखाई जाती है। दशहरा, दीपावली, होली जैसे अवसरों पर धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन उसकी सामयिक रुचि का प्रतीक है। परिवार के सभी सदस्य इन हिंदी फिल्मों को देखते हैं और कभी इनकी प्रतिलिपि तैयार कर रख लेते हैं। दूसरा कार्यक्रम 'इंडियन वेराइटी' नाम से दोपहर में फिल्म के पूर्व आधे घंटे तक प्रसारित किया जाता है। जिसमें स्थानीय गायक हिंदी गीत-गजल प्रस्तुत करते हैं।

टेलीविजन से प्रायः शनिवार की शाम एक और कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है जो एक प्रकार का फीचर प्रोग्राम होता है। उसे 'मस्ताना बहार' कहते हैं। त्रिनीदाद में कैलिप्सो गायन के समानांतर भारतीय समुदाय ने अपने गायकों की प्रतिस्पर्धाएं करानी प्रारंभ की हैं जिनसे स्थानीय प्रतिभाओं को सामने आने का अवसर मिलता है। ये स्पर्धाएं प्रिंसेस टाउन, सन फरनान्दो, सिपारिया, शागुआनास जैसे भारतीय बहुल स्थानों पर यथा-समय आयोजित कराई जाती हैं जिनके चुने हुए अंशों का प्रसारण 'मस्ताना बहार' में किया जाता है। सुंदर पोपो, जमीर हुसैन, हनीफ मोहम्मद, हन्ना राम रतन, रोजी स्यू जैसे गायकों ने अपने गीतों से यहां हिंदी को लोकप्रिय बनाया है।

गायकों के गीतों, भजनों की शैली पुराने ढंग की रहती है जिसका एक उदाहरण लिया जा सकता है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सदगुरु मानुस मन बौराना।
बाहर से इक बकरा लाए ताको खिलावे दाना।
मांस काटि के भूमि गिरावे छिप कर उसका खाना।।
घर में इकठा मानुस मर गए बाहिर को ले जाना।
गुरु परयास से मास करावे सब मिलि तोरे जाना।।
बाहिर से इक मछली लाए तेल नौंन में साना।
भूंज भांज के भोजन करावे सब मिली खावे खाना।।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, ये पद है निरवाना।
जो इस पद के अरथ लगावे सोई संत सयाना।।"

त्रिनीदाद के बूढ़े बुजुर्ग जो सत्तर अस्सी वर्ष के हैं, वे उक्त प्रकार के भजनों की हिंदी को ही अपने देश की भाषा समझते हैं। खड़ी बोली हिंदी की वर्तमान समस्याएं वे नहीं जानते। हिंदी प्रचार प्रसार की समस्याएं उनकी युवा पीढ़ी से अधिक संबंध रखती हैं जो भारत के साथ सांस्कृतिक रूप में जुड़ना चाहते हैं।

3. व्यक्ति विशेष में पं. शंभुनाथ कपिल देव तथा हंस हनुमान सिंह की हिंदी सेवाएं सराहनीय हैं। शंभूनाथ जी सेंट जेम्स के हिंदू मंदिर में आजीवन हिंदी कक्षाएं चलाते रहे और प्रति सप्ताह रामायण पाठ के द्वारा हिंदी प्रेमियों का एक वर्ग तैयार करते रहे। रामायण के एकाधिक प्रसंगों की वे हिंदी में ही अच्छी व्याख्या करते थे उनके पुस्तकालय में हिंदू साधु संतों की छोटी-बड़ी पुस्तिकाएं आज भी हिंदी प्रेमियों के लिए उपयोगी हैं।

हंस हनुमान सिंह वहां प्रसिद्ध समाज सेवी तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं और अपने आप में एक संस्था हैं। सन् 1971 में उन्होंने भारत के शिक्षा मंत्रालय द्वारा तैयार हिंदी लिंग्वा फोन रिकार्ड्स का संपूर्ण प्रसारण किया था। फिर प्रसिद्ध 'सिक्सटेन' रेडियो से उन्होंने हिंदी व्याख्यानों, विज्ञापनों की प्रचार व्यवस्था की थी। वे वहां के प्रथम भारतीय उद्घोषक (रेडियो एनाउंसर) हैं तथा अनेक वर्षों से अपनी संस्था 'नेशनल काउंसिल ऑफ इडियन कल्चर' द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार करते हैं। प्रतिवर्ष उनकी प्रेरणा से अनेक व्यक्ति भारत भ्रमण के लिए आते हैं।

हिंदी के समर्थन में उन्होंने अंग्रेजी में एकाधिक लेख लिखे हैं। हिंदी को वहां कार्यान्वित कैसे करें? इस विषय पर बोलते हुए उन्होंने तीन सुझाव दिए थे—(1) स्थानीय शिक्षा विभाग उसके प्रचार-प्रसार हेतु स्वतंत्र रूप से प्रबंध करे, (2) हिंदी अध्यापकों को भारत भेजने के लिए छात्र वृत्तियां दी जाएं, और (3) स्थानीय विश्वविद्यालय में हिंदी प्रारंभ करने के लिए सुविधाएं दी जाएं। कहना न होगा कि इस समय त्रिनीदाद में हिंदी संबंधी इन तीनों दिशाओं में कार्य हो रहा है।

4. उक्त सभी प्रकार की योजनाओं में स्थानीय भारतीय उच्चायोग (हाई-कमीशन)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का योगदान किसी न किसी रूप में रहा है। वह आयोग विगत चालीस वर्षों से वहां भारतीय संस्कृति एवं हिंदी के लिए कार्य करता रहा है। उसके उच्चायुक्त श्री आनन्द मोहन सहाय की ऊपर चर्चा हो चुकी है जिनके प्रयत्नों से हिंदी बोर्ड की स्थापना हुई थी। भारतीय प्रतिनिधियों के रूप में जाकर वहां श्री दीक्षित, श्री जयदेव, श्रीमती केलकर आदि ने आयोग में हिंदी पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएं मंगाई और स्थानीय भारतीयों को हिंदी पढ़ाने पर जोर दिया।

सन् 1965-66 में उच्चायुक्त श्री मुनी लाल ने हिंदी सिखाने के साथ संगीत और नाटक के प्रचार पर भी ध्यान दिया। तदुपरांत श्री हरिशंकर आदेश, डा. हरगुलाल, डा. जगदीश श्रीवास्तव, श्री गिरीश पाण्डेय आदि प्रतिनिधियों ने संस्कृत के साथ हिंदी पढ़ाने का कार्य संभाला। स्थानीय वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन (इंडियन स्टडीज) के लिए स्वतंत्र पद निर्मित कराया गया जिसके लिए भारत से एक प्रोफेसर की नियुक्ति की जाती है।

सन् 1985 से भारतीय उच्चायोग में सांध्यकालीन हिंदी कक्षाएं प्रारंभ की गईं जिनमें लगभग एक सौ व्यक्ति हिंदी पढ़ने के लिए आते थे। 'भारत समाचार' में जो कि 'इंडिया न्यूज' नाम से उच्चायोग की मासिक पत्रिका है, कुछ हिंदी पाठ धारावाहिक रूप से प्रकाशित किए गए थे जिन्हें 'हिंदी पाठमाला' नाम दिया गया था। वार्तालाप शैली में त्यौहारों, यात्रा वृत्तांतों, भारतीय ग्रंथों तथा मंदिरों पर रोचक पाठ तैयार किए गए थे जिन्हें हिंदी भजनों गीतों और गजलों के साथ कक्षाओं में पढ़ाया जाता था।

हिंदी पढ़ने वाले छात्रों में नगर के वकील, व्यापारी, कर्मचारी, अधिकारी, मैनेजर, पुस्तक विक्रेता, दूकानदार, विद्यार्थी तथा अध्यापक मिले जुले रहते थे और एक सप्ताह में सायंकाल दो बार कक्षाएं होती थी। संयोजकों को अनुभव हुआ कि हिंदी कक्षा में आने वाले छात्र प्रारंभ में अत्यधिक उत्साह दिखाते हैं, फिर उनकी संख्या घटती जाती है। एक बार दो सौ के लगभग आवेदन पत्र आए, किंतु कक्षा में चालीस-पचास से अधिक छात्र उपस्थित नहीं रहे। उच्चायोग द्वारा संचालित हिंदी कक्षाएं कभी बंद कर दी जाती हैं, कभी पुनः प्रारंभ कर दी जाती हैं। इधर इन्हें सुनियोजित किया गया है।

इसी के साथ भारतीय उच्चायोग ने भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दो तीन योजनाएं क्रियान्वित की हैं। एक तो उसके माध्यम से प्रति वर्ष भारत जाकर हिंदी, संगीत, नृत्य आदि का अध्ययन करने के लिए छात्र वृत्तियां प्रदान की जाती हैं। हिंदी के लिए चार छात्र वृत्तियां हैं जिनके लिए अनेक छात्र अपने शिक्षा मंत्रालय के द्वारा आवेदन करते हैं। त्रिनीदाद का शिक्षा विभाग इन छात्रों का चयन करता है। अभी तक लगभग पच्चीस छात्र इस योजना से लाभान्वित हुए होंगे।

दूसरी योजना उच्चायोग के हिंदी पुस्तकालय की है जहां पुराने और नए लेखकों की प्रतिनिधि रचनाएं रखी गई हैं। प्रति वर्ष नई पुस्तकें मंगाई जाती हैं जिनमें बालकों के लिए समुचित सामग्री रहती है। प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाएं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जैसे 'धर्मयुग', 'चंदामामा', 'कादंबिनी', 'नवनीत' आती रहती हैं जिन्हें फिर हिंदी पाठकों को भेज दिया जाता है।

5. 'नीहर्स्ट' त्रिनीदाद प्रशासन के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान का संक्षिप्त रूपांतर है जिसे पूर्ण रूप से नेशनल इन्स्टीटयूट ऑफ हायर एजुकेशन, रिसर्च, साइंस एण्ड टेक्नालॉजी' कहते हैं। इस संस्थान की एक शाखा 'स्कूल आव लैंग्वेजेज' त्रिनीदाद में विदेशी भाषाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है। वहां फ्रेंच, जर्मन तथा स्पेनी भाषाओं की प्रयोजन मूलक शिक्षा दी जाती है जिसके लिए स्कूल के अपने प्रशिक्षित अध्यापक कार्य करते हैं। सन् 1987 में निश्चित किया गया कि हिंदी के वास्तविक प्रचार-प्रसार में सफलता प्राप्त करने के लिए स्कूलों में प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता पड़ेगी। अतः शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्य पहले होना चाहिए।

इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु 'नीहर्स्ट' की ओर से एक विशेष कार्यक्रम 'हिंदी टीचर्स ट्रेनिंग प्रोग्राम' आरंभ किया गया और त्रिनीदाद सरकार के निवेदन पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली की ओर से इन पंक्तियों के लेखक को वहां नियुक्त कर भेजा गया। इस लेखक ने तीन वर्षों तक (1987-1990) वहां रह कर पचास से अधिक ऐसे अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जो विभिन्न माध्यमिक तथा प्राइमरी स्कूलों में अध्यापक थे। इनमें अधिकांश अध्यापक हिंदी के प्रारंभिक रूप से परिचित थे, अतः भाषा शिक्षण के सिद्धांत समझना उनके लिए कठिन नहीं था। मूलतः यह कार्य हिंदी शिक्षण का न होकर हिंदी प्रशिक्षण का था।

यह प्रशिक्षण तीन चरणों में पूरा किया गया। पहले चरण में (1988) हिंदी की उच्चारण संबंधी विशेषताओं को विकसित करने पर जोर दिया गया तथा अध्यापकों को देवनागरी लिपि के ठीक वाचन तथा लेखन कौशलों से भी परिचित कराया गया। दूसरे चरण में (1989) हिंदी बोलने की कुशलता पर ध्यान रखते हुए वाचन तथा लेखन की शुद्धता पर जोर दिया गया जिसके लिए सरल हिंदी पाठों की सहायता ली गई। तीसरे लेखकों से अध्यापकों को परिचित कराया गया। यह अपने प्रकार का अलग और उस देश की आवश्यकता के अनुसार नया हिंदी पाठ्यक्रम था।

इसके अतिरिक्त 'नीहर्स्ट' ने भारतीय प्रोफेसर की सहायता से सामान्य नागरिकों के लिए भी हिंदी कक्षाएं प्रारंभ कीं जिनका उद्देश्य हिंदी बोलना सीखना था। इन कक्षाओं में सम्मिलित होकर वे लोग भारतीय संस्कृति के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते थे। भारतीय विद्वानों के व्याख्यान सुन सकते थे और हिंदी समाचार पत्र, विज्ञापन आदि पढ़ सकते थे। इन कक्षाओं से भारत के दर्शनीय स्थानों के विषय में भी बतलाया जाता था जिसे छात्र रुचि पूर्वक सुनते थे।

'नीहर्स्ट' ने हिंदी के लिए एक और कार्य किया है। वहां प्रति वर्ष एक फिल्म समारोह आयोजित किया जाता है जिसमें श्रेष्ठ जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी, इटालियन फिल्में दिखाई जाती हैं। इनमें हिंदी की किसी एक श्रेष्ठ फिल्म को भी स्थान दिया जाता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है जिसके लिए दूर दूर से लोग त्रिनीदाद की राजधानी पोर्टऑफ स्पेन में आते हैं।

सन् 1988 से 'यू.वी.' अर्थात् यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टइंडीज में स्नातक स्तर पर हिंदी पढ़ाने की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण घटना है जिसका हिंदी शिक्षण पर प्रभाव पड़ेगा। पहले वहां केवल भारतीय अध्ययन के लिए प्रोफेसर का एक पद था। अब हिंदी प्रोफेसर के लिए एक नया पद स्वीकृत हुआ जिससे हिंदी के विकास कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी। सितंबर, 1989 में वहां नियुक्त हिंदी प्रोफेसर ने अपना कार्य भार संभाल लिया था और उस समय बी.ए. प्रथम वर्ष तथा द्वितीय वर्ष में मिलाकर आठ हिंदी छात्र हो गए थे।

इस प्रकार त्रिनीदाद में हिंदी अध्ययन की प्रगति होती रही है। इसका प्रारंभ प्रौढ़ ग्रामीणों की शिक्षा-दीक्षा के रूप में हुआ। फिर मंदिरों पाठशालाओं की धार्मिक शिक्षाओं के रूप में इसका प्रसार हुआ। फिर इसे सीखने के लिए परीक्षाएं ली जाने लगीं और भारतीय संस्कृति के अंतर्गत इसके विकास पर ध्यान दिया गया। फिर स्वयं स्थानीय सरकार इसके प्रचार-प्रसार हेतु निश्चित योजनाएं तैयार करने लगी जिसके फलस्वरूप स्थानीय विश्वविद्यालय में हिंदी पाठ्यक्रम ने स्थान प्राप्त कर लिया। त्रिनीदाद के शैक्षणिक जगत् में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल दिखाई पड़ता है।

हिंदी प्रचार-प्रसार की समस्याएं

इस समय त्रिनीदाद में हिंदी प्रचार और प्रसार .की समस्याएं मुख्यतः दो प्रकार की हैं। कुछ समस्याएं तो उसके व्यापक संदर्भों से जुड़ी हैं और कुछ उसकी स्थानीय आवश्यकताओं से संबंध रखती हैं। विदेशी भाषा के रूप में हिंदी किस प्रकार से पढ़ाई जाए—यह इसका व्यापक संदर्भ है। और कैरीबियन द्वीप समूह में, विशेषकर त्रिनीदाद में हिंदी किस प्रकार पढ़ाई जाए—यह इसकी स्थानीय समस्या है।

विदेशों में हिंदी पढ़ाते समय एक ओर उन लोगों से भेंट होती है जो बिलकुल हिंदी नहीं जानते। दूसरी ओर वे लोग मिलते हैं जो उसे थोड़ा बोल-समझ लेते हैं, और उसे संपर्क भाषा बनाना चाहते हैं। त्रिनीदाद के निवासी दोनों प्रकार के हैं। पुराने बड़े बूढ़े लोग हिंदी से अपरिचित नहीं हैं, किंतु उनमें सीखने का उत्साह कम है। नव युवकों के लिए हिंदी किसी प्रकार चली आ रही है, किंतु उन्हें पढ़ाने की समुचित व्यवस्था नहीं है। यही स्थिति भारतीय समुदाय की है। अन्य समुदायों के लोग हिंदी के प्रति आकर्षित तो होते हैं; फिर भी दूर रहते हैं।

वहां मुख्यतः हिंदी में रुचि लेने वाले लोग तीन प्रकार के हैं—(1) पुरानी पीढ़ी के लोग, जो अपने घर परिवार में यदा कदा बोलचाल की हिंदी बोलते हैं। उनकी सामान्य भाषा अंग्रेजी ही है। (2) नवयुवकों का प्रौढ़ वर्ग, जो हिंदी पूर्णतः भूल चुका है। अब उसे सीखने में कोई लाभ नहीं समझता, (3) युवकों का वह वर्ग, जो हिंदी नहीं जानते हुए भी उसका महत्व समझता है और अवसर मिलने पर सीखना चाहता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, यह वर्ग अन्य लोगों की भांति हिंदी के प्रति उदासीन नहीं है।

हिंदी अध्यापन की समस्या एक प्रकार से इन्हीं तीसरे प्रकार के युवकों से जुड़ी है जो एकाधिक प्रयोजनों से हिंदी सीखना चाहते हैं। यदि हिंदी अध्यापन की आगामी योजना में इन प्रयोजनों का ध्यान नहीं रखा गया तो अधिक सफलता नहीं मिलेगी। नव युवकों में कुछ तो भारतीय नृत्य, संगीत सीखने के लिए हिंदी पढ़ना चाहते हैं। कुछ युवक हिंदी फिल्में समझने के लिए हिंदी सीखना चाहते हैं। कुछ भविष्य में भारत जाने के लिए हिंदी सीखना चाहते हैं। कुछ हिंदी के द्वारा पंडिताई करना चाहते हैं। कुछ इसलिए हिंदी से संपर्क बनाए रखनना चाहते हैं कि उन्हें अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावित करना है। उन्हें लगता है कि इस कारण हिंदी कक्षाएं बड़ी रोचक होती हैं।

त्रिनीदाद में ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जो हिंदी को केवल भाषा के रूप में अर्थात् विचार विनिमय के माध्यम रूप में पढ़ना चाहते हों। संभव है, भाषा के इस पक्ष की उन्हें कोई जानकारी न हो। आगे चल कर यदि उन्हें इसका महत्व बतलाया जाए तो वे हिंदी के प्रति आकर्षित हो सकते हैं। अमेरिका अथवा यूरोपीय देशों की स्थिति भिन्न है।

तात्पर्य यह कि त्रिनीदाद में हिंदी प्रचार करते समय उसके सांस्कृतिक या धार्मिक महत्व का, उसके विशाल साहित्य का, उसके सुदीर्घ इतिहास का तो ध्यान रखा गया है किंतु अध्येता की दृष्टि से उसकी उपयोगिता पर विचार नहीं किया गया है। अन्य भाषाओं के साथ उसकी विशेषताओं का तुलनात्मक निरुपण भी नहीं हुआ है। मूल प्रश्न है कि वहां का छात्र या व्यक्ति हिंदी क्यों पढ़े? वह उसमें अपना समय और धन क्यों खर्च करे? उसी की आवश्यकता को ध्यान में रख कर कोई शिक्षण योजना सफल हो सकती है। इसलिए वहां हिंदी शिक्षण प्रयोजन मूलक होना चाहिए। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जर्मनी में हिंदी एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. तिलकराज चोपड़ा

जर्मनी भारतीय विद्या का गढ़ माना जाता रहा है। 'भारतीय विद्या' या इंडॉलॉजी अर्थात् भारत की समग्र संस्कृति—भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास आदि—का गंभीर अनुशीलन जर्मनी में उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से होने लगा था। 1818 में बॉन विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्राध्यापन की समुचित व्यवस्था की गई। और इस प्रकार से बॉन जर्मनी में भारतीय विद्या का सबसे पहला अधिष्ठान बना। 'बनारस अम गांगेस' अर्थात् गंगातट पर स्थित वाराणसी के वजन पर बॉन को 'बनारस अम राईन' कहा जाने लगा। अभिप्राय यह था कि जैसे पवित्र गंगा के तट पर बसा बनारस संस्कृत विद्या का केंद्र है वैसे ही अब 'जर्मनी की गंगा राईन' के तट पर बसा बॉन होगा। संस्कृत के प्रथम आचार्य थे आउगुस्ट विल्हेल्म फॉन श्लेगल, जिनका अपने युग के जर्मन एवं यूरोपीय साहित्य-जगत में विशिष्ट स्थान है। बॉन के बाद बर्लिन, कोएनिग्सबर्ग, गोएटिंगन, कील आदि प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में एक के बाद एक भारतीय संस्थान खुलने लगे। आज भी देखा जाता है कि जर्मनी के प्राचीन विश्वविद्यालयों में यदि पूर्ण भारतीय विद्या विभाग न भी हो तो कम से कम संस्कृत भाषा के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था अवश्य होगी। बीसवीं शताब्दी में संस्थापित नए विश्वविद्यालयों में भी भारतीय विद्या विभाग मिल जाएंगे पर सब में नहीं।

विश्वविद्यालय के भारतीय विद्या विभागों में केवल संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन ही नहीं होता था। लौकिक संस्कृत के अतिरिक्त वैदिक संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के विभिन्न रूपों का अनुशीलन भी गत शताब्दी में ही आरंभ हो गया था। अपभ्रंश के अध्ययन के सिलसिले में काफी पहले जर्मन विद्वानों का ध्यान गुजराती की ओर गया, पर बहुत समय तक अध्ययन-विषय के रूप में हिंदी ध्यान आकर्षित न कर सकी।

जर्मन भाषा भाषी विद्वानों के अथक परिश्रम ने हमें विशाल संस्कृत-जर्मन शब्दकोश दिया, जिसका अभी हाल में भारत में पुनर्मुद्रण हुआ है। पालि भाषा का प्रामाणिक व्याकरण एवं उसके वाङ्मय का ऐतिहासिक विवरण विल्हेल्म गाइगर ने जर्मन भाषा में प्रस्तुत किया। प्राकृत भाषाओं का सुविस्तीर्ण व्याकरण रिखर्ड पिशेल के परिश्रम का फल है। जर्मन भाषा में विरचित इन परिनिष्ठित शोधग्रंथों के अंग्रेजी भाषानुवाद अब तक छप चुके हैं।

अपभ्रंश वाङ्मय की खोज, दुर्लभ अपभ्रंश ग्रंथों के उद्धार एवं संपादन-प्रकाशन में तो जर्मनी का अग्रणी· योगदान है। हेर्मन याकोबी, वाल्टर शूब्रिंग, लुद्विग अल्सडोर्फ प्रभृति विद्वानों ने इस क्षेत्र का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार हम पाते हैं कि प्राचीन तथा मध्य भारतीय आर्य भाषाओं के अध्ययन-अनुसंधान में जर्मन विद्वत्समाज का चिरस्मरणीय योगदान है। परंतु किन्हीं कारणों से प्रथम महायुद्ध तथा उसके बाद तक नव्य आर्य भाषाओं की ओर जर्मनों का ध्यान नहीं गया; वैसे यह बात न्यूनाधिक रूप से दूसरे पाश्चात्य देशों पर भी लागू होती है। हिंदी के कतिपय विद्वानों के मतानुसार अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' कहना अधिक समीचीन होगा। इस मत को स्वीकार करने पर 'पुरानी हिंदी' के परिशीलन में जर्मनी के विद्वानों का योगदान अवश्य निर्णयकारी माना जाएगा।

उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों की बोली होने के साथ-साथ हिंदी अखिल भारत, बल्कि भारत उपमहाद्वीप की संपर्क भाषा भी है। पिछली कुछ शताब्दियों से यह भारत का व्यावहारिक, व्यापारिक एवं संपर्क माध्यम रही है। यह बात विदेशियों से छिपी नहीं थी। प्रथम महायुद्ध के उपरांत जर्मनी में हिंदी भाषा का शिक्षण मात्र संप्रेषण-माध्यम के रूप में प्रारंभ हुआ। इसके लिए तब विश्वविद्यालयों में किसी नए विभाग अथवा संस्थान की व्यवस्था नहीं की गई। पहले से ही विद्यमान भारतीय विद्या विभागों में हिंदी भाषा-शिक्षण का कामचलाऊ प्रबंध कर दिया गया। बर्लिन, हैम्बर्ग, बॉन तथा दूसरे नगरों के विश्वविद्यालयों में ऐसे तदर्थ प्रबंध किए गए।

प्रथम महायुद्ध में यूरोप के दो विशाल साम्राज्य एक दूसरे से टक्कर ले रहे थे। एक ओर विश्वव्यापी ब्रिटिश साम्राज्य था और दूसरी ओर नवोदित जर्मन साम्राज्य।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारत तब ब्रिटिश साम्राज्य का अंग था। अपने देश की स्वाधीनता के लिए और इसलिए ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ने वाले भारतीयों को जर्मन सरकार का नैतिक ही नहीं भौतिक समर्थन भी प्राप्त था। प्रसिद्ध क्रांतिकारी और कलम के सिपाही लाला हरदयाल उन दिनों जर्मनी में थे और जर्मन सरकार के वृत्तिभोगी थे। कालांतर में यद्यपि उन्होंने 'तुर्की और जर्मनी में चौवालीस मास' पुस्तक लिखकर जर्मनों की खासी निंदा-भर्त्सना की, पर जैसा कि पुस्तक की समीक्षा करते हुए प्रेमचंद ने भांप लिया था, लाला हरदयाल ऐसा करके अंग्रेजों को अपनी नेकनीयती का सबूत देना चाहते थे, इस आशा में कि जर्मनों की निंदा से खुश होकर ब्रिटिश शासन कदाचित् उन्हें क्षमादान देने को तैयार हो जाए।

जर्मन भाषा माध्यम की उपयुक्त पाठ्य सामग्री के अभाव में हरेक प्राध्यापक स्वयं ही उपलब्ध अंग्रेजी, हिंदी पुस्तकों की सहायता से पाठयक्रम आदि तैयार कर लेता था। हिंदी की इन कक्षाओं में कौन लोग भाग लेते थे इसका अनुमान ही किया जा सकता है। लगता है भारतीय विद्या अर्थात् संस्कृत-पालि-प्राकृत के बहुत कम छात्र हिंदी सीखने में रुचि दिखाते थे। यदा कदा इंडॉलॉजी के विद्वान् हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कक्षा में बैठ जाया करते होंगे, जैसा कि प्रसिद्ध जर्मन संस्कृतज्ञ हेल्मुत फॉन ग्लाजेनप ने अपनी आत्मकथा में संकेत किया है। प्रो. हेल्मुत फॉन ग्लाजेनप संस्कृत तथा दूसरी प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे। जैन, बौद्ध तथा हिंदू धर्मों का उन्होंने गहन अनुशीलन किया था और इन पर जर्मन भाषा में विद्वतापूर्ण ग्रंथ भी लिखे थे जिनकी उपादेयता आज भी स्वीकार की जाती है। 'लिटराटूरन इंडियंस' (भारत के साहित्य) नाम की उनकी पुस्तक में हिंदी साहित्य की ऐतिहासिक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उनकी जैन धर्म पर लिखी गई पुस्तक का बहुत पहले ही गुजराती भाषा में अनुवाद हो गया था। हेल्मुत फॉन ग्लाजेनप के पिता ओटो फॉन ग्लाजेनप जर्मन भाषा के कवि थे। पिता-पुत्र ने मिलकर प्राचीन भारतीय भाषाओं से ही नहीं अपितु नव्य भाषाओं से भी अच्छे पठनीय अनुवाद किए हैं। अपनी आत्मकथा में उन्होंने उल्लेख किया है कि कैसे लाला हरदयाल से बिहारी-सतसई के दोहों का मर्म समझने में उन्होंने घंटों व्यतीत किए। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य तथा बिहारी के दोहों का उन्होंने बड़ा भावपूर्ण भाषांतर किया है। फॉन ग्लाजेनप के संचालन में ही एक भारतीय छात्र ने सूरदास के काव्य पर डाक्ट्रेट की थीसिस तैयार की थी। इसी प्रकार उस पीढ़ी के कतिपय अन्य विद्वानों ने भी अपने भारतीय विद्या के ज्ञान को अनुपूरित करने के लिए थोड़ी-बहुत हिंदी सीखी। परंतु हिंदी—अथवा अन्य कोई नव्य आर्य भाषा—स्वतंत्र विषय के रूप में तब तक स्वीकृत नहीं हो पाई थी।

द्वितीय महायुद्ध में फिर इंग्लैंड और जर्मनी मोर्चा बांधे एक दूसरे से दो चार हो रहे थे। जर्मनी में रह रहे ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ने को तैयार भारतीयों की एक सैनिक टुकड़ी 'इंडियन लीजन' नाम से संगठित की गई। इन स्वयंसेवी सैनिकों से संपर्क

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रखने के लिए जिन जर्मन अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी उनको हिंदी सिखाने के लिए कामचलाऊ शिक्षण-सामग्री तैयार कराई गई। दो प्राध्यापकों, प्रो. श्पीस और प्रो. बानर्ट, ने मिलकर जो शिक्षक तैयार किया उसमें पठन-सामग्री के नाम पर अशिक्षित-अर्धशिक्षित हिंदुस्तानी सिपाहियों की निजी चिट्ठियों का संकलन किया गया है। ध्यान देने की बात है कि श्पीस और बानर्ट की इस पुस्तक के शीर्षक में हिंदी नहीं 'हिंदुस्तानी' अभिधान का प्रयोग हुआ है।

महायुद्ध में जर्मनी परास्त हुआ। विजयी मित्र राष्ट्रों ने विजित जर्मनी को और राजधानी बर्लिन को चार-चार हिस्सों में बांटा। 1949 में सीमित स्वायत्तता-प्राप्त अमरीकी ब्रिटिश और फ्रेंच अधिकृत भागों ने मिलकर संघीय जर्मन गणराज्य अथवा पश्चिम जर्मनी राज्य की स्थापना की। उधर पूर्वी जर्मनी के सोवियत अधिकृत भाग में सोवियत प्रशासकों की देखरेख में साम्यवादी सरकार बनी (जो 1989 में जर्मन एकीकरण तक बनी रही)। इस प्रकार से दो जर्मन राज्यों की स्थापना हुई। पश्चिम जर्मनी न्यूनाधिक रूप से अमरीकी नीतियों से संचालित होता रहा और पूर्व जर्मनी सोवियत शासन की नीतियों से। सांस्कृतिक और शैक्षणिक क्षेत्र में भी ये बाहरी दबाव बने हुए थे। पश्चिम जर्मनी में अमरीका, उसकी भाषा और संस्कृति का बोलबाला था तो दूसरी ओर पूर्व जर्मनी में सोवियत संघ की प्रभावी रूसी भाषा एवं संस्कृति का। अपनी शैक्षणिक नीति में भी ये दोनों जर्मन राज्य महाशक्तियों के परमुखापेक्षी थे।

संयुक्त राज्य अमरीका और दूसरे अंग्रेजी भाषी देश भी, दूसरे देशों की भाषाएं सीखने से प्रायः कतराते रहे हैं। रूसियों का दृष्टिकोण विदेशी भाषाओं के प्रति अपेक्षाकृत उदार रहा है, दूसरी भाषाएं सीखने में वे कभी संकोचशील नहीं रहे। जर्मनी में हिंदी भाषा के शिक्षण और अध्ययन-अध्यापन का मसला शिक्षा-नीति संबंधी इन सामान्य घटकों से जुड़ा रहा है। जहां सोवियत संघ की देखा-देखी भूतपूर्व पूर्व जर्मन राज्य में भारत की राजभाषा हिंदी के शिक्षणार्थ भाषा-शिंक्षण की यथेष्ट आधुनिक सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं, वहां भूतपूर्व पश्चिम जर्मनी में पहले से चले आ रहे भारतीय विद्या विभागों में ही हिंदी भाषा के शिक्षण की कमोबेश कामचलाऊ व्यवस्था कर दी गई। जब तथाकथित 'स्पुटनिक शॉक' के बाद अमरीका ने सोवियत संघ से हर क्षेत्र में होड़ लेने की ठानी और विदेशी भाषाओं के शिक्षण के स्तर में भी सुधार लाने का निर्णय किया तो जर्मनी में भी इस ओर ध्यान गया। हाइडलबर्ग विश्वविद्यालय ने इस दिशा में पहले कदम उठाए। हिंदी के साथ-साथ उर्दू, तमिल, कन्नड़, बंगाली, पंजाबी आदि आधुनिक भाषाओं के शिक्षण, अध्ययन-अध्यापन का भी प्रबंध किया गया। जो शिक्षण एवं पाठ्य सामग्री भूतपूर्व जर्मनी में और बाद में पश्चिम जर्मनी में जर्मन भाषा माध्यम से हिंदी सिखाने के उद्देश्य से तैयार कराई गई उसे आज की परिस्थितियों में सामयिक नहीं कहा जा सकता। कदाचित् यही कारण है कि आज कोई विरला हिंदी का प्राध्यापक उस सामग्री का उपयोग करता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, इटैलियन आदि आधुनिक यूरोपीय भाषाओं के अपने-अपने स्वतंत्र विभाग हैं। यह गौरव अभी हिंदी को नहीं प्राप्त हुआ।

अद्यावधिक राजधानी बॉन में एक विश्वविद्यालय से जुड़ा परंतु स्वायत्त 'प्राच्य भाषा संस्थान' है जिसका वित्तीय प्रशासन एवं परीक्षाओं का नियमन जर्मन सरकार का विदेश मंत्रालय करता है। इस संस्थान में चीनी, जापानी, कोरियन, इंडोनेशियन, अरबी, फारसी भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था है। हिंदी के शिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं, परंतु कोई विद्यार्थी चाहे तो विश्वविद्यालय में हिंदी सीख सकता है। संस्थान की परीक्षा के लिए विद्यार्थी को दो भाषाएं लेनी होती हैं, जिनमें एक प्रधान भाषा होती है और दूसरी गौण। हिंदी को अभी तक प्रधान भाषा के रूप में स्वीकृति नहीं प्राप्त हुई। किसी दूसरी प्राच्य भाषा को प्रधान बनाकर ही विद्यार्थी हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में ले सकता है। स्पष्ट है कि द्वितीय भाषा का स्थान तथा स्तर प्रधान भाषा से अलग ही होता है।

हिंदी भाषा-शिक्षण के लिए उपयोगी ग्रंथों का अभाव अभी भी बना हुआ है। परंतु कुछ वर्ष पूर्व तैयार किया गया कृष्ण मुरारी शर्मा का 'जर्मन-हिंदी शब्दकोश' और आर्येंद्र शर्मा तथा हंस फेर्मेर का 'हिंदी-जर्मन शब्दकोश' छात्रों को अंग्रेजी की मध्यस्थता का आश्रय लेने के दुःसाध्य उद्यम से उबार देते हैं।

हिंदी विश्व के दूसरे जनसंख्याबहुल राष्ट्र की राजभाषा है। वह जिस गौरव की अधिकारिणी है वह उसे अभी प्राप्त नहीं हुआ, कहीं भी नहीं, अपने देश में भी नहीं। भारतेंदु बाबू के शब्दों में "निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।" राष्ट्र की उन्नति चाहने वालों को भाषा की उन्नति के लिए सोद्यम प्रयत्नशील रहना चाहिए। विदेश में हिंदी को प्रोत्साहन देने के लिए यह अनिवार्य है कि हम स्वदेश में भी उसकी उन्नति के लिए प्रयत्नशील बनें। पिछले दशकों के हिंदी प्राध्यापन का मेरा एक अनुभव है। दो या तीन सेमेस्टर भाषा सीख लेने के बाद जब जर्मन छात्र हिंदी बोलने के अभ्यास की संभावनाओं की खोज में निकलता है तो उसके लिए वह सब से कठिन समय होता है। उसके सहपाठी जो फ्रेंच, स्पेनिश आदि दूसरी यूरोपीय भाषाएं सीख रहे होते हैं, या चीनी, जापानी, फारसी आदि प्राच्य भाषाएं सीखते हैं उन्हें यदि तद् भाषाभाषी लोग न भी मिलें तो वे उन देशों के दूतावासों में जाकर अर्जित भाषा-ज्ञान का प्रयोग कर सकते हैं। सब देशों के दूतावास या उनके सांस्कृतिक अनुभाग किसी विदेशी के मुंह से अपनी भाषा सुनकर हर्षित होते हैं और इस प्रकार से शिक्षणार्थी का उत्साह बढ़ाते हैं और उसे प्रोत्साहन मिलता है। पर भारत के दूतावासों में ऐसा नहीं है। हिंदी प्रदेशों में भी यदि कोई विदेशी विद्यार्थी हिंदी बोलने का अभ्यास करना चाहता है तो सहयोग या प्रोत्साहन की बजाय उसे प्रायः अंग्रेजी बोलने की विवशता का ही आश्रय लेना पड़ता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि कोई विदेशी किसी देश की भाषा सीखता है तो इस आशा से कि उस देश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में जाकर वह उस भाषा का मुक्त अभ्यास कर सकेगा। पर जब ऐसा नहीं होता तो उसकी हताशा का अनुमान लगाया जा सकता है।

एक दूसरी बात है हिंदी में वर्त्तनी तथा व्याकरणों के मानक रूपों के प्रयोग के प्रति हिंदी भाषियों की लापरवाही। पत्रिकाओं में, विज्ञापनों में, दीवारों पर, बोलने में भी भाषा के मनमाने प्रयोगों से विदेशी छात्र भ्रमित होता है और उसकी प्रगति में रुकावट आती है। जर्मन छात्र इस बात से कुछ ज्यादा ही परेशान हो जाता है, क्योंकि वह अपनी भाषा में शुद्ध, प्रामाणिक, मानक प्रयोगों का अभ्यस्त होता है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी, सूरीनाम और करीबियन में

जानकी प्रसाद सिंह

सूरीनाम में हिंदी दैनिक बोली जाती है। हिंदी शिक्षण स्वतंत्र संस्थाओं द्वारा दिया जाता है। हिंदी अध्यापक अवैतनिक हैं। सूरीनाम हिंदी परिषद् के कार्यकर्ता और अध्यापक स्वं सेवक हैं। खेद है कि गयाना, त्रिनिडाड-टोबैगो तथा जमैका में हिंदी बोली नहीं जाती। इन देशों में धार्मिक और सांस्कृतिक कार्यों के अवसर पर भी हिंदी का प्रयोग नहीं होता, जब कि भोजन तथा भूषण-भूषा भारतीय हैं। यहां सभी कार्य अंग्रेजी में होता है।

डच उपनिवेश होने के कारण ही सूरीनाम में हिंदी और सरनामी हिंदी अभी तक जीवित हैं, ऐसा मेरा विचार है। डच भाषा जानने से, भारत लौटने के बाद, किसी तरह का लाभ नहीं, जब कि अंग्रेजी जानने से 'वाइट कॉलर जॉब' प्राप्त किया जा सकता था।

करीबियन के जनसमुदाय की रचना करीब एक जैसी है। अंतर केवल यह है कि क्रियाल और भारतीय मूल वालों के अतिरिक्त इंडोनेसियन (जावी) भी सूरीनाम में रहते हैं। वे अपनी भाषा आज तक बोलते हैं। उनकी धर्म-संस्कृति भी यहां जीवित है।

सूरीनाम सरकार ने 'स्रनांतोंगों, सरनामी हिंदी एवं जावी' जैसी मातृभाषाओं को मान्यता प्रदान की। शिक्षा मंत्रालय द्वारा, ये भाषाएं रोमन लिपि में किस तरह लिखी जाए, एकरूपता हेतु, पुस्तकें छपवाकर वितरण किया गया। ये भाषाएं नियमित रेडियो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा दूरदर्शन के माध्यम से सुनने में मिलती हैं।

भारतवंशियों की जनसंख्या सूरीनाम, गयाना, त्रिनिडाड-टोबैगो और अन्य द्वीपों में दस लाख से अधिक है। परंतु आपसी संपर्क बहुत कम, नहीं के बराबर है।

करीबियाई क्षेत्र के भारतवंशियों को एक में बांधने के लिए हिंदी सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। जिन देशों में हिंदी बोली नहीं जाती वहां हिंदी के अन्य रूप सीखना अथवा सिखाना व्यर्थ है। इसका मतलब होगा समय नष्ट करना। जहां से हिंदी लुप्त हो गई है वहां प्रत्यक्ष-विधि के माध्यम से मानक हिंदी सीखने से तीन तरह के लाभ हैं:

1. मानक हिंदी जानने से संपर्क करीबियाई क्षेत्र के अलावा संसार के सभी हिंदी भाषा-भाषियों से,
2. हिंदी साहित्य तक आसानी से पहुंचना और
3. अपनी अस्मिता की ओर वापस लौटना

ये विचार कई अबसरों पर प्रकट किए गए हैं जैसे हाल ही में संस्था सूरीनाम हिंदी परिषद् के तत्वावधान में आयोजित 'तृतीय अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन', पार मारिबो सूरीनाम में। यह सम्मेलन जिसमें भारत, गयाना, त्रिनिडाड-टोबैगो और हॉलंत के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे एक प्रस्ताव पारित हुआ और घोषित किया गया की करीबियाई क्षेत्र के देशों के भारतवंशियों की मातृभाषा हिंदी है।

भारत के बाहर हिंदी का विकास तेजी से हो रहा है। इस विषय की ओर, संसार में जागृति के कारण, ध्यान बढ़ता जाता है। इस तीव्र से बदलते संसार में अपनी अस्मिता की ओर बढ़ने की इच्छा बहुत बड़ी है। एक ओर यह बढ़ने की इच्छा बहुत बड़ी है। पता चला है कि संस्कृति, जिसका अंग भाषा भी है, हर प्रकार के विकास और उन्नति की नींव है। राष्ट्रीय उत्थान की भी जिसमें विकासशील देश संघर्ष कर रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है कि जिन देशों में भारतवंशी बसे हुए हैं वे किसी न किसी तरह प्रयत्न करते रहते हैं ताकि हिंदी आगे बढ़े। इसमें सफल होने के लिए वे हर तरह के कष्ट झेलते हैं।

अपने आदर्श पाठ्यक्रमों के अनुसार कक्षाएं चलाई जाती हैं। स्थानीय वातावरण के आधार पर पाठ्यपुस्तकें लिखी जाती हैं।

सूरीनाम में हिंदी-रेडियो कार्यक्रम 'चौबीसो घंटा' सुन सकते हैं। इनमें सामाजिक हित के अनेक प्रकार के विषय पर चर्चा होती है, दूरदर्शन के हिंदी कार्यक्रम देखने-सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं जैसे आजकल रामानंद सागर के रामायण सीरियल के लिए।

सांस्कृतिक और धार्मिक (संस्कारों) कार्यक्रमों में हजारों लोग उपस्थित होते हैं, युवक वर्ग भी, जहां केवल हिंदी ही बोली जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजनीति में प्रवेश करने वाले युवक हिंदी के ज्ञान बिना टिक नहीं सकते। जनता उन्हें स्वीकार नहीं करेगी।

भारत के बाहर के भारतवंशी जागृति की ओर बढ़ रहे हैं, भाषा और संस्कृति के प्रति। वे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यशालाएं, सेमिनार तथा सम्मेलन आयोजित करते रहते हैं। यही प्रमाण है।

धार्मिक क्षेत्र पर 'विश्व हिंदू परिषद्' कार्य कर रही है। हिंदी क्षेत्र पर त्रिनीदाद (1992) और तृतीय अंतर्राष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन, पारामारिबो (1993) में सफलता पूर्वक आयोजित हुआ। इन सम्मेलनों में बड़े बड़े भारतीय विद्वानों का प्रतिनिधि मंडल उपस्थित था।

हिंदी ही एक ऐसी 'शक्ति' है जो करीबियाई क्षेत्र के भारतवंशियों को एकता और मिलजुल के कार्य करने के लक्ष्य तक पहुंचा सकती है क्योंकि इससे किसी तरह का अंतर नहीं किया जाता, न जाति, रंग, फुल, लिंग, धर्म और न राजनीति का।

अब कोशिश यह है कि करीबियन की हिंदी संस्थाओं की एक समन्वय समिति गठित की जाए जिसमें सूरीनाम एक 'अभ्यासिक भाषा-प्रयोगशाला' का कार्य निभा सकता है।

आजकल चतुर्थ विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस की तैयारी हो रही है जहां द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हुआ था। विश्व स्तर पर इस तरह का आयोजन समय-समय पर आवश्यक है। इससे अनेक देशों में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित हिंदी कार्यक्रमों में सहयोग और प्रेरणा मिलती है।

दस वर्ष पूर्व मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ था। 1983 में नई दिल्ली में उपस्थित होने का।

वह बहुत विचित्र और प्रभावशाली यात्रा रही।

मेरी शुभकामनाएं संयोजकों, मॉरीशस एवं भारत सरकार के प्रतिनिधियों तथा धरती मां के सभी हिंदी बोलने वालों तक पहुंचे। ☐

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ICCR PUBLICATIONS

INDIA'S MAULANA : ABUL KALAM AZAD
(Volumes I, II, III and IV)

VOLUME I-English
Tributes and Appraisals
Editor: Syeda Saiyidain Hameed

The articles included in this volume are based either on the author's personal knowledge of Maulana Azad or a study of his speeches and writings or a combination of both. Some of the eminent people whose works have been selected for inclusion in this volume are Mahatma Gandhi; Jawaharlal Nehru; Rajendra Prasad; S. Radhakrishnan; Zakir Hussain; Indira Gandhi; Jayaprakash Narayan; Salim Ali; Chelapathi Rau and Aruna Asaf Ali.

Royal octavo; Cloth with jacket; pp. 274; 1990; Rs 300

VOLUME II-English
Selected Speeches and Writings

Volume II contains selections of Maulana Azad's speeches and writings culled from various sources. In this volume, Maulana's writings are divided into three parts. The first entitled "Brilliant Beginnings; Journalistic Experimentation" covers a period of seventeen years, 1899-1916. The second part entitled "The Peak Years: Religion, Politics, Literature", runs from 1916 until the Independence. The third part, "Summing-up: The Post-Independence Phase", covers the last decade of his life 1947-1958 and includes his official speeches and writings. This volume is a companion piece to volume I.

Royal octavo; Cloth with jacket; pp. 335; 1990; Rs 300

VOLUME III-Hindi
Speeches and Writings

Volume III is a translation into Devanagari of Volume II in its entirety.

Royal octavo; Cloth with jacket; pp. 332; 1990; Rs 300

VOLUME IV-Urdu
Speeches and Writings

Volume IV is a translation into Urdu of volume II in its entirety.

Royal octavo; Cloth with jacket; pp. 476; 1990; Rs 300

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पोलैंड में भारतीय सृजन

हरिमोहन शर्मा

पोलैंड में भारत, भारतीय संस्कृति और भारतीय साहित्य के प्रति पुराना लगाव है। विशेषतः प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक साहित्य और संस्कृत के प्रति। पोलैंड की राजधानी वार्सा में भारतीय अध्ययन विभाग द्वितीय महायुद्ध से काफी पहले खुल चुका था, जिसे महायुद्ध के बाद पुनः जीवित किया गया। उसके बाद पोलैंड की पूर्व राजधानी एवं प्राचीन सांस्कृतिक शहर क्राकूव के याग्यलोनियन विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा और साहित्य के अध्ययन का बड़ा विभाग खुला। आज तो पोलैंड के एक अन्य शहर पोजनान के अदम मित्स्कियेविच विश्वविद्यालय में भारतीय भाषाओं एवं साहित्य का अध्ययन-अध्यापन कार्य वहां के एशियाई एव अफ्रीकी विभाग में भी होता है। यह मध्य यूरोप के एक छोटे से देश पोलैंड का भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रति अनुराग का एक प्रमाण है।

यहां के जनमानस में भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी रुचि और अपूर्व निष्ठा देखने को मिलती है। पुरानी पीढ़ी में भारतीय संस्कृति एवं उसकी मूल्यवत्ता को यहां गंभीरता से लिया जाता रहा। आज भी पोलिश समाज स्वतंत्र भारत के निर्माताओं गांधी, नेहरू आदि को श्रद्धा के साथ याद करता है। मुझे स्मरण है, जब डेढ़-दो वर्ष पूर्व सांसद श्री राजमोहन गांधी पोलैंड की यात्रा पर आए थे तो एक पोलिश सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संस्था ने शीघ्रता से उनका एक छोटा संभाषण आयोजित किया था। कम समय और सूचना के बावजूद वहां न केवल जनसमुदाय उपस्थित था वरन् उन्होंने प्रश्नोत्तर के दौरान भारत के विषय में जिस ढंग से प्रश्न किए—उनसे मैं दंग रह गया। उन्हें भारत के विषय में जिज्ञासा भर नहीं थी वरन् वे भारत के विषय में अखबारी ज्ञान से कहीं ज्यादा जानकारी रखते थे। मुझे याद है कि कुछ लोग अपने साथ गांधी जी की पुस्तकें साथ लेकर आए थे जिससे कि वे उनपर गांधी के वंशज से हस्ताक्षर ले संजोकर रख सकें।

पोलैंड के प्रत्येक शहर में हर पांचवी-छठी दुकान पुस्तक की है। जहां पाठ्यपुस्तकें ही नहीं, दुनियाभर की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें उनकी अपनी भाषा में अनूदित मिल जाएंगी। किसी भी भाषा व साहित्य की नई से नई पुस्तक पोलिश भाषा में यहां उपलब्ध है। अंग्रेजी किताबें ढूंढ़ना यहां समस्या है। पुस्तकें पढ़ना और खरीदना यहां के लोगों का शौक है। पुस्तकों की उन दुकानों में भारत विषयक एक-दो पुस्तकें मिल जाना साधारण बात है। भारत देश, संस्कृति, समाज की सांमान्य् जानकारी देने वाली एक-दो पुस्तकें यहां हर जगह मौजूद हैं। कुछ दुकानों में भारतीय इतिहास, धर्म और दर्शन से संबंधित अनेक पुस्तकें देखी जा सकती हैं। इधर जे. कृष्णमूर्ति के भाषणों का अनुवाद हर जगह दिखाई पड़ रहा है।

भारतीय भाषाओं में संस्कृत भाषा और साहित्य प्रारंभ से पोलिश समाज के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। कुछ समय पहले तक संस्कृत भाषा और साहित्य पढ़ने का यहां खूब प्रचलन था। अतः संस्कृत के गौरव ग्रंथों का अनुवाद-कार्य यहां काफी पहले से और काफी मात्रा में हुआ है।

जहां तक भारतीय साहित्य के अनुवाद का प्रश्न है, वार्सा विश्वविद्यालय में भारतीय अध्ययन विभाग के अध्यक्ष प्रो. मारिया क्रिस्तोफ ब्रिस्की (आजकल नई दिल्ली में पोलिश राजदूत) ने इस दिशा में न केवल उल्लेखनीय कार्य किया है वरन् जिस निष्ठा एव लगन से संस्कृत एव हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन अध्यापन एवं शोधकार्य किया है, वह विस्मयकारी है। उन्होंने अन्य भारतीय भाषाओं एवं उनके साहित्यों को भारतीय अध्ययन विभाग के पाठ्यक्रमों में जिस ढंग से प्रतिष्ठापित किया है, वह सराहनीय है। यहां विभाग का प्रत्येक कक्ष उनकी सुरुचिपूर्णता की कहानी सुनाता मिलता है। एक कक्ष भारतीय देवी-देवताओं के चित्रों से सुसज्जित है, दूसरा ऐतिहासिक स्थलों एवं तीर्थों के चित्रों से तो तीसरा भारतीय नृत्य शैलियों से। कहीं प्राचीन पांडुलिपियों के नमूने हैं तो कहीं भारतीय जनजीवन की झांकी—चित्रों के माध्यम से। यहां भारतीय वातावरण जीवंत रूप में विद्यमान है।

संस्कृत और हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् एवं बनारस से पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त प्रो. ब्रिस्की ने अनेक वर्ष पूर्व मनुस्मृति एवं कामसूत्र का पोलिश भाषा में अनुवाद किया था—जो अब अनुपलब्ध हैं यानी ये अनुवाद कब के बिक चुके हैं। भारतीय रंगमंच एव संस्कृत नाटक-नौटंकिया पर शोधकार्य करने वाले ब्रिस्की जी ने स्वप्न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वासवदत्ता एवं मृच्छकटिक का अनुवाद बहुत पहले किया था—जो पर्याप्त लोकप्रिय रहा। इसके अलावा श्रीमद्भगवत गीता के कुछ अंशों, गंगा स्तोत्र एवं ईश्वरदत्त के धूर्त्त वित्त संवाद का अनुवाद भी उन्होंने किया है। हिंदी नाटकों में भी उनकी रुचि रही है। लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक 'तोता मैना', सर्वेश्वर की 'बकरी', प्रेमचंद की 'गरीबों की हाय' आदि का अनुवाद भी लोगों ने सराहा है। उन्होंने न केवल स्वयं भारतीय विद्या का अध्ययन-अध्यापन-शोधकार्य किया वरन् अपने सहयोगियों को विभिन्न भारतीय भाषाओं से यही कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

वार्सा में भारतीय अध्ययन विभाग की निदेशिका डॉ. (श्रीमती) बारबरा ग्रबोव्स्का ने बंगला से हिरण्मय घोषाल के जीवन-चरितात्मक उपन्यास—द्वितीय महायुद्ध का पहला अध्याय का पोलिश में अनुवाद किया। बंगला कहानियों के उनके अनुवाद अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आते रहे हैं। बंगला की ही एक अन्य अध्यापिका डॉ. (श्रीमती) एलिजाबियेता वाल्टर ने रवींद्र की पांच कहानियों का पोलिश भाषा में अनुवाद किया। यही नहीं इनका विभूतिभूषण बनर्जी के 'पाथेर पांचाली' उपन्यास का अनुवाद तथा लाल बिहारी डे की 'बंगाल की लोककथाएं' का अनुवाद पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित है। श्रीमती मैत्रेयी देवी के 'नहन्यते' उपन्यास का अनुवाद उसी नाम से प्रकाशनाधीन है।

तमिल गौरवग्रंथों का भी अनुवाद पोलिश भाषा में हुआ है। माणिक्य वाशकर के तिरुवाशकम से तिरुवेंपावई एवं शिवपुराणम् का अनुवाद भी पोलिश में हो चुका है; जिसे दक्षिण भारत के एक विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त डॉ. तदेउव हरमन ने किया है। उन्होंने आंडालके तिरुपावई का अनुवाद भी किया है। अतः तमिल साहित्य से भी पोलिश समाज परिचित है।

पोलैंड में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का अनुवाद पर्याप्त मात्रा में हुआ है। हिंदी की वरिष्ठ अध्यापिका डॉ. (श्रीमती) तात्याना रूत्कोवस्का ने प्रेमचंद, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, मन्नू भंडारी आदि की कहानियों का अनुवाद भारतीय कहानियों के एक संकलन के रूप में पोलिश में प्रकाशित किया है। इधर हाल ही में उनका भारतीय लोककथाओं का अनुवाद अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित हुआ है। पुस्तक में स्थान-स्थान पर रेखांकन हैं और पुस्तकांत में ठेठ भारतीय शब्दों की व्याख्या दी गई है।

वार्सा में भारतीय साहित्य के एक अत्यंत विनम्र एवं अद्भुत अनुवादक हैं—श्री यूल्यूष पर्नोविस्की। समूंचे जीवन भारतीय साहित्य साधानरत, अनेक व्याधियों से लापरवाह, अवकाश प्राप्त यह अनुवादक आज भी अनुवाद कार्य में लगा है। उन्होंने हिंदी में कविता-कहानी से लेकर लोकगीत, उपन्यास-निबंध, मानस से लेकर 'मैला आंचल', 'वे दिन' का प्रमुखतः अनुवाद किया है। उर्दू में मंटो, पंजाबी में अमृता प्रीतम, अजित कौर आदि, सिंधी में ईश्वरचंद, डोगरी में ओमप्रकाश शर्मा 'सारथी' आदि की अनेक रचनाओं का अनुवाद इन्होंने अपनी भाषा में किया है। ये अधिकांश अनुवाद मूलभाषा से किये गए हैं। इन्होंने दक्षिण भारतीय कहानियों के अनुवाद हिंदी के माध्यम से किये हैं। जो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सभी लोकप्रिय हुए हैं। आजकल ये एक विशिष्ट पत्रिका 'डायलॉग' के लिए 'आषाढ़ का एक दिन' का पूरा अनुवाद कर रहे हैं। प्रो. ब्रिस्की के शब्दों में एक साथ इतनी भारतीय भाषाओं के जानने वाले अनुवादक श्री पर्नोवस्की शायद पूरे यूरोप में अकेले हैं। जिनके अनुवादों के विषय में स्वतंत्र निबंध लिखे जाने की आवश्यकता है।

जैसा कि कहा जा चुका है कि पोलैंड में भारतीय साहित्य पुराने समय से लोक प्रिय रहा है। सन् 1980 में पोलिश भाषा की विश्व साहित्य संबंधी प्रतिष्ठित पत्रिका का भारत केंद्रित विशेषांक पर्याप्त चर्चित रहा है। आजकल नए-नए कोश प्रकाशित करने की योजनाएं प्रकाशकों की ओर से आ रही हैं। भारतीय शास्त्रीय चिंतन कोश इस दिशा में संपादित हो चुका है। मिथक कोश की चर्चा चल रही है। 'डायलॉग' पत्रिका का भारतीय साहित्य विशेषांक इसी प्रयास की एक कड़ी हैं; जो पोलिश समाज की भारतीय साहित्य की विविधता को जानने-समझने की ललक एवं रुचि को प्रकट करती है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महाथाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थयात्रा के वृत्तांत का चीन में अध्ययन

सुन पाओकाङ

सन् 600 में जन्मे श्वेन त्साङ, चीन के थाङ राजवंश (618-907) के एक सुप्रसिद्ध बौद्ध आचार्य, विद्वान दार्शनिक, अनुवादक और पर्यटक थे।

'त्रिपिटक आचार्य' श्वेन त्साङ, चीन के इतिहास में एक ऐसी महान विभूति हैं जो चीन के घर घर जबानजद हैं। वे, जिंदगी भर चीन-भारत के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान में लगे रहे और उन्होंने इसके लिए अपना सर्वस्व दिया। वे चीन भारत मैत्री के अग्रदूत थे।

बौद्ध धर्म के विस्तृत अध्ययन के लिए वे भारत में 17 वर्षों तक रहे। स्वदेश लौटने के बाद उनके द्वारा लिखवाए और उनके शिष्य प्येन ची द्वारा संकलित 'महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थयात्रा का वृत्तांत' में भारत और मध्य एशिया के उन 110 राज्यों, जिन की श्वेन त्साङ ने यात्रा की थी, और श्रुत 28 राज्यों का श्रेणीबद्ध रूप से विवरण दिया गया है। यह यात्रा-वृत्तांत, अपनी व्यापक विषयवस्तु, सुस्पष्ट वर्णन और सही विवरण से मध्य एशिया और भारत समेत दक्षिण एशियाई देशों के प्राचीन इतिहास व भूगोल के अध्ययन के लिए सब से महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष संदर्भ-सामग्री बन गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्वेन त्साङ का कुल नाम छन ई था। उनकी जन्मभूमि वर्तमान हनान प्रांत की येनस काऊंटी का छनह गांव था। उनके दादा और पिता दोनों सुप्रसिद्ध विद्वान थे। इसलिए बचपन से ही वे प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथों में प्रवीण हुए थे। उनके बड़े भाई एक बौद्ध आचार्य थे। भाई के प्रभाव में आकर 13 वर्ष की उम्र में श्वेन त्साङ ने प्रवज्या प्राप्त की।

सन् 617 में चीनी समाज, एक उथल-पुथल दौर से गुजर रहा था। स्वेई राजवंश (580-177) का पतन हो रहा था। 18 वर्षीय श्वेन त्साङ एक भिक्षु के रूप में बौद्ध संघाराम में पांच साल तक रहे। इसी दौरान उन्होंने अनेक सूत्रों का अध्ययन किया। इक्कीस वर्ष पूरे होने पर वे उपसंपन्न हुए। बौद्ध सूत्रों का आगे अध्ययन करने के लिए उन्होंने मध्य चीन के हूपे, हनान, पश्चिम चीन के शेनशी और दक्षिण पश्चिम चीन के सछुआन आदि क्षेत्रों का भ्रमण कर, तेरह सुविज्ञ भिक्षुओं से 'महापरिनिर्वाण सूत्र', 'महायान संपरिग्रह शास्त्र', 'संयुक्त अभिधर्म हृदय शास्त्र' एवं 'अभिधर्म कोष शास्त्र' का गहन अध्ययन किया। इसी बीच उन्होंने नवोदित विज्ञानवाद का भी अध्ययन किया। तिस पर भी उन्हें बौद्ध धर्म की मूल समस्या—बुद्धत्व की समस्या पर एक सुनिश्चित व सर्वसम्मत उत्तर न मिल सका। इसका सटीक उत्तर और बौद्ध धर्म का सही ज्ञान पाने के लिए श्वेन त्साङ ने स्वयं भारत की यात्रा करने का संकल्प लिया।

सन् 626 की शीतऋतु में भारत के नालंदा संघाराम के स्थविर आचार्य शीलभद्र के शिष्य परोपकार समुद्री मार्ग से यात्रा पर तत्कालीन राजधानी छाङआन आए।

श्वेन त्साङ को उन से मालूम हुआ कि नालंदा संघाराम भारत में बौद्ध धर्म का सर्वोच्च विद्यालय है। और आचार्य शीलभद्र एक बड़े विद्वान हैं। वे असंग वसुबंधु और धर्मपाल के सिद्धांत ग्रहण कर योगाचार, विज्ञानवाद, हेतु-विद्या और शब्द विद्या में प्रवीण हैं। सो, श्वेन त्साङ ने भारत की यात्रा के संकल्प को और पक्का किया।

सन् 627 में श्वेन त्साङ ने जान-जोखिम की परवाह न करके, भारत की ओर अपना अभियान आरंभ किया। रास्ते में उन्होंने अनगिनत कष्ट झेले। वे कई बार मरते-मरते बचे। सन् 630 में वे भारत में मगध के राजगृह पहुंच गए। नालंदा संघाराम के भिक्षुओं ने उनका भावभीना स्वागत किया। तब से उन्होंने अपना अध्ययन-कार्य शुरू किया। इसी बीच उन्होंने कुशीनगर लुंबिनी, बौद्ध गया, मृगदाव तथा गृघकूट आदि छह प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थों की यात्रा भी की। पांच वर्ष तक कड़ी मेहनत करने के बाद उनकी शिक्षा पूरी हुई। फिर उन्होंने समूचे भारत की यात्रा आरंभ की।

भारत-भ्रमण पूरा होने पर वे फिर नालंदा वापस लौटे। शीलभद्र की अनुशंसा पर श्वेन त्साङ ने 'महायान संपरिग्रह शास्त्र' और 'विज्ञापति मात्र सिद्धि त्रिशंक कारिका शास्त्र' पर व्याख्यान दिए। तब से उनकी ख्याति समूचे भारत में फैल गई।

बौद्ध धर्म के अनुयायी सम्राट शीलादित्य श्वेन त्साङ का बहुत आदर करते थे। सन् 642 के बारहवें माह में उन्होंने कन्याकुब्ज में श्वेन त्साङ के लिए पांच वार्षिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिषद का आयोजन किया। परिषद में श्वेन त्साङ ने महायान के सिद्धांतों पर व्याख्यान दिया। भारत के 18 राजा, तीन हजार महायानी और हीनयानी भिक्षु, दो हजार ब्राह्मण व निगर्थ और नालंदा के एक हजार भिक्षु सम्मिलित हुए थे। श्वेन त्साङ ने अपने प्रखर पांडित्य से सभी संप्रदायों के अनुयायियों को प्रभावित किया। उन के 'असत्यवाद खंडन शास्त्र' पर किसी को भी आपत्ति उठाने की हिम्मत न हुई। परिषद 18 दिन तक चली। महायानियों ने उन्हें 'महायान देव' एवं दीनयानियों ने उन्हें 'मोक्षदेव' की उपाधियों से सम्मानित किया।

इसी बीच श्वेन त्साङ ने सम्राट शीलादित्य को चीन की राजनीति, अर्थतंत्र और संस्कृति का परिचय दिया। जिससे थाङ राजवंश के बारे में सम्राट शीलादित्य की जानकारी में वृद्धि हुई। सन् 641 में·सम्राट शीलादित्य ने अपना दूत चीन भेजा। इसके बाद थाङ राजवंश के सम्राट ली शमिन ने भी अपना दूत भारत की यात्रा पर भेजा।

सन् 645 के वसंत मे श्वेन त्साङ स्थलीय मार्ग से स्वदेश लौटे। वे अपने साथ बारह घोड़ों पर 657 संस्कृत बौद्ध सूत्रों और बड़ी संख्या में बुद्ध-मूर्तियां लाद कर लाए।

उन्होंने बौद्ध धर्म की नई शाखा 'धर्म लक्षण शाखा' स्थापित की। और नए सिरे में बौद्ध सूत्रों का अनुवाद किया। सम्राट ली शमिन ने छाङ आन में हुङफ संघाराम को उनका निवास बनाया और एक बृहद बौद्ध सूत्र अनुवाद प्रतिष्ठान की स्थापना के लिए देश के अन्य स्थानों से विद्वान भिक्षुओं के चयन में उन्हें सहायता दी। इस प्रतिष्ठान में 19 वर्षों में 75 बौद्ध सूत्रों का चीनी में अनुवाद किया गया। जिन के चीनी अक्षरों की संख्या एक करोड़ तीन लाख थी। इसके अलावा श्वेन त्साङ ने चीन के ताओ धर्म की रचना 'लाओचि' का संस्कृत पाठ तैयार करने और भारत में तब अनुपलब्ध हो चुके महायान श्रद्धोत्वाद शास्त्र को फिर से संस्कृत में अनूदित कर वापस भारत में भेजने में अहम भूमिका की थी। विशेषकर श्वेन त्साङ ने जो 'महा थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थयात्रा का वृत्तांत' लिखा है। उसका संस्कृति के इतिहास में अनुपम और अमूल्य स्थान है।

आज भी ईसा की सातवीं शताब्दी से पूर्व के दक्षिण एशियाई देशों का अध्ययन करने के लिए इस रचना का सहारा लेना पड़ता है। इस रचना में तत्काल में 138 राज्यों की भौगोलिक स्थितियों, भूमि क्षेत्रफल, नगरों, सीमाओं, संचार, लोकाचार, प्रथाओं, उपजों, जलवायु, राजनीति और संस्कृति आदि लगभग सभी पक्षों का उल्लेख मिलता है।

'महाथाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थयात्रा का वृत्तांत' को विभिन्न देशों के विद्वान महत्व देते आए हैं। उस का क्रमशः फ्रांसीसी, अंग्रेजी, रूसी, जापानी और हिंदी में अनूदित हो कर प्रकाशित किया जा चुका है।

पिछले एक हजार वर्षों में पुरातत्व के क्षेत्र में नई-नई खोजों एवं इतिहास के अध्ययन में निरंतर प्रगति के साथ साथ श्वेन त्साङ के यात्रा-वृत्तांत का महत्व सिद्ध होता गया है। भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने उनके उल्लेखों के मुताबिक राजगृह के खंडहरों,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सारनाथ, अजंता और नालंदा में खुदाई की और भारी उपलब्धियां प्राप्त की।

समय के गुजरने के साथ साथ, सांस्कृतिक क्षेत्र में श्वेन त्साङ के असाधारण योगदान को चीनी विद्वानों ने उतरोत्तर अधिकाधिक पहचान लिया है। इधर के वर्षों में चीन के संबंधित अनुसंधान शालाओं व विश्वविद्यालयों में अनेक विद्वानों ने श्वेन त्साङ और उनकी रचना 'यात्रां वृत्तांत' का गंभीरता से अध्ययन किया और इस संदर्भ में बहुत-सी मूल्यवान रचनाएं लिखी। जिन में प्रोफेसर ची श्येन लिन आदि द्वारा लिखे गए' थाङ राजवंश काल में पश्चिम की तीर्थयात्रा का वृत्तांत का भाष्य' विशेष उल्लेखनीय है।

सन् 1991 में मध्य चीन के हनान प्रांत के येनस कांऊटी के छनह गांव के लोगों ने श्वेन त्साङ के प्राचीन निवास का जीर्णोद्धार किया और श्वेन त्साङ स्मृति भवन का निर्माण किया। श्वेन त्साङ संग्रहालय का निर्माण भी किया जा रहा है।

सन् 1992 में 11 चीनी सुप्रसिद्ध विद्वानों के सुझाव पर श्वेन त्साङ अनुसंधान केंद्र की स्थापना हुई। इस केंद्र में अनेक सुप्रसिद्ध विद्वान कार्यरत हैं। इस केंद्र की स्थापना इस बात का एक प्रतीक है कि चीन में श्वेन त्साङ के अध्ययन का एक नया दौर शुरू हुआ है। योजना के अनुसार अगले अप्रैल में हनान प्रांत की येनस और शेनशी प्रांत के शिआन शहरों में महाचार्य श्वेन त्साङ के निर्वाण की 1330वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में एक अंतर्राष्ट्रीय अकादमिक संगोष्ठी आयोजित की जाएगी। संगोष्ठी के दौरान बौद्ध धर्म, दर्शन शास्त्र हेतु विद्या, शब्दविद्या, इतिहास शास्त्र, भूगोल शास्त्र, नीतिशास्त्र, संस्कृति आदि क्षेत्रों में श्वेन त्साङ के योगदान पर विचार विमर्श किया जायेगा।

मैं आश्वस्त हूं कि विश्व के विभिन्न देशों के अनेक विद्वान एवं बौद्ध दार्शनिक हमारे साथ मिलकर श्वेनत्साङ के अध्ययन को नई दिशा प्रदान करेंगे। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाषा और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

(हिंदी मुहावरों और लोकोक्तियों में रामायण के तत्व)

डॉ. ब्यौर्नर वेस्तफाल/डॉ. एच. लत्सके

एक या अधिक भाषाएं बोलनेवाले व्यक्तियों की सामान्य *'सांस्कृतिक पृष्ठभूमि'* भाषाई तथा स्थितिपरक प्रसंग, तथ्यात्मक ज्ञान, भाषाई सामर्थ्य तथा अन्य विषयनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ आधार के रूप में कार्य करती है। साथ ही, यह किसी भाषा-भाषी जनसमुदाय के बीच संप्रेषण-क्रिया में एक महत्वपूर्ण अतिरिक्त संकेत का काम भी करती है। कुल मिलाकर, किसी भाषा-भाषी जनसमुदाय या सामाजिक समूह के सामान्य अनुभवों को *'सांस्कृतिक पृष्ठभूमि'* कहा जाता है। ये अनुभव रहने की दशाओं, सामान्य संस्कृति, परंपरा आदि से प्राप्त होते हैं (शिपेन के अनुसार, 112) अन्य साधनों के अतिरिक्त, इन सामान्य सांस्कृतिक अनुभवों की अभिव्यक्ति साहित्य, पुराण, सामान्य इतिहास या संजातीय पृष्ठभूमि या अन्य कारकों के माध्यम से की जा सकती है। इसलिए, यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त ढंग से भाषा का प्रयोग करता है तो उसमें संप्रेषण के ऐसे अनेक अतिरिक्त संकेतों का इस्तेमाल अवश्य किया जाता है जिनका उद्भव सामान्य संस्कृति और सभ्यता से निरंतर रूप से होता रहता है (आम्मेर के अनुसार, 69)। भाषा प्रयोग, शब्दावली, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि में इसके ठोस उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी के संबंध में भी ऐसे सामान्य सांस्कृतिक अनुभवों के प्रभाव को सिद्ध किया जा सकता है। बहरहाल, हम यहां सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के केवल एक क्षेत्र का सर्वेक्षण करेंगे और वह है—साहित्य और पुराण क्योंकि हिंदी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में कभी-कभी केवल एक ही शब्द, मुहावरे और लोकोक्तियां प्रायः साहित्य की महान लोकप्रिय कृतियों की विषयवस्तु से जुड़ी होती है। केवल भाषा के रूप में ही नहीं, वैसे भी जनमानस पर रामायण और महाभारत महाकाव्यों का स्थायी प्रभाव पड़ा है। यदि यहां हिंदी भाषा पर उपर्युक्त दोनों महाकाव्यों के प्रभाव का उल्लेख किया जाए तो विषय लंबा खिंच जाएगा। अतः कुछ उदाहरण देकर हमारा उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि रामायण के मुख्य चरित्रों के व्यक्तिवाचक नामों और प्रकरणों के नामों या स्वयं महाकाव्य के नाम का प्रयोग शब्दों में (उनके अपने विशिष्ट अर्थ सहित) या मुहावरों, लोकोक्तियों तथा लोगों की कहावतों में किस प्रकार किया गया है। लेकिन हमारा अभिप्राय यह बताना नहीं है कि यह प्रयोग कब से आरंभ हुआ। केवल अंतरिम और अपूर्ण सर्वेक्षण प्रस्तुत कर रहे हैं।

आज तक भारतीय जनमानस पर रामायण का सर्वाधिक स्थायी प्रभाव पड़ा है। अनेक साहित्यिक कृतियों, रंग नाटकों, आधुनिक युग में चलचित्रों और टी.वी. फिल्मों (टी.वी. धारावाहिक *रामायण* पूर्णतः सफल था) की विषय-वस्तु रामायण से ली गई है। हिंदी भाषी क्षेत्रों में तुलसीकृत रामायण का 16वीं शताब्दी से ही जबरदस्त प्रभाव रहा है। भारत के अधिसंख्य लोगों के लिए राम और सीता सत्य और पवित्रता के आदर्श हैं जिनकी मान्यता परम एवं चिरस्थाई है (माइलिस के अनुसार 141)। रावण बुराई का अवतार है और लक्ष्मण अटल स्वामिभक्ति के प्रतिरूप हैं। लेकिन भारत में न केवल साहित्य और फिल्म में बल्कि टी.वी. धारावाहिक—महाभारत में भी रामायण को जीवित रखने के लिए संकेत दिया गया था। ललित कलाओं की विषय-वस्तु भी सदैव रामायण से ही ली जाती है। वे उस विषय-वस्तु को इस ढंग से प्रदर्शित करते हैं कि आज भी यह महाकाव्य पूर्णतः सजीव है। राजनीति में भी आपको रामायण के अनेक संकेत मिलते हैं। लेकिन अयोध्या में बाबरी मस्जिद और राम मंदिर के आसपास आजकल जो झगड़े हुए हैं उनको देखकर रामायण के प्रति अप्रिय स्मृतियां और भावनाएं पैदा हुई हैं। संपूर्ण भारत में रामनवमी, दशहरा, रामलीला और दिवाली जैसे अनेक त्यौहार मनाए जाते हैं, और इस प्रकार रामायण के चरित्रों तथा प्रकरणों को लोगों में जीवित रखा जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति रामायण की मुख्य विषय-वस्तु से परिचित है और वह यह जानता है कि इसके लिए कैसी भाषा का प्रयोग किया जाता है, भले ही वह स्वयं रामायण के संकेतों, तुलनात्मक शब्दों आदि का प्रयोग कर रहा हो या दूसरे व्यक्तियों द्वारा कही गई बांतों की व्याख्या सही ढंग से करता हो।

हिंदी से संबंधित निम्नलिखित अभ्युक्तियां, प्राथमिक स्रोतग्रंथ यथा—उपन्यासों,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लघु कहानियों, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं से लिए गए लेखों पर आधारित हैं। इनमें गौण स्रोत ग्रंथ—शब्द कोश और मुहावरा तथा लोकोक्ति संग्रह भी शामिल हैं। लोकोक्तियों को छोड़कर अन्य उदाहरण प्राथमिक साहित्य से लिए गए हैं। प्राथमिक स्रोत ग्रंथों का चयन लघु कथा साहित्य (गुलशन नंदा, मनोज) तथा प्रेमचंद, भीष्म साहनी, राजेंद्र यादव, फणीश्वर नाथ रेणु जैसे लेखकों द्वारा लिखित प्रसिद्ध आधुनिक उपन्यासों या लघुकहानियों से किया गया। गौण स्रोत ग्रंथों में मुख्यतः एकभाषी बृहत् शब्दकोशों—हिंदी शब्द सागर, संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर का प्रयोग किया गया था। लेकिन इनमें से कुछ शब्द कोशों का प्रयोग भी किया गया था। मुहावरा और लोकोक्ति संग्रह के लिए हमने मुख्यतः हिंदी कोशों का प्रयोग किया था।

प्राथमिक तथा गौण स्रोतग्रंथों में उपलब्ध आधुनिक भाषा प्रयोग से संबंधित निष्कर्षों को सर्वेक्षण अंत में प्रस्तुत किया जाएगा।

हमें जो उदाहरण और संदर्भ उपलब्ध हुए हैं उन्हें रामायण से संबंधित अनेक संभावनों के अनुसार विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. व्यक्तिवाचक नाम (व्यक्तियों और स्थानों के नाम)

जहां तक व्यक्तिवाचक नामों का संबंध है, रामायण के मुख्य चरित्रों यथा—राम, सीता, लक्ष्मण, रावण आदि के नामों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। प्रसिद्ध साहित्यिक रचनाओं के नायकों के नाम या मुख्य दृश्यों को भी लाक्षणिक रूप से प्रयोग करने की प्रवृत्ति न केवल हिंदी में बल्कि अधिसंख्य भाषाओं में पाई जाती है। इन नामों का प्रयोग केवल नाम के अर्थ में किया जा सकता है अर्थात् मूलतः उनका अर्थ व्यापक नहीं है किंतु सामान्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—हमारे मामले में रामायण विषयक ज्ञान—से सामान्यीकरण और संप्रेषण संभव है। यहां मुख्यतः तुलनात्मक शब्द लिए गए हैं जो सर्वाधिक सामान्य लक्षणों का अर्थ देते हैं (उदाहरण—सीता की भांति अपने पति के प्रति निष्ठावान, राम की तरह सरल, लक्ष्मण की भांति सेवानिष्ठ, रावण के जैसा क्रूर एवं अत्याचारी, अयोध्या नगरी के समान शांत।)

लगातार रूपकात्मक प्रयोग के कारण व्यक्तिवाचक नाम भी जातिवाचक नाम बन सकते हैं अर्थात् तुलनात्मक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता। नियम के तौर पर संपूर्ण लक्षण जातिवाचक नाम में निहित होते हैं। यहां, कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं :

राम = सरल और न्यायप्रिय शासक
लक्ष्मण = यथार्थ में सच्चा मित्र और भाई
रावण = क्रूर, अत्याचारी

दूसरी ओर जातिवाचक शब्दों का निर्माण करने में यह अनिवार्य नहीं है कि तुलनात्मक शब्द में संपूर्ण लक्षणों को शामिल किया जाए। ऐसे तुलनात्मक शब्दों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रयोग करना भी संभव है जो किसी व्यक्ति की कुछ विशेषताओं को प्रकट करते हों या विशेष लक्षणों पर जोर डालते हों। इसके उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

कहां जा रही हैं? चुपचाप लौट आ नहीं तो—
नहीं तो क्या?
नहीं तो तुझे उठाकर ले जाऊंगा।
वाह जी, उठा ले जाऊंगा, बड़ा आया रावण।
(भीष्म साहनी, बसंती, 89)

रावण के समान का अर्थ है स्त्रियों के अपहरणकर्ता। यहां रावण का अर्थ पूर्णतः क्रूर व्यक्ति से नहीं है, केवल स्त्रियों के अपहरणकर्ता वाले पक्ष पर जोर दिया गया है।

स्थिति पर निर्भर करते हुए लक्षणों के महत्व को प्रकट करने वाला एक और स्पष्ट उदाहरण उपलब्ध है और वह है *विभीषण* नाम का विभिन्न प्रयोग। लंका में विभीषण का होना एक और दुष्टों के बीच सज्जन पुरुष के होने का अर्थ देता है तो दूसरी ओर जातिवाचक नाम अर्थात् देशद्रोही (घर की भेदी) का।

जब शब्द जातिवाचक बन जाते हैं तब उनमें व्याकरणिक परिवर्तन आ जाते हैं क्योंकि ये नाम मूलतः 'एक वचन' होते थे और अब इनका प्रयोग बहुवचन में किया जाता है या किसी विशेष (अनिश्चयवाचक) सर्वनामों यथा—'कोई, कोई ऐसा' एक (भी) आदि के साथ अलग-अलग किया जाता है। निम्नलिखित वाक्यों में इन विकासों के उद्धरण दिए गए हैं।

लाखों रावण गली में घूम रहे हैं (दिनमान 10/82, 15)
रावण जितने कहो, उतने दिखाएं (दिनमान 10/82, 15)
एक भी राम नहीं मिलेगा। (दिनमान 10/82, 15)

व्यक्तिवाचक नाम को जातिवाचक नाम में परिवर्तित होने का एक अन्य संकेत विशेषणों की व्युत्पत्ति द्वारा दिया जा रहा है। उदाहरण के लिए रावणीय शब्द की व्युत्पत्ति रावण शब्द से हुई है और इसका निर्माण संस्कृत नियमों के अनुसार हुआ है, इसका अर्थ है क्रूर, हिंसक, अत्याचारी। इनके संयुक्त शब्द इस प्रकार हैं :

रावणीय प्रवृत्ति (दिनमान 10/82, 50) = क्रूर, हिंसक प्रवृत्तियां।
रावणीय विचारधारा (वही) = क्रूर, हिंसक विचारधारा।

रामायण में प्रयुक्त स्थानों के नामों में अयोध्या का नाम लाक्षणिक रूप में किया जाता है (अयोध्या जैसा शांतिपूर्ण स्थान)। इस शब्द का विकास जातिवाचक शब्द में किया जा रहा है जिसका अर्थ है—शांतिपूर्ण स्थान।

अब तो न वह अयोध्या है और न वह राम (रेणु, मैला आंचल, 77)
अर्थात् अब बहुत ही खराब जमाना आ गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, यदि जातिवाचक शब्दों के विकास पर विचार किया जाए तो ज्ञात होगा कि तुलनात्मक शब्दों को केवल एक अर्थ में सीमित रखने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। नीचे इसका उदाहरण दिया जा रहा है।

मगर तुम क्या जानो—मेरी इस छोटी सी अयोध्या के राम को

(मनोज, बड़ी बहू, 24)

यहां अयोध्या का अर्थ शांतिपूर्ण नगर या प्रदेश से नहीं है बल्कि एक परिवार और उसके घर में से है जो अब तक लड़ाई-झगड़े से मुक्त था। इसका अर्थ यह है कि इस तुलनात्मक वाक्यांश में 'शांतिपूर्ण' शब्द का स्थान पहले आता है न कि स्वयं स्थान का।

2. प्रकरणों के नाम, संबंध तथा सामान्य तथ्य

संख्या एक के अधीन उल्लिखित व्यक्तिवाचक नामों के विपरीत हमें समस्त पदों में दो या अधिक घटक मिलते हैं। उपर्युक्त व्यक्तिवाचक नामों की भांति आपको रामायण से अन्वित विन्यास के अर्थ को अलग करने की प्रवृत्ति मिलेगी अर्थात् आपको यह ज्ञात होगा कि शब्दों का प्रयोग इस ढंग से किया जा रहा है कि उनमें अब सामान्य तथ्यों का निरूपण किया जाता है। इस प्रकार अब ऐसे शब्दों या अन्तिम विन्यास का प्रयोग किया जा रहा है जिनको हिंदी शब्दावली में सामान्य अर्थ के साथ स्वीकार किया जा रहा है। इनके व्यापक रूप से प्रयोग किए गए उदाहरण इस प्रकार हैं :

राम कहानी : का मूल अर्थ राम की कहानी से है।
सामान्य अर्थ : दुःख-दर्द की लंबी कहानी

यहां 'पृष्ठभूमि' केवल एक प्रकरण नहीं केवल रामायण की संपूर्ण घटनाओं से बनी है। इस प्रकार राम कहानी का प्रयोग मजाकिया या केवल लंबी कहानी कहने के अर्थ में नहीं किया जा सकता, बशर्ते कि उसका कोई व्यंग्यार्थ न हो।

लक्ष्मण रेखा : इसका मूल अर्थ लक्ष्मण द्वारा सीता के चारों ओर खींची गई रेखा से है जिसको लांघना स्वयं सीता जी की सुरक्षा के लिए निषिद्ध था।
सामान्य अर्थ : निषेद या निषेद दर्शानेवाली रेखा।

मूल स्थितिपरक प्रसंग इस ढंग से समाप्त हो जाता है कि इस अन्वित विन्यास का अर्थ ऐसे निषेध से भी होता है जो किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं पर लागू किया गया हो।

अपने को लक्ष्मण रेखा में कैसे बांधा जा सकता है?
(प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, 68)

लंका कांड : इसका मूल अर्थ लंका में आग लगाना और हनुमान द्वारा उस द्वीप का सर्वनाश करना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामान्य अर्थ : सर्वनाश, लक्ष्य, संघर्ष, उड़ान, आगजनी ... तो गांव में लंका कांड नहीं होता (रेणु मैला आंचल, 217)

हम अभी ऐसी अभिव्यक्तियों के विकास के और उदाहरण प्रस्तुत करेंगे जो मूलतः किसी विशेष स्थिति या संबंध से जुड़ी थीं।

वनवास : मूल अर्थ : वन में रहना। *सामान्य अर्थ* : निर्वासन।

राम वाण : मूल अर्थ राम का तीर, *सामान्य अर्थ* अमोघ साधन।

राम राज्य : मूल अर्थ : राम का शासन काल, *सामान्य अर्थ* : आदर्श शासन, जनसाधारण के साथ न्याय करना।

राम राज्य के पैरोडी के रूप में विशेषतः समाचार पत्रों में आप *'रावण राज्य'* का उल्लेख भी पाएंगे। यहां भी, रामायण विषयक ज्ञान द्वारा प्रदत्त मूलतः स्थितिपरक शब्दों की गुणार्थक विषय-वस्तु संभवतः अतिरिक्त घटक के रूप में जीवित एवं प्रभावी रह सकती है। विशेष कोशीय साधनों द्वारा यह संभावना व्यक्त की जा रही है। उनकी सहायता से नव-निर्मित सामान्य शब्दों का प्रयोग पदविन्यास इकाइयों में किया जा सकता है।

अपनी कहानी सुनाना : किसी व्यक्ति द्वारा अपने दुःख-दर्द कहना।

लक्ष्मण रेखा खींचना : निषेद प्रदर्शित करने वाली रेखा खींचना।

संयुक्त शब्द—'रामवाण छोड़ना' भी संभव है, जिसका अर्थ है—अचूक साधनों का प्रयोग या उनकी आजमाइश करना।

'छोड़ना' क्रिया का अर्थ प्रक्षेप करना भी है। अतः इसका प्रयोग *'वाण'* शब्द के साथ साथ ही किया जाता है। यह इस शब्द के नए अर्थ 'अचूक साधन' में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान नहीं है। इसका अर्थ केवल पृष्ठभूमि जानने के बाद लगाया जा सकता है।

3. लोकोक्तियां और कहावतें

किसी वाक्य में प्रयुक्त कई लोकोक्तियां और कहावतें होती हैं जो रामायण में वर्णित घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करता है और उसका सामान्यीकरण करता है और सामान्य सामाजिक अनुभवों का उल्लेख करता है। इस मामले में भी लाक्षणिक प्रयोग और अर्थ के सामान्यीकरण के माध्यम से दोबारा अर्थ निकाला जा सकता है।

हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं :

लंका में सब बावन गज के/लंका में से जो निकले सौ बावन गज का/लंका में सब लोग ऊंचास हाथ के हैं।

लंका में सब बावन गज लंबे हैं—यहां सब समान ऊचाई के हैं।
यहां सब दुष्ट हैं/मूर्ख हैं
या
घर का भेद लंका ढावे/लंका ढाय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिवार में देशद्रोही होने के कारण लंका नष्ट हो गई (रामायण में जब राम से युद्ध हो रहा था, रावण का भाई विभीषण शत्रु से मिल गया)

यदि अपने व्यक्तियों में कोई देशद्रोही होगा तो नाश हो जाएगा।
या
महिमा घटी समुद्र की रावण बसो/बसा पड़ोस।

समुद्र की महिमा इसलिए कम हो गई क्योंकि उसके निकट रावण रहता था बुरे पड़ोस के कारण आपकी ख्याति को क्षति पहुंचती है।

निम्नलिखित कहावतों को लोकोक्तियों के रूप में कतई वर्गीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि उनमें रामायण के मुख्य चरित्रों की ऐसी भूमिका का संकेत किया जा रहा है जो सबको ज्ञात है तथा उनका प्रयोग सामान्यीकरण करने वाले ढंग से विशेष परिस्थितियों में भी किया जाता है।
यहां उनका उल्लेख किया जा सकता है :

'सब रामायण पढ़ गए सीता केरी जोय'?

आपने सब तरह से रामायण पढ़ ली है लेकिन आपको यह पता नहीं है कि सीता किसकी पत्नी थीं।
या
'सारी रामायण हो चुकी सीता किसकी जोय?'
आपने संपूर्ण रामायण पढ़ ली है किंतु यह पता नहीं है कि सीता किसकी पत्नी थी?
या *''सारी रामायण पढ़ गए पर यह न जाना कि राम राक्षस था या रावण?''*
आपने सारी रामायण पढ़ ली है पर यह पता नहीं लगा कि राम राक्षस था या रावण।

इन कहावतों का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए व्यंग्यात्मक रूप में किया जा सकता है जो कुछ भी नहीं समझता हो या समझ पाया हो, यद्यपि विषय की पूर्ण शिक्षा दी गई हो क्योंकि भारत में प्रत्येक व्यक्ति सीता, राम या रावण की भूमिका करने के बारे में जानता है। यहां, हिंदी भाषा के विशेष क्षेत्रों को प्रभावित करनेवाली सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के रूप में रामायण का संक्षिप्त सर्वेक्षण देना ही पर्याप्त होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उदाहरणों की सूची और अधिक विस्तृत हो सकती थी और यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जो तुलनात्मक शब्द (रूपक, लक्षणा आदि) लिए गए हैं उनका विस्तृत विश्लेषण किया जा सकता था। परंतु हमारा यह लक्ष्य नहीं था, हम तो केवल विषय-वस्तु के रोचक पक्षों पर विचार करना चाहते थे।

अंत में हम संक्षेप में कुछ कहना चाहेंगे कि हमारे विषय के संबंध में शब्दकोश कितने उपयोगी रहे हैं। हमने ऐसे कोशों का उपयोग समीक्षात्मक दृष्टि से किया है और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम इस बात की आवश्यकता महसूस करते हैं कि जातिवाचक नामों और स्थितिपरक अभिव्यक्तियों को द्विभाषी शब्द कोशों में उल्लिखित क्षेत्र से स्वतंत्र कोश विषयक इकाइयों तथा वाक्य रचना इकाइयों के रूप में शामिल किया जाए और इस प्रकार भाषा के अंतर्गत होने वाले विकासों के प्रति न्याय किया जाए क्योंकि गैर भारतीय पाठकों को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विषय में इतना विस्तृत ज्ञान नहीं होता कि वे व्यक्तिवाचक नाम आदि की संपूर्ण रूपांतरण प्रक्रिया को समझ सकें। □

मूल अंग्रेजी से प्रेमदास द्वारा अनूदित

उद्धृत संदर्भ साहित्य

1. हिंदी साहित्य

भीष्म साहनी, बसंती, दिल्ली ओ.जे.
दिनमान, 10/82

मनोज, बड़ी बहू, दिल्ली, बो.जे.

उषा प्रियंवदा, पचपन खंभे लाल दीवारें, दिल्ली, 1976

फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, दिल्ली, 1977

2. सामान्य

के. आमेर आएनफ्यूरुंग इन डी स्प्राखुविषशाफ्त, हाले, 1958

के मायल्यूस, गशिषते डेअर लिटरातूर इस आल्तन इण्डियन लाएपत्सिस, 1983

शिपान, आएनफ्यूरुंग इन डी जेमासियोलोगी, लाएपत्सिस, 1975

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रेमचंद : हिंदी गद्य के पिता

डॉ. तात्याना रुत्कोव्स्का

प्रेमचंद जी वास्तव में आधुनिक हिंदी गद्य के पिता हैं, लेकिन इसके अलावा वे यथार्थ-वादी धारा के निर्माता थे। बीसवीं शताब्दी के शुरू में वे पहले लेखक हो गए जिन्होंने जीवन की सामाजिक समस्याओं की ओर अपना ध्यान लगाकर अपनी रचनाओं में बड़े कौशल से इन समस्याओं का वर्णन किया। वे भी पहले ही थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं के पृष्ठों पर नए पात्रों के समावेश की संभावना दी थी। अधिकांशतः वे पात्र निम्नकोटि के थे। पात्रों के बीच में प्रथमतः भारतीय किसानों ने मुख्य स्थान ग्रहण किया। प्रेमचंद जी भारतीय गांव को बहुत अच्छी तरह जानते थे, किसानों की समस्याएं समझते थे, क्योंकि गांव में पैदा हुए थे, रहते थे और काम करते थे। किसानों के कठिन जीवन का चित्रण करते हुए, प्रेमचंद जी जमींदारों से किसानों के सच्चे संबंध बड़ी कुशलता तथा जानकारी से दिखाते थे। कभी-कभी वे कम या अधिक मात्रा में उन संबंधों को आदर्श बनाते थे। इसीलिए 'प्रेमाश्रम', 'संग्राम' तथा 'रंगभूमि' जैसी रचनाओं में मुंशीजी उन जटिल समस्याओं का कल्पनावादी प्रकार से समाधान करते थे। किंतु याद करना चाहिए कि प्रेमचंद जी ने महात्मा गांधी के आंदोलन के प्रभाव से अपनी ये कृतियां लिखी थीं। गोदान में, जो लेखक का अंतिम उपन्यास था, उन्होंने बड़े जोर से गांव की भयानक वास्तविकता का वर्णन किया था। उस समय उन्होंने अपनी आदर्शवादी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृष्टियों से इन्कार किया था। इसीलिए गोदान मुंशीजी का सर्वश्रेष्ठ तथा हृदयग्राही उपन्यास है।

प्रेमचंद जी मध्यवर्ग के जीवन के वर्णन में बड़े विशेषज्ञ थे। उनमें विभिन्न निम्नाधिकारियों के जीवन का चित्रण बहुत सच्चा और सविस्तार है। महाजनों और पुलिस अफसरों के अत्याचारों के भंडाफोड़ में लेखक ने बड़ी सफलता प्राप्त की है।

जो लेखक प्रेमचंद जी के पहले थे, उनमें ऐसा कोई नहीं था जिसकी रुचि साधारण जनता के जीवन में हो। अपनी रचनाओं में प्रेमचंद जी ने समाज के उपेक्षित लोगों की ओर पाठकों का ध्यान खींच लिया। उसमें वे भी नई रीति चलानेवाले (इन्नोवेटर) थे।

उनकी कहानियों और उपन्यासों में भारतीय स्त्री की समस्या एक विशेष स्थान पायी। विधवाओं और औरतों के दुखदायक भाग्य को प्रेमचंद जी ने मार्मिक प्रकार से चित्रित किया। वे स्त्रियों की मानसिक प्रकृति अच्छी तरह जानते और समझते थे। उनके प्रति अपनी रचनाओं में बड़ी सहानुभूति प्रकट करते थे। लेकिन इन समस्याओं का मुंशी जी कभी-कभी काल्पनिक समाधान पेश करते थे, क्योंकि वे सुधारने में विश्वास रखते थे। सेवा सदन लीजिए, जहां प्रेमचंद जी पाठकों की नजरों में न केवल अच्छे लेखक हैं बल्कि सुधारक तथा उपदेशक भी हैं उनकी ऐतिहासिक कहानियां बहुत प्रसिद्ध और सुंदर हैं (सती, रानी सारंधा) यहां स्त्रियां साहसी और अभिमानी हैं, पति के साथ साथ लड़ती हैं। आधुनिक स्त्री की तुलना में, जो निष्क्रिय है और पति की छाया में छिपी हुई है यह कैसा अंतर है?

प्रेमचंद जी की रचनाओं की भाषा के विषय में कुछ शब्द कहना चाहिए। क्योंकि इसी क्षेत्र में उन्होंने बहुत कुछ किया। उनकी भाषा न शुद्ध हिंदी है न साफ उर्दू। इसको 'हिंदुस्तानी' का नाम देना उपयुक्त होगा। हर सामाजिक वर्ग के लिए यह सुबोध और सहज है। इसमें बहुत मुहावरे तथा लोकोक्तियां हैं जो भाषा को बड़ी मात्रा में सजीव करती और सजा देती हैं। भिन्न उपमाएं भी बहुत सुंदर हैं। एक और बात है जो भाषा से संबंधित है और जिस पर ध्यान देना चाहिए। मुंशीजी की रचनाओं के पात्र अपनी सामाजिक स्थिति के अनुकूल भिन्न बोलियों से काम लेते हैं। उदाहरण के लिए किसान लोग अपनी ग्रामीण बोली में बातचीत करते हैं, मुसलमान लोग उर्दू बोलते हैं इत्यादि।

अन्य लेखकों पर स्वामी प्रेमचंद का प्रभाव बहुत था। बहुत लेखकों के लिए वे आदर्श हो गए। वे न केवल प्रसिद्ध साहित्यकार थे बल्कि अपने देश के सामाजिक कार्यकर्ता थे।

पोलैंड में प्रेमचंद का महत्व

यद्यपि प्रेमचंद जैसा प्रसिद्ध लेखक हमारे देश में साधारणतः नहीं है, फिर भी ऐसे लोग हैं जो उनका नाम और उनकी रचनाएं अच्छी तरह जानते हैं तथा उनका आदर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करते हैं। हमारे विश्वविद्यालय में भारतीय विभाग है जिसके बारे में मैं कुछ शब्द लिखना चाहती हूं। विभाग में संस्कृत, हिंदी, बंगला, तमिल आदि भारतीय भाषाएं पढ़ायी जाती हैं। इन भाषाओं का साहित्य भी पढ़ाया जाता है। हमारे विद्यार्थी पढ़ाई के तीसरे साल से हिंदी साहित्य से परिचित हो जाते हैं। आदत के अनुसार आधुनिक साहित्य प्रेमचंद जी की रचनाओं से शुरू होता है। हमारे पुस्तकालय में प्रेमचंद जी की विविध कहानियों के संग्रह हैं, उनके कई उपन्यास भी हैं। विद्यार्थियों को किसी कहानी या किसी उपन्यास का पोलिश अनुवाद करना है। साथ ही हम आधुनिक हिंदी गद्य के पिता से जानकारी कराते हैं और साहित्य के विकास में उनके महत्व पर जोर देते हैं। उनकी भाषा और शैली की विशेषता के बारे में हम बताते भी हैं। एम.ए. डिग्री प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को चुने हुए विषय पर एक निबंध लिखना होता है। इन निबंधों के प्रसंग भिन्न भिन्न होते हैं। कई निबंध प्रेमचंद के बारे में थे। उदाहरण के लिए प्रेमचंद जी के गोदान में किसानों का जीवन या प्रेमचंद की कहानियों की भाषा में विविध कहावतें या प्रेमचंद की रंगभूमि पर कुछ विचार इत्यादि।

मैं विभाग की अध्यापिका हूं। हिंदी व्याकरण और हिंदी साहित्य का इतिहास बहुत सालों से पढ़ाती हूं। मेरी वैज्ञानिक रुचि मध्यकालीन साहित्य पर एकत्रित होती है। खासकर भूषण की प्रसिद्ध रचना शिवराज भूषण पर। प्रेमचंद जी के बारे में मैंने दो-तीन निबंध लिखे और छापे थे। कई कहानियों का अनुवाद भी किया था। उदाहरण के लिए 'सती', 'शतरंज के खिलाड़ी' 'रानी सारंधा' इत्यादि। अनुवाद के क्षेत्र में यूलिउस पर्नोवस्की जी ने, जो हमारे विभाग में काम करते हैं, बहुत कुछ किया। कई साल हुए प्रेमचंद की कहानियों का एक संग्रह (ठाकुर का कुआं) पोलिश भाषा में प्रकाशित किया गया था। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राष्ट्र भाषा के बिना राष्ट्र-बोध नहीं

राष्ट्रीयता के उपादानों में जाति, धर्म और राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थिति, संस्कृति और भाषा, इन पांचों ही अंगों का होना आवश्यक है। लेकिन हमारे विचार में एक भाषा का होना मुख्य है। राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहां राष्ट्र है वहां राष्ट्रभाषा का होना लाजिमी है। अगर संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा। अंग्रेजी भाषा का प्रचार आपात धर्म है। इसे हम राष्ट्रभाषा का पद नहीं दे सकते। भाषा ही राष्ट्र, साहित्य और संस्कृति का निर्माण करती है, आदर्शों की सृष्टि करती है। नदियों और पहाड़ों से राष्ट्रीयता के विकास में जो बाधा पड़ती थी, उसे रेल और हवाई जहाजों ने मिटाना शुरू कर दिया है। अगर एक संस्कृति के रहते हुए भी एक राष्ट्रभाषा का आधार न रहे तो ऐसा राष्ट्र स्थाई नहीं हो सकता। एक भाषा बोलने वालों में कभी-कभी विरोध उत्पन्न हो जाते हैं और उनके पृथक राष्ट्र बन जाते हैं, संयुक्त अमरीका इसका उदाहरण है। किंतु इसकी केवल एक मिसाल है। इसके प्रतिकूल एक नस्ल, एक संस्कृति और एक धर्म के अंतर्गत भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के अनेक उदाहरण हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि राष्ट्र-निर्माण में भाषा का स्थान सबसे महत्व का है।

—प्रेमचंद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मारीशस में हिंदी भाषा और साहित्य

मुनीश्वरलाल चिंतामणि

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में जब भारतीय मजदूरों की आर्थिक दशा में सुधार होने लगा था, तब उनका ध्यान हिंदी-शिक्षण की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने दो-चार पाठशालाओं का निर्माण भी किया जिन्हें वे 'बैठका' कहते थे। 'बैठका' के अभाव में वे वृक्षों की छाया या खुले स्थानों में अपने बच्चों को हिंदी का ज्ञान कराने लगे। पढ़ाई का प्रारंभ ईश-वंदना से होता था, यथा :

राम गति देहु सुमति
सर-सर सर-सर सनझा कारी
सोने रूप गिरवर धारी ।।
जे जाने गिरवर के भेद।
नित उठ पूजे गनपत देव।।

बच्चों को स्वर-व्यंजन तथा मात्राएं क्रम से रटाई जाती थीं। फिर वे धीरे-धीरे शब्दों एवं वाक्यों को पढ़ने में समर्थ होते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गैर सरकारी संस्थाओं का योगदान

क. *आर्य समाज की देन*

मारीशस में आर्य समाज की स्थापना सन् 1910 में हुई, आर्य समाज के आंदोलनों के साथ जागरण की जो लहर आई, उसके कारण हिंदी प्रचार को प्रोत्साहन मिला। इस संस्था के उपदेशकों ने हिंदू समाज से अंधविश्वास हटाने की कोशिश की। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज पीछे नहीं रहा।

आजकल डी.ए.वी. कालेज 'आर्यसभा' की देख-रेख में सुचारू रूप से चल रहा है। यह सभा 160 हिंदी सायंकालीन पाठशालाएं, दो अंग्रेजी प्राथमिक स्कूल, एक कॉलेज, गयासिंह अनाथालय, ध्रुवानंद पुस्तकालय आदि का संचालन करती है। इसकी 306 शाखाएं मारीशस के कोने-कोने में स्थित हैं। पाक्षिक 'आर्योदय' पत्र का प्रकाशन तथा धार्मिक परीक्षाओं का आयोजन, स्थानीय रेडियो से 'वेदवाणी' कार्यक्रम का प्रसारण, 'आर्य महिला समाज' और आर्य युवक संघ द्वारा सत्संग, हवन-यज्ञों, संस्कारों, विचार-गोष्ठियों का आयोजन आदि 'आर्य सभा' के अनेकविध कार्य हैं, जिनसे हिंदी भाषा को न केवल प्रश्रय मिला, बल्कि उसके प्रचार-प्रसार का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

ख. *हिंदी प्रचारिणी सभा*

सन् 1926 में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने हिंदी-प्रचार के क्षेत्र में कदम रखा। इस संस्था की देख-रेख में देश के कोने-कोने में प्राथमिक हिंदी पाठशालाएं खोली गईं। ऐसी पाठशालाओं में सायंकाल में पढ़ाई होती थी। प्रायः चार से सात बजे तक शिक्षण-कार्य चलता था जो निःशुल्क होता था। अध्यापक गण सेवा-भावना से बड़ी निष्ठापूर्वक बच्चों को पढ़ाते थे।

अब तक शिक्षण-पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। बच्चे पाठ रट लेते थे और लिखित कार्य के रूप में केवल श्रुतिलेख होता था। किंतु छठी कक्षा में थोड़े से व्याकरण का ज्ञान भी दिया जाने लगा। उपर्युक्त सभा की ओर से इन विद्यालयों में वार्षिक परीक्षाएं भी होती थीं।

इन दिनों हिंदी प्रचारिणी सभा की देख-रेख में 150 सायंकालीन प्राथमिक विद्यालय हिंदी-शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। प्रवेशिका परीक्षा से लेकर हिंदी विश्वविद्यालय, प्रयाग भारत की उत्तमा परीक्षा तक की पढ़ाई प्रचारिणी सभा द्वारा हो रही है।

मारीशस सरकार का प्रयत्न

1. सन् 1946 से पहले कई सरकारी पाठशालाओं में अंशकालिक तौर पर हिंदी भाषा की पढ़ाई होती रही। इसके बाद व्यवस्थित रूप से पूरे समय के हिंदी-शिक्षण की व्यवस्था की गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

2. प्रो. रामप्रकाश के मारीशस आगमन से पहले हिंदी बहुत कम स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। हिंदी अध्यापक प्रशिक्षित नहीं थे। वे सप्ताह में केवल दो घंटे पढ़ाते थे और उनकी माहवार तनख्वाह मात्र साढ़े बारह रुपए थी।
3. मारीशस सरकार के निवेदन पर सन् 1949 में प्रोफेसर रामप्रकाश एम.ए. भारत से मारीशस बुलाये गए। उन्होंने प्रशिक्षण महाविद्यालय में भारतीय भाषाओं हिंदी, तमिल, तेलुगु, मराठी और उर्दू के अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का कार्य संभाला। इस तरह मारीशस में भारतीय भाषाओं का विधिवत् शिक्षण प्रारंभ हुआ।
4. सन् 1956 में प्रो. रामप्रकाश ने कुछ वरिष्ठ हिंदी अध्यापकों के सहयोग से मारीशस की प्राथमिक पाठशालाओं के लिए 'नवीन हिंदी' पुस्तकमाला, पहली कक्षा से लेकर छठी कक्षा तक—छः भागों में तैयार की। ये पाठ्य पुस्तकें लगभग दो दशकों तक चलीं।

आजकल तो लगभग सभी प्राथमिक स्कूलों मे हिंदी पढ़ाई जाती है। महात्मा गांधी संस्थान नए अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। सन् 1984 में एक नया प्राथमिक शिक्षाक्रम चलाया गया जिसके फलस्वरूप हिंदी की प्राथमिक कक्षाओं के लिए नवीन पाठ्य पुस्तकें तैयार की गईं। संस्थान हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार के लिए समय-समय पर भारत से भाषा-विशेषज्ञों को आमंत्रित करता है।

मारीशस में माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण

मारीशस में हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य में हिंदी प्रचारिणी सभा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अपनी स्थापना के प्रारंभिक वर्षों में सभा का ध्यान प्राथमिक हिंदी-शिक्षण की ओर रहा। किंतु एक दशक बाद उसने माध्यमिक स्तर पर हिंदी पठन-पाठन एवं परीक्षा की योजना बनाकर हिंदी प्रचार के क्षेत्र में एक ठोस कदम उठाया।

सन् 1946 में हिंदी प्रचारिणी सभा की मांग पर हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) ने मारीशस में 'हिंदी परिचय' परीक्षा की व्यवस्था की। उस समय इस परीक्षा में लगभग 12 विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। इस परीक्षा का उद्देश्य है—'भाषा-तत्वों के अध्ययन द्वारा हिंदी की माध्यमिक शिक्षा की ओर परीक्षार्थियों को प्रवृत्त करना।' सभा ने हिंदी परिचय परीक्षा में भाग लेने वाले छात्र-छात्राओं की तैयारी हेतु 'हिंदी भवन' में पढ़ाई की व्यवस्था कर दी। इसी तरह मॉरीशस के अन्य प्रांतों में भी इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केंद्र खोले गए जिसके परिणाम स्वरूप प्राथमिक सायंकालीन पाठशालाओं को सुचारू रूप से चलाने के लिए परिचय परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त होने लगा।

सभा का कार्य-क्षेत्र धीरे-धीरे विस्तृत होता गया। इस की वजह यह थी कि न केवल लोग माध्यमिक शिक्षा में रुचि लेने लग गए थे, बल्कि इस की मांग दिनों दिन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बढ़ती गई। इसलिए सन् 1935 में हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से तथा हिंदी प्रचारिणी सभा की देखरेख में 'प्रथमा परीक्षा प्रारंभ कर दी गई। सात साल बाद 'मध्यमा' और 'उत्तमा' परीक्षाओं की भी यहां व्यवस्था हुई। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि इन परीक्षाओं में प्रति वर्ष 4000 परीक्षार्थी भाग लेने लगे। आज मारीशस में करीब 15 ऐसे माध्यमिक शिक्षण-केंद्र हैं जहां अंशकालिक रूप में हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग) के पाठ्या-क्रमानुसार हिंदी भाषा एवं साहित्य के पठन-पाठन का प्रबंध है। यह मार्के की बात है कि कैंब्रीज तथा लंदन की परीक्षाओं में पास व्यक्तियों के अतिरिक्त हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण लोगों को भी सरकारी प्राथमिक पाठशालाओं में अध्यापक के रूप में नियुक्त किया जाता रहा है। सरकार ने हिंदी प्रचारिणी सभा द्वारा संचालित सभी परीक्षाओं को मान्यता दी है।

यद्यपि स्वतंत्रता पूर्व काल में दो-चार गैरसरकारी माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी-शिक्षण का प्रबंध था, तथापि हिंदी की सुव्यवस्थित रूप में शिक्षण की शुरुआत स्वतंत्रता के बाद ही सन् 1974 में सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी को स्थान प्राप्त होने पर ही हुई। आज 22 स्टेट सेकंडरी तथा 75 प्रायवेट सेकंडरी स्कूलों में फोर्म वन से एस.सी. तक हिंदी की पढ़ाई होती है। कुछ स्कूलों में तो एच.एस. प्रिंसिपल लेवल तक हिंदी पढ़ाने की भी व्यवस्था है।

महात्मा गांधी संस्थान का यह प्रयास रहा है कि मारीशस में माध्यमिक स्तर पर हिंदी-शिक्षण को ठोस नींव पर खड़ा किया जाए। हिंदी माध्यमिक स्कूलों के लिए पाठ्यक्रम एवं हिंदी पाठ्य-पुस्तकें तैयार करना, संबंधित अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, हिंदी शिक्षण पर वार्षिक विचार गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करना आदि माध्यमिक हिंदी शिक्षण-क्षेत्र में संस्थान का बहुविध योगदान रहा है। संस्थान की ओर से हिंदी शिक्षण के स्तर को ऊंचा उठाने का भरसक प्रयास किया जा रहा है। और हिंदी-प्रोत्साहन विषयक योगदान को ध्यान में रखते हुए अत्यंत निष्ठा से अपने दायित्व का निर्वाह कर रहा है। आर्य-सभा, हिंदू महासभा और आर्य रविवेद प्रचारिणी तथा ऐसी स्वैच्छिक संस्थाएं हैं जिन्होंने हिंदी प्रचार के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करते रहने की दिशा में अनेक प्रयत्न किए हैं। ये संस्थाएं प्राथमिक हिंदी शिक्षण के साथ ही माध्यमिक हिंदी शिक्षण के क्षेत्र में अपने ढंग से सक्रिय सहयोग देती आ रही हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राथमिक एवं माध्यमिक दोनों स्तरों पर हिंदी शिक्षण को विकासोन्मुख स्थिति तक पहुंचाने में हिंदी प्रचारिणी सभा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दूसरी ओर महात्मा गांधी संस्थान अपने हिंदी विभाग के माध्यम से नवीन शिक्षण-विधियों को अपनाते हुए हिंदी को प्राथमिक और माध्यमिक दोनों स्तरों पर आगे बढ़ाया है।

'महात्मा गांधी संस्थान' ने उच्च स्तर पर भी हिंदी शिक्षा की व्यवस्था की है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सन् 1988 से हिंदी का एक डिप्लोमा कोर्स चलाया जा रहा है। सन् 1990 में बी.ए. आनर्स हिंदी का प्रावधान किया गया। यह हिंदी के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना मानी जायेगी कि मारीशस विश्वविद्यालय ने अंग्रेजी तथा फ्रेंच भाषाओं के साथ ही अपने शिक्षाक्रम में हिंदी को मान्यता प्रदान की। इस डिग्री कोर्स के आरंभ हो जाने से यहां छात्रों को हिंदी साहित्य का गहरा अध्ययन करने का अवसर सुलभ हो गया है जिससे हिंदी का भविष्य उज्जवल दिखाई दे रहा है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के अन्य माध्यम

हिंदी भाषा को लोकप्रिय बनाने की दिशा में स्थानीय रेडियो तथा दूरदर्शन केंद्र का भारी सहयोग रहा है। हिंद महासागर क्षेत्र में शायद मारीशस ही एक ऐसा देश है जहां इन साधनों द्वारा अंग्रेजी-फ्रेंच के अतिरिक्त हिंदी भाषा में समाचार प्रसारित किए जाते हैं। हिंदी फिल्मों की मांग तो दिनों दिन बढ़ती जा रही है। मारीशस में हिंदी के पाक्षिक, मासिक तथा त्रैमासिक हिंदी पत्र निकलते हैं। भारत की तरह यहां भी कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। हर सप्ताह देश के किसी न किसी प्रांत में विद्वानों के द्वारा रामायण, भागवत, गीता, उपनिषद् आदि पर प्रवचन होते रहते हैं।

हिंदी साहित्य

मारीशस में जहां हिंदी के पठन-पाठन पर पूरा ध्यान दिया गया, वहां साहित्य-सृजन की दिशा में भी अच्छा काम हुआ है। यद्यपि साहित्य की प्रत्येक विधा के विकास में यहां के साहित्यकारों का योगदान रहा है, तथापि गद्यकार की अपेक्षा कवियों की संख्या अधिक रही है, पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' मारीशस के प्रथम कवि हैं जिन्होंने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए कविता को माध्यम बनाया। 'रसपुंज कुंडलियां' और 'शताब्दी सरोज' उनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियां हैं।

मारीशस के अन्य प्रसिद्ध कवियों में ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', सोमदत्त बखोरी, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि आदि नाम स्मरणीय हैं। नए हस्ताक्षरों में हेमराज सुंदर, राजवंती अजोधिया, सुमति संधु आदि हैं।

इन कवियों ने विविध विषयों पर कविता की है। प्रारंभ में जहां सामाजिक बुराइयों पर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाता था तथा समाज-सुधार को काव्य-सृजन का उद्देश्य समझा जाता था, वहां समय के साथ चलकर मारीशस को परतंत्रता की बेड़ी से मुक्त करने के लिए भी कवियों ने अपनी रचनाओं में वाणी दी।

ऐसी भी बहुत-सी कविताएं लिखी गईं जिनका विषय भारत अथवा भारतीय संस्कृति रहा है। स्वदेश-प्रेम और प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण करने में यहां के कवि पीछे नहीं रहे। आज के कवि जन-जीवन एवं अपने परिवेश से जुड़कर काव्य-सृजन कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कवियों की तुलना में उपन्यासकारों की संख्या बहुत ही कम है। सन् 1960 में कृष्णलाल बिहारी का लघु उपन्यास—'पहला कदम' पाठकों के सामने आया। उपन्यास के क्षेत्र में अभिमन्यु अनत का योगदान सर्वाधिक है। उनके अब तक बीस से अधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ तो भारत के विश्वविद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के रूप में निर्धारित हैं। अनत जी के जीवन और कृतित्व पर शोध प्रबंध भी लिखे गए हैं।

नए उपन्यासकारों में रामदेव धुरंधर का नाम बहुचर्चित है। आपके उपन्यासों की पृष्ठभूमि मारीशस की ही धरती हुआ करती है। मारीशंस के अधिकांश हिंदी उपन्यासों में जहां मारीशस जीवन की झांकी प्रस्तुत की गई है, वहां यहां की समस्याओं को भी उकेरा गया है।

इस टापू के कहानीकारों में अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, पूजानंद नेमा, दीपचंद बिहारी, भानुमति नागदान आदि प्रख्यात हैं, इनकी कहानियां न केवल भारत की पत्रिकाओं में छपती रही हैं, बल्कि मारीशस में प्रकाशित होने वाले कहानी-संग्रहों में भी इनकी रचनाओं को सम्मिलित किया जाता है।

मारीशस में नाटक बहुत कम लिखे गए हैं। अच्छे नाटककारों में अभिमन्यु अनत, अस्तानंद सदासिंह, महेश रामजियावन आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमें कई नाटकों का मंचन भी होता रहा है। कुछ नाटक तो भारत के प्रमुख नगरों में भी मंचित हो चुके हैं।

निबंधकारों में पंडित वासुदेव विष्णुदयाल का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। आपने धर्म, संस्कृति और दर्शन आदि विषयों पर अनेक गंभीर निबंध लिखे हैं। पंडित विष्णुदयाल जी के निबंध एवं लेख भारत के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। मारीशस में व्यक्तिगत रूप से हिंदी का प्रचार-प्रसार करने वालों में पंडित वासुदेव विष्णुदयाल का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

नए निबंधकारों में डॉ. ठाकुरदत्त पांडे, डॉ. मुनीश्वरलाल चिंतामणि, प्रहलाद रामशरण आदि नाम लिए जाते हैं। प्रहलाद रामशरण लोकसाहित्य के मर्मज्ञ हैं। उन्होंने मारीशस लोक कथाओं का न केवल संकलन किया है बल्कि उनको हिंदी में पाठकों के लिए प्रकाशित कराया है।

मारीशस में हिंदी भाषा तथा साहित्य के उत्थान के लिए निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है, जिससे कि मारीशस हिंदी भाषा को विश्व भाषा के रूप में मान्यता दिलाने और हिंदी साहित्य को विश्व साहित्य की गरिमा से मंडित करने में अपना योगदान दे सके। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मारीशस में हिंदी पत्रकारिता का उद्भव और विकास

प्रह्लाद रामशरण

अपने पत्र (हिंदुस्तानी) को दैनिक बनाकर तो उन्होंने (मणिलाल डॉक्टर) बड़ी भूल की है। वह पत्र, खुद में तो कुछ है नहीं। उसका टाइप खराब है, कागज रद्दी है और सामग्री भी वैसी ही। मारीशस में उसके अच्छे सहायक भी तो नहीं हैं तो वह पत्र कैसे ठीक से प्रकाशित हो सके। और पाठक भी इतने कहां हैं। इन सबके संबंध में उनके यहां आने पर सलाह मशविरा करूंगा।

महात्मा गांधी

(संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ग्यारह)

मणिलाल डॉक्टर और हिंदुस्तानी-पत्र

मणिलाल डॉक्टर एम.ए. एल.एल.बी. 13 अक्तूबर 1907 को मारीशस आए। यहां, उन्होंने न्यायालयों में भारतीयों का बचाव करना शुरू किया। वे भारतीयों के स्वत्व और उनके कल्याण की बातें सोचते रहते थे। उन्हीं की पहचान को सुरक्षित रखने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए उन्होंने 'हिंदुस्तानी' नामक पत्र का प्रकाशन 15 मार्च 1909 से शुरू किया था। पत्र के प्रथम पृष्ठ पर के आदर्श वाक्य—'व्यक्ति की स्वतंत्रता! मनुष्य का भाईचारा!! जातियों की स्वतंत्रता!!!' से पता चलता है कि मणिलाल डॉक्टर फ्रांस की जनक्रांति से प्रभावित हुए थे। 1789 में हुई उस जनक्रांति के जरिए यह कोशिश की गई थी जिससे फ्रांसीसी सामाजिक व्यवस्था में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे का समावेश हो।

प्रारंभ में 'हिंदुस्तानी' का प्रकाशन अंग्रेजी और गुजराती में होता रहा, किंतु बाद में उसे अंग्रेजी और हिंदी में परिणित कर दिया गया। किंतु वास्तव में यह बताना असंभव है कि किस तारीख के 'हिंदुस्तानी' के किस अंक से इस पत्र का कायाकल्प किया गया था। क्योंकि उस समाचार पत्र की फाइल, जो 1909 से 1910 तक साप्ताहिक और 1910 से 1913 तक दैनिक निकाली थी, न हमारे अभिलेखागार में न अन्यत्र उपलब्ध है।

परंतु सौभाग्य से हमारे अभिलेखागार में 'हिंदुस्तानी' के दो अंक सुरक्षित हैं। उसका प्रथम अंक 15 मार्च 1909 को अंग्रेजी और गुजराती में छपा था। और दूसरे अंक की तिथि है 2 मार्च 1913, जो अंग्रेजी और हिंदी में छपा है। किंतु दोनों उपलब्ध अंक साप्ताहिक हैं और दोनों का प्रकाशन माह है, मार्च महीना। यह दुःखजनक बात है कि 'दैनिक हिंदुस्तानी' का कोई अंक अब तक अनुप्लब्ध है, लेकिन इससे इसके अस्तित्व पर संदेह नहीं किया जा सकता है यह इसलिए क्योंकि इसके दैनिक होने का प्रमाण तत्कालीन समाचार पत्रों में तथा सरकारी आफिसल दस्तावेजों में पाया जाता है, विशेषकर 'मारिशस उपनिवेश की नीली पुस्तक' में। 'हिंदुस्तानी' समाचारपत्र के तिरोहित होने पर महात्मा गांधी के विचार ध्यान देने योग्य हैं।

2 मार्च 1913 के 'हिंदुस्तानी' में हिंदी भाषा की दो सामग्रियां छपी हैं। 'दिवाली' महोत्सव पर एक लंबा महालेख और इसी विषय पर सत्रह पंक्तियों की एक छोटी सी कविता। अतः 'हिंदुस्तानी' पत्र के अन्य किसी भी अंक के अभाव में जिसमें देवनागरी लिपि की छाप हो, उपर्युक्त अंक को ही वह दस्तावेज माना जाएगा जिस पर आधारित है मारीशस का हिंदी आंदोलन।

मारीशस आर्य पत्रिका का जन्म

इस देश में आर्य समाज का प्रथम पत्र था 'मारीशस आर्य पत्रिका' जिसका प्रकाशन 1 जून 1911 से शुरू किया गया था। ओगुस्त तूसें और एच. आदोल्फ, इतिहासकारों के मतानुसार यह पाक्षिक पत्र था जो अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित होता था। रामधन पूरण के मतानुसार, खेमलाल लाला इसके प्रथम संपादक थे। 1913 में यह पत्रिका बंद हो गई थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द ओरियंटल गजट

जिस आर्य समाज आंदोलन के जरिए, बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में इस देश के भारतीयों में नवजागरण आया था, उसी आंदोलन के जरिए इस द्वीप में हिंदी आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता का सूत्रपात संभव हो पाया था। यह रोचक तथ्य है कि शुरू से ही यहां के सनातनी धर्मावलंबी भाइयों ने एक ओर आर्य समाज आंदोलन का जबरदस्त विरोध किया था तो दूसरी ओर मणिलाल डाक्टर की प्रगतिवादी विचारधारा का खंडन किया था। यही नहीं उन्होंने 'हिंदुस्तानी' पत्र का जबरदस्त विरोध किया था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रामलाल तिवारी ने 'ओरियंटल गजट' को जन्म दिया था।

हिंदी समाचार पत्रों का पुनरुत्थान

सन् बीस में हिंदी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के पुनरुत्थान की सार्थकता की अनेक दलीलें दी जा सकती हैं। किंतु इससे पूर्व 1914 से 1919 तक इस देश में हिंदी का कोई पत्र प्रकाशित नहीं हुआ। इसका कारण क्या हो सकता है? क्या भारतीय प्रजा के बीच योग्य नेता का अभाव था या योग्य संपादक का। जो भी हो इसी अवधि में दो घटनाएं घटीं जिनका सीधा असर हिंदी पत्रकारिता पर पड़ा था। प्रथम, भारत से विद्याध्ययन करके पं. काशीनाथ किण्टो का आगमन हुआ था। इन्होंने अल्प समय तक स्वामी स्वतंत्रतानंद के साथ देश भर का दौरा किया और वैदिक धर्म के प्रचार के साथ-साथ हिंदी आंदोलन को मजबूत किया था। इन्होंने 1918 में वाक्वा आर्यन वैदिक स्कूल की स्थापना की और सन् बीस के उत्तरार्द्ध में दो हिंदी पत्रिकाओं को कालक्रम से जन्म दिया था।

मारीशस इंडियन टाइम्स

आर.के. बुधन ने कौलेसर सिंह के सहयोग से एक द्विभासी दैनिक निकालने की आवश्यकता महसूस की और 6 सितंबर से 'मारीशस इंडियन टाइम्स', दैनिक समाचार पत्र को जन्म दिया। 'हिंदुस्तानी' के बाद यह भारतीयों का दूसरा पत्र था। इस दैनिक के कुछ अंक जब मणिलाल डाक्टर के पास फीजी भेजे गए, तब मणिलाल डाक्टर बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि उनकी दृष्टि में मारीशस के भारतीयों ने काफी प्रगति की थी और तब उन्होंने इनको अपना आशीर्वाद दिया था।

'मारीशस इंडियन टाइम्स' एक राजनीतिक पत्र था जो अंग्रेजी-फ्रेंच और हिंदी में निकलता था। इसके अंग्रेजी-फ्रेंच विभाग के संपादक थे फच. द्वारका और हिंदी विभाग के पंडित राम अवध शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मारीशस मित्र

सन् बीस के मध्य में स्थानीय भारतीयों के बीच एक अन्य नेता का आविर्भाव हुआ। वे और कोई नहीं, देश के लखपति जमींदार राजकुमार गजाधर थे। अतः 'मारीशस इन्डियन टाइम्स' के अवसान के कुछ सप्ताह बाद से राजकुमार गजाधर की देखरेख में 25 अगस्तरी 1924 से 'मारीशस मित्र' नाम द्विभाषी दैनिक पत्र का जन्म हुआ।

मारीशस आर्य पत्रिका

सन् बीस में पं. वेणीमाधव रुतिराम और डॉ. भगरु शिवगोविंद के आगमन से स्थानीय आर्य समाज आंदोलन का एक तरह से पुनरुत्थान हुआ था। अतः उग्रधर्म प्रचारक बनाम पत्रकार पं. काशीनाथ किष्टो की देख-रेख में आर्य परोपकारिणी सभा ने 17 अक्तूबर 1924 से 'मारीशस आर्य पत्रिका' का पुनः प्रकाशन शुरू किया था।

आर्य वीर

1925 में आर्य समाज के अहम् महोत्सव के बाद और एक समानांतर संस्था की स्थापना के बाद स्थानीय आर्यसमाज संगठन में एक दरार का पड़ना अस्वाभाविक न था, जिसकी पराकाष्ठा के अंतर्गत मातृ-सभा का विघटन हो गया। तत्कालीन परिस्थितियों से मजबूर होकर, पुराने सदस्यों ने 1927 में 'आर्य प्रतिनिधि सभा' की स्थापना की और पं. काशीनाथ किष्टो को एक और पत्र स्थापित करने का भार सौंपा गया। अतः 3 मई 1929 से 'आर्यवीर' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इसके संस्थापक और संपादक थे, आर्यसमाज के अथक प्रचारक पं. काशीनाथ किष्टो।

इसी दशक में कुछ ऐसी पत्र-पत्रिकाएं थीं जिनका प्रकाशन अल्प समय तक हुआ था। सोमदत्त बखोरी के मतानुसार 'अलंकारिक' का प्रकाशन 1926 में कुछ समय तक हुआ था। इससे एक साल पहले 'सनातन धर्म पत्रिका' का प्रकाशन भी हुआ था। जिसकी सूचना 'मारिशस बिल' के 12.3.1925 में छपी थी। यह पत्र पं. रामलखन शर्मा द्वारा संपादित हुआ था। इसी प्रकार से 1930 में पं. गिरजानंद ने हिंदी भाषा में 'वसंत' नाम की पत्रिका के कुछ अंक प्रकाशित करवाए थे। किंतु इन पत्र-पत्रिकाओं की कोई भी प्रति उपलब्ध नहीं।

सनातन धर्मांक

इस देश के सनातन धर्मावलंबी भाइयों द्वारा 'सनातन धर्मांक' का प्रकाशन 1933 से प्रारंभ हुआ था। इसके संपादक थे निर्भीक विद्वान नरसिंह दास। यह सामूहिक पत्र था जो अंग्रेजी, फ्रेंच और हिंदी में पुस्तकाकार छपता था। यह पत्र हमेशा आर्य समाज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के सिद्धांतों का खंडन-मंडन करता था। इसलिए 'मारीशस आर्य पत्रिका' और 'आर्यवीर' में इस पत्रिका के प्रतिउत्तर में उग्र आलोचनात्मक लेख छपते थे। 'सनातन धर्मांक' का प्रकाशन 1942 में बंद हो गया।

जागृति

आर्य परोपकारिणी का मुख पत्र था 'मारीशस आर्य पत्रिका'। 1939 में अज्ञात लोगों के दवाब में आकर सभा को इसका नाम बदलने पर विवश होना पड़ा। इसकी सूचना पाकर भवानी दयाल संन्यासी को क्षोभ हुआ और उन्होंने इस निर्णय की आलोचना की। इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप 'मारीशस आर्य पत्रिका' का पुनः नामकरण किया गया और 'जागृति' नाम से उसका प्रकाशन होने लगा। किंतु कुछ ही समय में द्वितीय विश्व युद्ध की आपातकालीन स्थिति ने 'जागृति' को 'आर्यवीर' के संयुक्त प्रकाशन पर मजबूर कर दिया। इन दोनों पत्रिकाओं का संयुक्त प्रकाशन 1950 तक होता रहा।

जनता और जमाना

डॉ. शिवसागर रामगुलाम विलायत से डॉक्टर बनकर 1935 में स्वदेश लौटे और यहां की राजनीति में कूद पड़े। उनके आंदोलनकारी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर राज्यपाल ने 1940 में उन्हें मनोनीत करके स्थानीय विधान सभा का सदस्य बनाया। उसी वर्ष के अंत में डॉ. रामगुलाम पोर्ट लुई म्युनिसिपल के चुनाव में निर्वाचित होकर 'नगर पालिका' के सदस्य बने। डॉ. रामगुलाम ने जयनारायण राय के सहयोग से कुछ मास पूर्व एक दैनिक को जन्म दिया था और इसके आठ साल बाद उन्होंने एक हिंदी पत्र को भी जन्म देकर हिंदी पत्रकारिता को गति दी थी।

आर्य समाज संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएं 'आर्यवीर-जागृति', 'जनता' और 'जमाना' के अतिरिक्त, कुछ और हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा। इनमें से अधिकांश पत्र-पत्रकाओं का आकार छोटा और कुछ ही पृष्ठों का होता था। 'मासिक चिट्ठी' अप्रैल 1942 से दिसंबर 1945 तक प्रति सप्ताह और जनवरी 1946 से जून 1950 तक मासिक निकलता रहा। यह हिंदी पत्र सरकारी विभाग के सार्वजनिक संबंध ऑफिस (पब्लिक रिलेशन ऑफिस) द्वारा निकलता था। इसके संपादक थे पं. सोमदत्त शर्मा। इसी प्रकार से दूसरा हिंदी साप्ताहिक था 'सैनिक' जो 1 जुलाई 1946 से 1 मई 1947 तक हिंदू प्रेस से निकला था। इसके संपादक थे वीका बकतवर सिंह। ऐसा एक और अल्पकालिक पत्र था 'मजदूर' जो 13-27 दिसंबर 1947 तक निकला था। यह पत्र उपर्युक्त संपादक और प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आर्योदय

1950 में स्वामी स्वतंत्रानंद, मणिलाल डॉक्टर के साथ भारतीय गणतंत्र समारोह में भाग लेने मारीशस आए थे। उत्सव के बाद स्वामी स्वतत्रतानंद के प्रयत्न से आर्य समाज की दोनों शाखाओं का 'आर्य सभा मारीशस' में विलय हो गया था। इसी के परिणाम स्वरूप 'आर्यवीर-जागृति' भी 'आर्योदय' में परिणत हो गया था। इसका प्रथम अंक 4 नवंबर 1950 को निकला था और इसके संपादक थे पं. आत्माराम विश्वनाथ।

18 सितंबर 1953 से हिंदी का एक अन्य पत्र निकलना प्रारंभ हुआ था। उसका नाम था 'वर्तमान'। वह हिंदी साप्ताहिक था और उसका प्रकाशन ज्योति प्रेस से होता था। इस पत्र के संपादक थे रामसेवक तिवारी। वह 25 जून 1954 तक निकलता रहा फिर बंद हो गया।

पं. मोहनलाल मोहित ने 1955 से 'दिवाली संदेश' नामक हिंदी पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया था।

'मजदूर' हिंदी का पाक्षिक पत्र था जो 1 नवंबर 1956 से निकलना प्रारंभ हुआ था। इसके मालिक थे पं. हरिप्रसाद रामनारायण, जो आमालगामेट लेबर एशोसिएशन के तत्कालीन अध्यक्ष थे। इसके संपादक थे रामसुंदर बालगोबिन। यह हिंदी, अंग्रेजी और फ्रेंच में निकलता था। यह एक तरह से मजदूर वर्ग का मुखपत्र था जो 1961 तक निकलता रहा।

साहित्यिक पत्रिकाओं का जन्म

1960 तक हिंदी पत्रकारिता के मुख्य प्रसंग होते थे—सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक गतिविधियां, किंतु विशुद्ध रूप से स्थानीय पत्रकारिता ने साहित्यिक परीक्षणों को अजमाया न था। ऐसा करने का साहस नहीं किया था।

किंतु पिछले पचास वर्षों में मारीशस की हिंदी पत्रकारिता ने एक लंबी यात्रा तय की थी और तब हिंदी भाषा एक शक्तिशाली माध्यम बन गई थी। अतः कुछ हिंदी समर्थकों ने एक साहित्यिक-पत्र प्रकाशित करने का विचार प्रकट किया। किंतु यहां यह बताना अनुचित नहीं होगा कि लौंग माउनटेन की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने 1936 में 'दुर्गा' नामक एक साहित्यिक पत्रिका का संपादन शुरू किया था। किंतु वह पत्र हस्त-लिखित था और प्रतिमास निकाला जाता था। उसमें सामयिक लेखों के साथ-साथ कहानियां, एकांकी और कविताएं भी होती थीं। 1937 में वह बंद हो गया।

पं. दौलत शर्मा ने प्रथम साहित्यिक-पत्रिका 'अनुराग' का प्रकाशन जुलाई 1960 में प्रारंभ किया था। परंतु कुछ ही अंकों के बाद यह बंद हो गया था। किंतु इसी वर्ष हिंदी का नवीन पाक्षिक 'नव-जीवन' का प्रकाशन शुरू किया गया था। इसके संपादक थे एस.एम. भगत और विक्रम सिंह राम लाला, जो 'मारीशस टाइम्स' के संपादक थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वास्तव में यह साहित्यिक-पत्र था और इसमें ऊंचे स्तर की कविताएं और गद्य लेख विभिन्न विषयों पर होते थे। यह लंबे चार वर्षों तक प्रकाशित होने के बाद बंद हो गया था।

वास्तव में सन् साठ में निकलने वाली साहित्यिक-पत्रिका थी 'अनुराग' जो पोर्ट लुई के हिंदी परिषद के केंद्रीय समिति द्वारा प्रकाशित होती थी। यह सोमदत्त बखोरी की देखरेख में निकलती थी। इसमें नवोदित लेखकों की कहानियां, कविताएं, एकांकी, निबंध आदि प्रकाशित होते थे। यह काफी लंबे अर्से तक निकलती रही। इसमें देश-विदेश के अनेक उच्च कोटि के लेखकों की रचनाएं प्रकाशित होती रहीं। बहुत से बुद्धिजीवियों का मत है कि इसी साहित्यिक-पत्रिका ने स्वातंत्र्योत्तर वर्षों के विपुल साहित्यिक-शास्त्र का मार्ग प्रशस्त किया था।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्र-पत्रिकाएं

इस देश की हिंदी पत्रकारिता के विकास में सन् सत्तर असाधारण साल माना जाता है। कोई प्रश्न कर सकता है क्या यह स्वातंत्र्योत्तर वर्षों में स्थापित नया सामाजिक अनुक्रम था या औद्योगिक-क्षेत्र का आरोपण जिस के परिणाम स्वरूप देश की आर्थिक संरचना में वृद्धि हुई थी, अथवा उस स्वतंत्र विचार की अनुभूति जिसकी बदौलत यहां के भारतीय मूल की संतानों में एक नया साहित्यिक उत्साह का प्रस्फुटन हुआ था। इनका उत्तर जो भी हो, फिर भी, यह देखने में आता है कि बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में कोई एक दर्जन तक साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन संभव हो पाया था और रोचक तथ्य यह था कि इन सबकी परिणति थी—1976 का मारीशस में संपन्न 'द्वितीय विश्व हिंदी सम्मेलन।'

दर्पण और आभा

श्री छबीलाल बिदेसी की देख रेख में त्रियोले के हिंदी अध्यापक संघ ने 'दर्पण' नाम की त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन 1971 से 1979 तक किया था। 'आभा' नाम के त्रैमासिक का प्रकाशन 1972 से प्रारंभ हुआ था। इसके संपादक थे महेश रामजीयावन। यह 1976 तक प्रकाशित होता रहा। पोर्ट लुई राजधानी में स्थित भारतीय दूतावास की पत्रिका 'भारतीय समाचार' 1972 से प्रकाशित होती रही। इसी तरह से पेची राफरे के 'हिंदी उत्थान संघ' ने 'प्रभात' नामक वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन 1976 से शुरू किया था। इसके संपादक थे चंद्रदीप जोधन और यह पत्रिका 1979 तक ही प्रकाशित हुई थी।

प्रकाश और वसंत

बोबासें स्थित अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय के छात्रों ने प्रोफेसर रामप्रकाश की प्रेरणा से 'प्रकाश' नाम की साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन 1974 से प्रारंभ किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था। इसका प्रकाशन अनियमित रूप से अब तक होता रहा है। इसी शहर में स्थित त्रिवेणी सर्कल द्वारा खेर जगत सिंह की देख-रेख में 1974 में 'त्रिवेणी' साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ था।

इसी तरह से सूचना मंत्रालय ने 1977 से एक हिंदी त्रैमासिक पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया था जिसका नाम था 'परिवर्तन'। यह 1979 तक प्रकाशित होती रही। हिंदी परिषद की साहित्यिक पत्रिका 'अनुराग' का प्रकाशन, आर्थिक और मुद्रण की समस्याओं के कारण, 1977 से बंद हो गया। किंतु इसी समय से 'महात्मा गांधी संस्थान' ने 'वसंत' नाम की साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन करके एक भारी कमी की पूर्ति भी की। 'वसंत' के संपादक हैं—अभिमन्यु अनत और यह अब भी निकलती रही है।

'जनता' साप्ताहिक पत्र जिसका संपादन पं. लक्ष्मीप्रसाद बद्री द्वारा 1953 से 1973 तक होता रहा, 1974 से उसका नवीकरण तब किया गया जब राजेंद्र अरूण उसके संपादक बने। राजेंद्र अरूण भारत के एक प्रसिद्ध पत्रकार थे और मारीशस में उनकी उपस्थिति ने स्थानीय हिंदी पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया था।

आर्य सभा मारीशस ने भी अपनी पत्रिका 'आर्योदय' को सन् सत्तर में नवीकरण किया था, और तभी से इस पत्र के विशेषांकों का प्रकाशन, पुस्तकाकार रूप में किया जाने लगा था। आर्य सभा के युवावर्ग ने डॉ. सुदर्शन जगेसर की देखरेख में 'वैदिक जरनल' का प्रकाशन हिंदी-अंग्रेजी में 1977 से 1979 तक किया था। इस प्रकार से दयानंद वसंतराय ने हिंदू महासभा के तत्वावधान में प्रतिवर्ष महाशिव रात्रि के अवसर पर 'शिव रात्रि' नामक सांस्कृतिक पत्रिका का प्रकाशन 1972 से प्रारंभ किया था। इस पत्रिका को 1984 में जब बंद किया गया जब उसके प्रवर्तक का देहावसान हुआ।

सन् अस्सी की हिंदी पत्रकारिता

1982 में मारीशस की हिंदी पत्रकारिता को एक विकट गत्यारोध की अनुभूति तब हुई जब डॉ. शिवसागर राम गुलाम अपने दल के सभी साथियों के साथ चुनाव हार गए थे। डॉ. राम गुलाम 42 वर्षों तक स्थानीय विधान सभा के सदस्य रहे, और 14 वर्षों तक स्वतंत्र मारीशस के प्रधान मंत्री और तीन वर्षों तक देश के गवर्नर जनरल। उनके समस्त राजनीतिक जीवन की कार्यावधि में उन्हें 'आडवांस' और 'जनता' से काफी सहयोग मिला। 1982 के ऐतिहासिक चुनाव के बाद, 34 वर्ष की साप्ताहिक-पत्रिका 'जनता' एकाएक बंद हो गई। इसीं तरह से हिंदी पत्रकारिता को 1976 के चुनाव के बाद प्रथम गत्यारोध तब हुआ था जब सुखदेव विष्णुदयाल आम चुनाव हारे थे और उसके कुछ सप्ताह बाद से 'जमाना' का प्रकाशन बंद हुआ था। सुखदेव विष्णुदयाल 28 वर्षों तक विधान सभा के सदस्य रहे और एक जबर्दस्त विरोधी दल के नता के रूप में उभरे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

1982 से 1987 तक 'आर्योदय' 'वसंत' और 'शिवरात्रि' के अलावा कोई हिंदी पत्र-पत्रिका नहीं निकली थी। इस खालीपन को 'मानवसेवा निधि' ने पाटने के उद्देश्य से एक पूर्ण विकसित हिंदी साप्ताहिक 'स्वदेश' का प्रकाशन धनदेव बहादुर के नेतृत्व में प्रारंभ किया था। यह बारह पृष्ठों का पत्र था और 1987 से 1991 तक निकलता रहा। आर्थिक और मुद्रण के संकट के कारण इसका प्रकाशन कुछ वर्षों से बंद है। इसी प्रकार से 'सनातन धर्म मंदिर परिषद' के तत्वावधान में और सुरेश रामबरण की देखरेख में 'दर्पण' नामक हिंदी साप्ताहिक पत्र 1988 से 1990 तक निकलता रहा।

बोबासें स्थित 'इंद्रधनुष सांस्कृतिक परिषद' ने अक्तूबर 1988 से एक साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'इंद्रधनुष' का प्रकाशन प्रारंभ किया था। इसके संपादक हैं प्रहलाद रामशरण और जनार्दन कालीचरण। यह अनियमित रूप से अब तक निकलती आ रही है। इसके मणिलाल डाक्टर, पं. जवाहरलाल नेहरू, डा. शिवसागर, रामगुलाम और एस.एम भगतसिंह विशेषांक निकल चुके हैं। इसी प्रकार से भारतीय दूतावास ने डॉ. राजेंद्र सिंह कुशवाहा की देखरेख में 'भारत दर्शन' त्रैमासिक का प्रकाशन 1989 से 1991 तक किया था।

प्राथमिक सरकारी अध्यापक संघ ने 1990 से 'आक्रोश' नामक हिंदी पत्रिका आरंभ किया था। इसका प्रकाशन भी अनियमित रूप से अब तक होता रहा है। होन. राजनारायण गति ने 'मुक्ता' नाम की एक बाल पत्रिका का प्रकाशन 1990 से 1992 तक किया था।

वर्तमान समय में हिंदी की कोई साप्ताहिक पत्रिका नहीं है। अतः स्थानीय हिंदी पत्रिका को केवल 'आर्योदय', 'वसंत' 'इंद्रधनुष' और 'आक्रोश' पर आधारित रहना है।

मारीशस की हिंदी पत्रकारिता के वृहत परिदृश्य का सर्वेक्षण करके कोई 42 पत्र-पत्रिकाओं के अस्तित्व का पता लगाया गया है। यह इस तथ्य को पुष्ट करता है कि हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी समर्थकों के मन को समग्र रूप से प्रभावित किया है। यह इस तथ्य को भी प्रमाणित करता है कि शुरू से आज तक कुछ हिंदी लेखकों ने हिंदी पत्रकारिता को निखारने में काफी क्रियाशीलता और सजगता दिखाई है। अतः ऐसे कुछ नामों का उल्लेख अनुचित न होगा, जैसे मणिलाल डाक्टर, पं. रामअवध शर्मा, पं. काशीनाथ किष्टो, पं. आत्माराम विश्वनाथ, नरसिंह दास, पं. देवदत्त शर्मा, पं. वासुदेव विष्णुदयाल, पं. सुंदर शर्मा, जयनारायण राय, सोमदत्त बखोरी, एस.एम. भगत, पं. मोहनलाल मोहित, अभिमन्यु अनत, प्रहलाद रामशरण आदि।

हिंदी समाचार पत्रों के फाइलों के अवलोकन के बाद बहुत सारे तथ्य सामने आए हैं। प्रथम, मारीशस के समान एक भी भारतेतर देश ऐसा नहीं है जहां हिंदी भाषा में इतनी पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुई हैं। द्वितीय, मारीशस के भारतीय मूल के लेखकों और पत्रकारों को भारत के उच्चकोटि के समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाएं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकाशित करने का सम्मान प्राप्त है। तृतीय—आर्य समाजी पत्र-पत्रिकाओं के परिदृश्य को देखकर ऐसा लगता है कि उसके मुकाबले में सनातनी पत्र-पत्रिकाएं सीमित दायरे में प्रकाशित होती रही हैं। चतुर्थ, सन बीस की पत्र-पत्रिकाओं की कथावस्तु सामाजिक और धार्मिक विषयों पर अति अधिक आधारित होती थी और राजनीतिक और साहित्यिक पर न्यून।

यद्यपि मणिलाल डाक्टर ने शुरू-शुरू में एक राजनीतिक पत्र को जन्म दिया था, फिर भी बाद की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएं धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों को प्रतिपाद्य करती रहीं। 1920 से 1932 तक इस देश में हिंदी का एक दैनिक पत्र निकलता रहा। महात्मा गांधी और पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा चलाए जा रहे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का विवरण सन् तीस और चालीस की पत्र-पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा मे दिया जाता रहा और उसका प्रभाव मारीशस के भारतीयों पर अखंडनीय रूप में पड़ता रहा।

1942 से पूर्व यहां के अधिकांश समाचार-पत्र और पत्रिकाएं द्विभाषी व त्रिभाषी होती थीं। वे अंग्रेजी, फ्रेंच और हिंदी में प्रकाशित होती थीं। किंतु बीसवीं शती के चौथे दशक में पूर्णरूप से हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की नींव डाली थी। अतः प्रथम हिंदी पत्र 'मासिक चिट्ठी' था जो सरकार के सार्वजनिक कार्यालय द्वारा प्रकाशित होता था। इसी दशक में 'जनता' का प्रकाशन शुद्ध हिंदी में प्रारंभ किया गया था। इसी प्रकार से सन् पचास के बाद 'आर्योदय', 'दिवाली संदेश' 'वर्तमान', 'नवजीवन', 'समाजवाद', 'कांग्रेस', 'स्वदेश', और 'दर्पण' आदि पूर्ण रूप से हिंदी के समाचार पत्र निकलते रहे।

साहित्यिक पत्रों का अस्तित्व सन् साठ और सत्तर के बाद से संभव हो पाया है। 'नव जीवन', 'अनुराग', 'आभा', 'दर्पण', 'वसंत', 'प्रकाश' और 'इंद्रधनुष' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं के उज्जवल प्रमाण हैं। 'बाल-सखा' और 'मुक्ता' का प्रकाशन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि स्थानीय पत्रकारिता ने अनेक मोर्चे पर प्रयोगात्मक कार्य किया है। यह भी देखा जाता है कि प्रायः सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में महिलाओं के स्तंभ होते हैं फिर भी आज तक देश में एक भी महिला-पत्रिका का प्रकाशन संभव नहीं हो पाया है।

इन तत्वों को देखते हुए ऐसा लगता है कि इस देश में हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र को अथवा उसके क्षितिज को और विस्तृत करने की गुंजाइश है। यह दुःख के साथ उल्लेख करना पड़ता है कि हिंदी पाठकों को दैनंदिन जीवन में अन्य भाषाओं के समाचार पत्र और पत्रिकाओं के जरिए विभिन्न विषयों की जानकारियां जैसे विज्ञान, कृषि, उद्योग, खेल-कूद आदि का ज्ञान अर्जन करना पड़ता है।

एक अन्य गतिरोध! बीसवीं शती के दूसरे दशक में यद्यपि जयनारायण राय और पं. वासुदेव विष्णुदयाल जैसे हिंदी के समर्थक विद्यमान नहीं थे, तो भी इस देश में एक दैनिक समाचार पत्र विद्यमान था। इसके विपरीत आज हिंदी के इतने पाठक होते हुए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी एक हिंदी दैनिक व साप्ताहिक का प्रकाशन संभव नहीं हो पा रहा है। क्या आज हिंदी की पढ़ाई प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीय स्तर पर नहीं हो रही! फिर गत्यारोध क्यों?

अंत में सोमदत्त बखोरी के कथन को उपसंहार में उदधृत करना अनुचित न होगा—"किसी भी संप्रदाय के लिए, पुस्तकें और समाचार-पत्र एक सशक्त सांस्कृतिक धरोहर होते हैं। कोई सांस्कृतिक संप्रदाय इसकी अवहेलना नहीं कर सकता। इस अनमोल दाय का संरक्षण जरूरी है। किंतु सब से पहले इसका संवर्धन करना अतिआवश्यक है।"

□

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ICCR PUBLICATIONS

Our latest release

CONTEMPORARY RELEVANCE OF SUFISM

Emanating from Maulana Abul Kalam Azad's interest in Sufism, as expressed in his essay 'Sarmad Shaheed', an international seminar on Sufism was organized by the Indian Council for Cultural Relations in 1991, which attracted scholars from seventeen countries who contributed fifty papers during the three-day deliberations. This book is a compendium of the presentations.

The book is divided into three sections: 1. Sufism: History and Philosophy 2. Sufism and the Arts 3. Contemporary Relevance of Sufism. Fourteen papers, which have been slotted into the three parts, are the complete texts, while the remaining thirty-six are summarised in a separate section.

The articles cover all aspects of Sufism from the deeply philosophical to the essentials of Sufi practice. Several articles on the genesis of Sufism in India cover the movement as it spread from coast to coast, winning people by its creed of love and service to humanity. The practice of Sufism in other parts of the world forms the subject of several other presentations.

Edited by *Syeda Saiyidain Hameed*, this volume in royal 8vo size, hardbound in cloth with dust jacket in five colours, printed pages LIV+ 350, is priced Rs 600.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नेपाली साहित्य में हास्य-व्यंग्य

डॉ. सुरेंद्र प्रसाद साह

नेपाली साहित्य में प्रारंभिक काल से ही हास्य-व्यंग्य ने आकार ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया था। बड़ा महाराज पृथ्वी नारायण के समय में शक्तिवल्लभ ने 'हास्य कदंब' का नेपाली में अनुवाद करके इस विधा का श्रीगणेश किया था। आदि कवि भानुभक्त और मोतीराम भट्ट की कुछ कविताओं में भी हास्य-व्यंग्य का प्रयोग पाया जाता है। इस प्रकार कविताओं में हास्य-व्यंग्य के प्रवेश के बाद 'शारदा' पत्रिका का प्रकाशन होने पर 'हंसी दिल्लगी' स्तंभ के अंतर्गत प्रेमराज शर्मा की 'पंडित जी की चिट्ठी' तथा अन्य हास्य-व्यंग्य लेख तथा केशवराज पिंडाली की हास्य कथा 'संगीत की कपाल-क्रिया' प्रकाशित हुई। लेखनाथ की 'लक्ष्मीपूजा' तथा बालकृष्ण सम के नाटक 'मुकुंद इंदीश' में भी कुछ हास्य-व्यंग्य के प्रसंग पाए जाते हैं। लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा के 'साढ़े', 'आदिकविता', 'कविराज को च्याङ्ग्रे खच्चर' आदि निबंधों में तथा हृदय चंद्र सिंह प्रधान के 'जुआ' तथा 'तीस रुपया का नोट' आदि निबंध-संग्रहों में सामाजिक विकृतियों के ऊपर तीखा व्यंग्य करते हुए हास्य की सृष्टि करने का प्रयास किया गया है।

इसके पश्चात् नेपाली निबंध-साहित्य में हास्य-व्यंग्य की बाढ़-सी आ गई। केशवराज पिंडाली के 'खै-खै' निबंध संग्रह तथा भैरव अर्याल के 'काउकुती' 'जयमुंडी' 'गलबंदी' तथा 'इतिश्री' आदि निबंध-संग्रह, रामकुमार पांडे के 'ख्याल-ख्याल', 'सञ्चै

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छ?' 'मौज गर्नोश' आदि संग्रह तथा विष्णु नवीन के 'श्रीमती संग एक दिन' आदि कृति इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसी प्रकार, वासुदेव शर्मा लुइटेल के 'भीमसेनपाती' और 'चिट्ठी-चपेटा' आदि कृतियों में भी हास्य-व्यंग्य का अच्छा नमूना प्राप्त होता है। इस तरह, हास्य-व्यंग्य कविता, कहानी तथा निबंध के माध्यम से मूर्त्त रूप लेने लगा। उपन्यास विधा में शंकर कोइराला का 'श्रीमती हिरोइन' को भी इसी परंपरा में समझना चाहिए।

कविता में हास्य व्यंग्य की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख नेपाली कवि हैं—भीमनिधि तिवारी, कुलमणि देवकोटा, श्यामदास वैष्णव और लक्ष्मण लोहानी आदि। इन सभी कवियों की कविताओं में सामाजिक विकृति, आडंबर तथा दिखावे के ऊपर चुटीला व्यंग्य भी है और हास्य का पुट भी। इन सारी कृतियों के माध्यम से नेपाली साहित्य में हास्य-व्यंग्य की परंपरा क्रमशः परिपुष्ट होती चली गई है। आज नेपाली-साहित्य में जिन पुस्तकों ने हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है, वे ये हैं—

खै-खै (निबंध संग्रह), काउकुती (निबंध संग्रह), जयमुंडी (निबंध संग्रह), बाह्नों खिलाड़ी (निबंध संग्रह), जुंगा (निबंध संग्रह), गलबंदी (निबंध संग्रह), इतिश्री (निबंध संग्रह), ख्याल ख्याल (निबंध संग्रह), दमाहा (निबंध संग्रह), मपाई (निबंध संग्रह), सञ्चैछ (निबंध संग्रह), छयाकन (कवितासंग्रह), मुकुंद इंदिरा (नाटक), लक्ष्मीपूजा (नाटक), म पिउन अखबार कौं (उपन्यास), हास्य कदंब (गद्य अनुवाद)।

अब नेपाली के कुछ प्रमुख हास्य व्यंग्यकारों का परिचय इस प्रकार है—

1. **मोतीराम भट्ट**—इनका जन्म सं. 1923 में औंसी गांव में तथा मृत्यु सं. 1953 में मात्र तीस वर्ष की उम्र में हो गई थी। मोतीराम भट्ट ने नेपाली-साहित्य की अनेक विधाओं में जो बहुआयामी देन दी है यह इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। साहित्य की शायद की कोई विधा उनकी कलम से बच सकी होगी। हास्य तथा व्यंग्य के क्षेत्र में भी वे अग्रणी प्रयोक्ता के रूप में परिगणित होते हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में जिस हास्य-व्यंग्य का प्रयोग किया है, उसे दो भागों में बांट सकते हैं—(क) श्रृंगारिक हास्य तथा (ख) श्रृंगारेतर हास्य। उन्होंने अपनी लंबी-छोटी कविताओं में विषयवस्तु के अनुरूप आवश्यक विनोद, गंभीरता और आह्लाद का समावेश किया है। मात्र कथ्य के द्वारा ही नहीं, बल्कि शैली एवं भंगिमा के द्वारा भी इन्होंने हास्य का सृजन किया है जिसे पढ़कर पाठक हंसी से झूम उठते हैं। इनका जन्म एवं मृत्यु—एक ही तिथि को हुई थी।

2. **भैरव अर्याल**—इनका जन्म ललितपुर जिले के कुपण्डोल में सं. 1994 में हुआ था। आधुनिक नेपाली हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में स्व. अर्याल एक प्रसिद्ध निबंधकार हैं। इनका 'कुमुकुती' 'जयमुंडी' 'गलबंदी' 'इतिश्री' 'दसावतार' नामक सरल, सरस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा अनुप्रासयुक्त है। सामाजिक कुरीति तथा ढोंगी व्यवहार के ऊपर धारदार प्रहार करने में इनके निबंध सक्षम हैं। इनका हास्य सरस होता है। हंसी-हंसी में ही तीखा व्यंग्य करके समाज की बुराई की ओर इशारा कर देना इनकी कलम की विशेषता है। चूंकि उनके सभी निबंध समसामयिक समस्याओं से जुड़े होते हैं, अतएव पाठक के हृदय को बहुत प्रभावित करते हैं। अच्छी प्रभावशाली भाषा में हास्य-व्यंग्य के सहारे समाज में सुधार लाने की पवित्र कामना थी उनके मन में।

3. **लोकेंद्र बहादुर चंद्र**—इनका जन्म वि.सं. 1996 में फाल्गुन मास में बैतडि जिला में हुआ था। इन्होंने बी.ए., एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। सं. 2025 से नेपाल की राजनीति में सक्रिय रहकर ये दो बार वहां के प्रधानमंत्री भी हुए। 2035 सं. में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'बारहवां खिलाड़ी' (ब्राहौ खेलाडी) ने उन्हें हास्य-व्यंग्य लेखक के रूप में ख्याति दी। इसके बाद से ही वे नेपाली के एक श्रेष्ठ व्यंग्य लेखक गिने जाने लगे। सं. 2041 में उनकी दूसरी पुस्तक 'नेता का साथी' प्रकाशित हुई। इसमें उनके द्वारा लिखित सात हास्य एकांकी संग्रहित हैं। चूंकि नेपाली-साहित्य में हास्य-व्यंग्ययुक्त एकांकी बहुत कम ही लिखे गए हैं, अतएव उनके इस संग्रह का बहुत महत्व है। क्या एकांकी और क्या निबंध—दोनों विधाओं में लिखित उनकी रचनाओं में पर्याप्त हास्य-व्यंग्य दिखाई पड़ते हैं।

4. **रामकुमार पांडे**—इनका जन्म सं. 1968 के आषाढ़ मास में हुआ था। ये त्रिभुवन विश्वविद्यालय में शिक्षा शास्त्र के उप प्राध्यापक हैं। इनकी रुचि और खूबी 'जोक' से 'ज्योग्राफी' तक है। इन्होंने 'पृथ्वी गोल है' से लेकर 'भद्र गोल है' तक कलम चलाई है। कार्टून बनाने से लेकर कविता करने तक। उन्हें शौक है हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में 'पहली रचना', 'ख्याल-ख्याल' (सं. 2023) से लेकर अंतिम रचना 'रसरंग' (सं. 2042) तक दस कम अठारह पांडे-पुराण पूरे हो चुके हैं। 'नेपाल परिचय' 'यती टेल्स' 'कविता-यात्रा' आदि के अलावा बाल कविता 'पुतली का घर' तक उन्होंने लिखा है। उनकी उल्लेखनीय हास्य-व्यंग्य रचनाएं हैं—'खप्पर', 'ख्याल-ख्याल' 'सच्चेछ' 'भोज गर्नेश' आदि।

5. **वासुदेव शर्मा लुईंटेल**—इनकी साहित्य-यात्रा सं. 1999 में 'शारदा' पत्रिका में 'आमा' कविता के प्रकाशन से प्रारंभ होती है। हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में इनका प्रवेश अनेक वर्ष पहले हुआ और कुछ ही दिनों में इन्होंने अच्छी ख्याति अर्जित कर ली। हंसना और हंसाना सबका अधिकार और कर्त्तव्य है—ऐसा कहने वाले ये और कौआ प्रकाशन एक-दूसरे का पर्याय बन गए हैं। 'भीमसेनपाती' और 'चिट्ठी-पत्री' (चिठी-चपेटा) में इनके हास्य-व्यंग्य का अच्छा उदाहरण मिलता है। ये काठमाण्डू के नैकाप गांव में पैदा हुए थे और माध्यमिक शिक्षक थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

6. **श्रीधर खनाल**—इनका जन्म सं. 1988 में हुआ और ये सं. 2007 साल के बाद लिखने लगे। इन्होंने 'दीर्घबाहु' नाम का एक जासूसी उपन्यास लिखा तथा अपने वास्तविक नाम के अलावा—फाईफुंट्टीराज, विश्वमित्र, श्री समानांतर, बमगोला, गिद्धचक्षु, देवराज आदि छद्मनामों से बहुत सारी हास्य-व्यंग्य की रचनाएं लिखीं। इन्होंने पत्रिका का संपादन भी किया, फिल्म की कथा एवं संवाद भी लिखे तथा फिल्म निर्देशन का कार्य भी किया। इनका 'उल्लिबिल्ली' नाम का हास्य-व्यंग्य पूर्ण निबंध बहुत चर्चित है।

7. **ध्रुवकृष्ण दीप**—इनका जन्म सं. 1989 में हुआ था। हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में इन्होंने अच्छा काम किया है। अब तक इनकी छह पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन्होंने मसी जीवी के 32 कुलक्षण बताए हैं।

8. **कृष्ण प्रसाद चापागाई**—इनका जन्म सं. 1973 के भाद्र मास में घादिड़ में हुआ था। ये नौकरी करते थे। इनके निबंधों में राष्ट्रीयता के भाव की अभिव्यक्ति के साथ मनुष्य को रूढ़ि, कुरीति तथा शोषण से परिचित कराकर उसे नया मार्ग दिखाने की चेष्टा की गई है। इनकी 'टुकाटाकी' पुस्तक के प्रकाशन के बाद सं. 2008 तथा 2036 में क्रमशः 'रसभरी' तथा 'मिसमास' पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 'मिसमास' इनकी बहुमुखी प्रतिभा का प्रतीक है। 'पर्दा' तथा 'विषमारा' इनकी अद्‌भुत रचना है। इनकी 'झिंगों' तथा 'अंपुताली' कथाओं की भी खूब चर्चा हुई है। इनकी मृत्यु सं. 2036 के आसपास हुई।

9. **हृदय चंद्र सिंह प्रधान**—इनका जन्म सं. 1972 में हुआ था। ये नेपाली-साहित्य के बहुप्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे, अतएव इन्होंने प्रत्येक विधा में अपनी कलम चलाई है। इनकी धारणा थी कि निबंध में चिंतन तथा सोच में व्यंग्य, हास्य या ठिठोली के माध्यम से सरल रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। ये निबंधों में हास्य-व्यंग्य की सुकुमार अभिव्यक्ति के पक्षपाती थे। इनके 'सिरक' निबंध में गरीबी के ऊपर व्यंग्य किया गया है तथा 'मुसालाई वेद पढाउने धुनमा' निबंध में समाज में विद्यमान फूट एवं असमानता की स्थिति पर हास्य एवं व्यंग्य किया गया है। 'कुरा सांचो हो' निबंध-संग्रह में इन्होंने अपने अतीत की घटनाओं को अत्यंत कलात्मक और कारुणिक रूप में प्रस्तुत किया है। 'तीस रुपया का नोट' और 'जुंगा' निबंध-संग्रह हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्णन में स्पष्टता, शैली में सरलता तथा भाव में तीक्ष्णता—इनके लेख की विशेषता है। ये नेपाली हास्य-व्यंग्य के प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं।

10. **भीमनिधि तिवारी**—इनका जन्म 1968 सं. में हुआ था। ये नेपाली-साहित्य के अमर साधकों में एक हैं। इन्होंने भी प्रत्येक विधा में कलम चलाई है। कविता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के क्षेत्र में इन्होंने हास्य-व्यंग्य को बहुत आगे बढ़ाया है। इनकी कविताओं में सामाजिक यथार्थ का बोध तो है ही, उसकी अभिव्यक्ति का लहजा व्यंग्यात्मक है। इनकी कृति 'तितौरा र मस्यौरा' की भूमिका में भैरव अर्याल लिखते हैं— .... ''कविता 'नंद' 'विस्फोट' 'कविता कुञ्ज' और 'सिंह दरबार'—चारों संग्रहों में व्यक्त हास्य-व्यंग्य को मिलाकर एक ही जगह रखने के उद्देश्य से यह नया संग्रह सजाया गया है। तिवारी जी द्वारा परोसे गए चौरासी व्यंजनों में यह भी एक है, तथा बयासी गजलों ने इसका श्रृंगार किया है ... यह तिवारी काव्य की हास्य-व्यंग्य धारा का परिचय कराएगा—ऐसा मेरा विश्वास है।'' □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी पढ़ना और पढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है। उसे हम सबको अपनाना है।

—लाल बहादुर शास्त्री

देश को किसी संपर्क-भाषा की आवश्यकता होती है, और वह (भारत में) केवल हिंदी ही हो सकती है।

—श्रीमती इंदिरा गांधी

हिंदी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र मे पिरोया जा सकता है।

—स्वामी विवेकानंद

हिंदी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्व में हिंदी साहित्य के अनुवाद का महत्व

प्रोफेसर डॉ. मार्गोट गात्सलाफ

मनुष्यों की परिस्थितियों को आपस में समझने के लिए, उनके शांतिपूर्ण, अहिंसात्मक सहजीवन के लिए साहित्य के अनुवादों का बहुत बड़ा महत्व है, क्योंकि केवल एक दूसरे को समझने में अपरिचित, अन्य प्रकार के तथ्यों का अस्वीकरण कम हो जाता है। पारस्परिक समझ के काम में साहित्य के अनुवाद बहुत बड़ा योगदान दे सकते हैं जो हमारे समय में जब विदेशी-द्वेष बढ़ता जा रहा है, अत्यधिक अनिवार्य है।

साहित्य सभ्यता से उत्पादित वस्तु है, जो उस सभ्यता को प्रतिबिंबित करता है जिसमें वह पैदा हुआ। अनुवाद साधारणतः दो विभिन्न सभ्यताओं से संबंधित है। इस प्रकार साहित्य का अनुवाद करना एक ऐसी कला है जो दूसरे क्षेत्र की सभ्यता से पूर्ण तरह पारंगत हो जाना तथा अपनी सभ्यता की अच्छी जानकारी चाहती है, ताकि अनुवाद करना, मतलब अपनी सभ्यता में दूसरी सभ्यता को पार करना, कलात्मक रूप से किया जाए जिससे पाठक अनुवाद को अपनाए। इसके अतिरिक्त अनुवाद दोनों भाषाओं की शब्दकला की अच्छी जानकारी मांगता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भारत की सभ्यता कई शताब्दियों से जर्मन साहित्य, जर्मन कला एवं जर्मन विद्या को भी प्रेरित करती आ रही है। सर्वप्रथम धर्म का रहस्यवाद और दर्शनशास्त्र ग्योटे, हेर्डर, हाइने, मक्स म्यूलर, हेरमन ब्रोकहाउस जैसे जर्मन कवियों, विचारकों और वैज्ञानिकों को आकर्षित करते थे। हाल में हमारे समय के वास्तविक भारत में रुचि बढ़ती जा रही है। अंग्रेजी में लिखी भारतीय रचनाओं के अनुवाद से जर्मन पाठक को स्वाधीनता प्राप्त करने से पहले और उसकी प्राप्ति के बाद भारत की वास्तविकता का बहुमूल्य ज्ञान मिल गया। इन रचनाओं में मुल्क राज आनंद, र. क. नारायण, ख्वाजा अहमद अब्बास, भवनी भत्तचारिय आदि की रचनाएं हैं। लेकिन यह केवल इसलिए संभव हो पाया क्योंकि विश्व में अंग्रेजी भाषा का बहुत बड़ा प्रसारण और सामाजिक सम्मान है जिससे अंग्रेजी से जर्मन में या दूसरी यूरोपियन भाषाओं में अनुवाद करने की संभावनाएं भारतीय भाषाओं की तुलना में ज्यादा अधिक और अच्छी थीं और आज भी हैं। अर्थात् अंग्रेजी की तुलना में आधुनिक भारतीय भाषाएं अभी भी प्रतिकूल परिस्थिति में हैं, यद्यपि अंग्रेजी से बराबर हो जाने का प्रकम चालू ही हो रहा है। इस प्रक्रम में हिंदी का पथ प्रशस्तीकरण करने का अधिकार है। यह भाषा बोलनेवालों की संख्या की दृष्टि से भारत में सबसे बड़ी है और विश्व में चीनी और अंग्रेजी भाषाओं के बाद ही तीसरा स्थान रखती है।

अभी तक हिंदी साहित्य के जर्मन में अनेक अनुवाद किए गए हैं, लेकिन अनुवाद के लिए चुनाव न्यूनाधिक अनियमित रूप से हो गया और भिन्न लेखकों और कवियों की प्रसिद्ध हो गई अलग रचनाओं का ध्यान रखा गया था। जिन लेखकों की रचनाओं का अनुवाद जर्मन में हुआ उन में हैः बिहारीलाल, प्रेमचंद, भीष्म साहनी, जगदीश चंद्र, फणीश्वरनाथ रेणु, अज्ञेय आदि। परंतु हिंदी साहित्य की संपत्ति के समक्ष ये अनुवाद ऊंट के मुंह में जीरा हैं। मेरे विचार से विभिन्न कालों और प्रवृत्तियों के लेखकों एवं कवियों की रचनाओं का जर्मन और दूसरी यूरोपियन भाषाओं का भी प्रणालीबद्ध प्रकाशन करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

मेरे मन में हैः भक्तिकाल, रीतिकाल, भारतेंदु काल, द्विवेदीयुग, यथार्थवाद, छायावाद, प्रयोगवाद, नई कहानी आदि। जर्मन पाठकगण को इस साहित्य का पूर्ण प्राचुर्य खोलने के उद्देश्य के लिए और भारत की सभ्यता के आधुनिक विकास की जानकारी बढ़ाने के लिए विराट काम करना चाहिए। लेकिन इस के लिए यह भी आवश्यक है कि :

—भारत में हिंदी का प्रोत्साहन और समर्थन आगे बढ़ाया जाए।

—जर्मन विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थानों में आधुनिक भारतीय भाषाओं की, विशेषकर हिंदी की, पढ़ाई को ज्यादा समर्थन मिले।

—जर्मन में व्याकरणों, पाठ्य-पुस्तकों, शब्दकोषों जैसी हिंदी पाठ्यसामग्री ज्यादा विकसित की जाय, जो दूसरी ओर से यह भी मांगता है कि यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहुत बड़े खोजकार्य के आधार पर हो जाय।

—आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य, विशेषकर हिंदी साहित्य का जर्मन में अनुवाद करने का प्रोत्साहन और समर्थन किया जाय तथा भारतीय लेखकों और उनके अनुवादकों को काम के वार्तालापों के अवसर भी दिए जाएं

—इन सब कामों के लिए भारत और जर्मनी की सरकारों और भिन्न-भिन्न संस्थानों का हरेक प्रोत्साहन और समर्थन की, विशेषकर आर्थिक सहयोग की आवश्यकता है।

मेरे विचार से इसमें विश्व में और खास तौर पर मेरी मातृभूमि जर्मनी में भारतीय सभ्यता के बारे में ज्ञान फैलाने का महत्वपूर्ण योगदान है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

''एक दृष्टिकोण से अनुवाद करना रचना प्रक्रिया से अधिक कठिन कार्य है। यह कोई सरल कार्य नहीं है कि साथ ही साथ वास्तविक रचना से अनुवाद मिलता भी हो और रचनाकार की साहित्यिक शैली भी सुरक्षित रहे। यह दुष्कर कार्य वही मनुष्य कर सकता है जिसको दोनों भाषाओं पर समानाधिकार प्राप्त हो।''

—मौलाना अबुल कलाम आजाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संस्मरण-लेख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बर्मा की धरती पर

विष्णु प्रभाकर

जहाज के उड़ने में अभी देर थी, लेकिन मन एक उल्लास से भरा हुआ था। देश से बाहर जाने का पहला अवसर है। केवल आमोद-प्रमोद के लिए ही जाना नहीं है। भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय प्रसिद्ध होने से पूर्व बहुत वर्षों तक बर्मा में रहे थे, उनकी जीवनी के लिए सामग्री खोजने का उद्देश्य ही मेरी इस यात्रा का कारण है। मेरे साथ हैं अनुभवी पर्यटक श्री यशपाल जैन।

दक्षिण पूर्व के देशों में एक समय भारतीय संस्कृति का साम्राज्य रहा है। आज भी उसके अवशेष वहां हैं। उनको देखने का आकर्षण भी कम नहीं है। अखिल बर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में भाग लेने का निमंत्रण भी है। लेकिन वीसा मिलने में इतनी अड़चनें आईं कि एक बार तो ऐसा लगा कि जाना नहीं हो सकेगा। सम्मेलन का अधिवेशन दीवाली पर होने वाला था उसे भी स्थगित करना पड़ा, परंतु इसी बीच में बर्मा की सरकार बदल गई। ऊ नू फिर से प्रधान मंत्री बने और तभी आई एक दिन यह सूचना कि हम बर्मा जा सकते हैं। पता नहीं, यह मात्र संयोग था या परिवर्तन का परिणाम अथवा हमारे मित्रों के प्रयत्नों का सुफल।

लेकिन दीवाली बीत चुकी थी और होली आने में अभी देर थी। चाहते थे कि किसी त्यौहार के अवसर पर ही जायें, जिससे वहां के उल्लास को देख सकें। सो होली पर जाने का निश्चय किया ...

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और फिर आज का दिन आ पहुंचा। अभी-अभी कस्टम से बाहर आए हैं। हमने अपरिचित मित्रों को भेंट में देने के लिए पांच-पांच रुपए की जो खरीज पास रख ली थी, बस उसी पर अधिकारी ने आपत्ति की। प्राय: नहीं करते, लेकिन करने का कानूनी अधिकार उन्हें है। उसी कारण वे अधिकारी अड़ गए। बहुत समझाने-बुझाने पर उन्होंने कृपा कर दो रुपए के सिक्के ले जाने की आज्ञा दी। शायद उनके मान-अपमान का प्रश्न बन गया था। अधिकार-लिप्सा ही इसके मूल में है। परंतु जाने दें इन बातों को। घोषणा हो रही है कि रंगून जाने वाले यात्री अपने जहाज पर सवार हो जाएं।

भीतर सब कुछ सुंदर है। आरामेह स्थान है गुदगुदा, स्वच्छ। फर्श पर नीली मखमल। नाना जाति और वर्णों के 22 यात्री ...।

सहसा शोर मच गया। हमारा वाईकाउंट चला। कुछ दूर चलकर वह रुका। फिर तीव्र गति से धरती से नाता तोड़ कर वह आकाश की गहराइयों की ओर दौड़ने लगा। कुल 640 मील का वायु मार्ग है। 2 घंटे 20 मिनट लगेंगे। और हमें यह भी बताया जा रहा है कि 17,500 फीट की ऊंचाई पर उड़ना है। तभी नीचे देखता हूं, जलूसों और अट्टालिकाओं की कलकत्ता नगरी जैसे धरती पर बिछी हुई है। मीलों का विस्तार सिमट गया है। विषमताएं और असमानताएं सर्वग्रासनी दूरी में खो गई हैं। दृश्य इतनी तीव्र गति से बदल रहे हैं कि उन्हें देखते-देखते मैं अपने में खो जाता हूं। मेरे चारों ओर गहरी निस्तब्धता है। निरभ्र आकाश में यत्र-तत्र बिखरे हैं बादल। नीचे फैली है अनगिनत जल धाराएं। बीच में देखता हूं द्वीप बनाती हरितवसना धरती को। यही तो सुंदरवन है। उसके बीच से बहती जा रही है शांत, गंभीर असंख्य धाराओं में बटी हुई हिमवान की बेटी गंगा। क्षण के आवेग में मैं सहस्त्रों मील दूर हिमालय की एक चोटी पर पहुंच जाता हूं। वही तो गंगा का उद्गम है। देखता हूं एक हिमानी मुख से बाहर आती हुई, प्राणों में प्रभंजन का वेग भरे एक छोटी-सी हिमधारा। वह तूफानी गति यहां पहुंचते कितनी शिथिल मंथर हो गई है। लेकिन उतना ही विस्तृत हो गया है उसका पाट। उदय और अस्त, कितना अंतर है दोनों में। अंत में आते-आते कोई इतना अर्जित कर लेता है कि उसका भार उसे शिथिल कर देता है। अनुभूति समृद्ध करती है तो अंत को पास भी खींच लाती है।

न जाने कहां खो गया था। अब चौंक कर देखता हूं—नील गगन में दूर-दूर तक नानावर्णी बादल बिखरे हैं। कहीं दूर एक धुंध-सी फैली है और नीचे लहराता है तलहीन नीला समुद्र। कोई अंत नहीं इस विपुल विस्तृत जलराशि का। ऊंचाई ने तरंगों को भी लील लिया है। बादलों ने उन्हें अपने आगोश में ले लिया। लेकिन दोपहर का भोजन करते-करते ये सभी बादल भी न जाने कहां चले जाते हैं। रह जाता है विस्तृत व्यापक नीलवर्ण। नीचे निपट नीली धरती, ऊपर निपट नीला आकाश। केवल क्षितिज के पास कुछ-कुछ श्वेत दिखाई देता है और दूसरे ही क्षण उस अनंत जल-राशि में सिर उठाए अनेक द्वीप दृष्टि-पथ से आ टकराते हैं ...

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उड़ते-उड़ते लगभग डेढ़ घंटा हो चुका था। अब दूर पर मैं धरती को देख सकता हूं। मानो समुद्र में लंबी नोक सी चली आई है। पता लगता है कि हम अकयाब की खाड़ी से गुजर रहे हैं। नाना रूप टापुओं की श्रृंखला समाप्त होने लगी है। बीच बीच में एयर पोकेट आ जाते हैं। झटके के साथ जहाज नीचे उतरता है। उसी के साथ बढ़ जाता हृदय का स्पंदन। फिर जहाज ऊपर उठता है। स्पंदन में स्थिरता आती है। घड़ी देखता हूं तो एक बजकर चालीस मिनट हो चुके हैं। रंगून में तो इस समय दो बजकर चालीस मिनट हुए होंगे। बीस मिनट की यात्रा शेष रह गई है। समुद्र पीछे छूट गया है। नीचे नदी है, वन प्रांत है, ऊपर है बादल। सब कहीं सुहावना है। प्रश्न उभर आता है क्या यह वातावरण भारत के वातावरण से कुछ भिन्न है। धरती, नदी, वन, प्रांत, बादल क्या ये सब बदल गए हैं? सब कुछ वैसा ही तो दिखाई दे रहा है, जैसा भारत में। पर सब यात्री शांत क्यों हैं? दोनों परिचारिकाएं भी पीछे बैठी आराम कर रही हैं कि सहसा घोषणा होती है—'हम उतरने वाले हैं, पेटियां बांध लीजिए।'

और सचमुच हमारा जहाज धरती की ओर उन्मुख होता है। धरती पास और पास खिंचती चली आती है। यह वैसी ही धरती है जैसी हम पीछे छोड़ आए हैं। मेरी घड़ी दो बजा रही है। मिंगला डोन हवाई अड्डे की घड़ी को देखता हूं तो तीन बज चुके हैं। विमान धरती को छूता है। कुछ क्षण दौड़ कर फिर ठहर जाता है ...

धरती पर पैर रखते ही मैं फिर चौंक पड़ता हूं। सब कुछ वैसा ही तो है जैसा कलकत्ता में था। बस बर्मी लोगों का रूप-रंग और वसन हमसे भिन्न है। भारत में भी तो नाना रूप रंग के लोग बसते हैं। ये विविधता कितनी आनंद-दायिनी है। हर्ष के कारण मेरे कदम डगमगाते हैं। फिर कुछ रीति-नियम पूरे होते हैं। पार-पत्र, स्वास्थ्य के प्रमाण-पत्र, सामान, सभी कुछ जांचा जाता है। लेकिन कहीं भी तो कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। बड़ा डर लगता था, लेकिन अब तो मन उमग उमग आता है।

बाहर आते ही देखते हैं कि हमें लेने के लिए भारतीय बंधुओं की एक भीड़ आई है। उसमें परिचित-अपरिचित सभी हैं। स्त्री-पुरुष बच्चे सबके चेहरों पर हर्ष उभर आया है। आदर-सत्कार की कोई सीमा नहीं। विशुद्ध पारिवारिक वातावरण है। श्री सत्यनारायण गोयनका, डा. ओमप्रकाश, उनकी पत्नी सभी तो जाने पहचाने मित्र हैं। मन भीग-भीग आता है।

हमें अभी 13 मील दूर जाना है। मैं कुछ नया-नया देखने को उत्सुक हूं। लेकिन ये मार्ग, ये बाजार, मकान, दुकानें कहीं भी तो कुछ विशेष दिखाई नहीं देता।

लेकिन नहीं, विशेषता है। आज से इस देश में तिन्जान का पर्व मनाया जा रहा है। बड़ा अनोखा है यह पर्व। यह तिन्जान शब्द संस्कृत के संक्रांत का बर्मी रूपांतर है। चार दिन तक यह पर्व चलता रहता है। पहले दिन देवराज इंद्र का आह्वान करते हैं। फिर दो दिन तक मुक्त रूप से जलोत्सव मनाया जाता है। चौथे दिन होती है इसकी परिसमाप्ति। इसकी मूल कल्पना नव-वर्ष का अभिनंदन करने में है। प्यासी धरती को पानी से शीतल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर दिया जाता है। मानो जो बीत गया है, उसकी कलुषता को धो देना चाहते हों। संगीत, नृत्य-नाट्य, सांस्कृतिक झांकियां, वाद्यों की मधुर-ध्वनि और उनकी ताल पर नृत्य करती हुई सुंदर मोहक युवतियां। मानो ये सब इंद्र की पूजा करती हों...

सारे मार्ग पर बर्मी बालक-बालिकाएं, स्त्री-पुरुष पिचकारियां, बाल्टियां, कटोरे लिए खड़े दिखाई देते हैं। मंगोल वंशी इन व्यक्तियों का रूप-रंग हमसे भिन्न अवश्य है, लेकिन कार्य-व्यवहार सब कुछ वैसा ही है। नहीं शायद मैं गलत कह गया। व्यवहार में भी एक अंतर देख पाता हूं, वे केवल पानी फेंक रहे हैं। न पक्के रंग हैं, न कीचड़ है। हमें देखकर वे लपकते है। उनका उछाह और उल्लास हमारे मन को छूता है। स्थान स्थान पर कलापूर्ण मंडप बने हुए हैं। रात्रि में यहीं पर नृत्य-नाटिकाएं होंगी। आनंद के इस अवसर पर शव-यात्रा का एक लंबा जुलूस भी दिखाई देता है। मृत्यु देवता किसी बात की चिंता नहीं करता।

हम विश्व प्रसिद्ध श्वे डगोन पगोंडा के पास से गुजर जाते हैं। अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर की समाधि भी पीछे छूट जाती है, लेकिन जहां हम पहुंचते हैं, उसका नाम है मुगल स्ट्रीट (आज ये सब नाम बदल गये हैं)। हम श्री सत्यनारायण गोयनका के अतिथि हैं। अनेक भारतीय मित्र हमें घेर लेते हैं। स्वागत-सत्कारों की बातों में समय न जाने कहां से आकर कहां चला जाता है। संध्या होते होते, हम नगर में जाकर कुछ झांकियां देख आते हैं। उल्लास मन को छूता है, लेकिन कलात्मक स्तर बहुत प्रभावित नहीं करता।...

रात्रि को हम भोजन नहीं करते। फल और दूध की व्यवस्था है। एक नया फल हमारे सामने है। नाम है उसका 'मैंगो स्टीन'। उसके भीतर से शरीफे के समान, लेकिन बड़े-बड़े बीज निकलते हैं। स्वाद मधुर है। और कहते हैं, यह फल गुणकारी भी है। सोने से पूर्व मैं गोयनका जी के पुस्तकालय में खो जाता हूं। विदेश में मेरा पहला दिन बीत जाता है। लेकिन कैसा है यह विदेश। वही आकाश, वही धरती, फिर कैसा देश कैसा विदेश ...

आंख खुलती है। प्रकाश फैला हुआ है। वैसा ही प्रकाश जैसा भारत में। अंतर केवल इतना है कि वहां इस समय पौने पांच बजे होंगे। यहां पौने छः बजे हैं। सूर्य यहां पहले जो निकल आता है।

चारों ओर एक दूसरे में उलझे एक दूसरे से सटे मकान दिखाई देते हैं। दाहिनी ओर की खिड़की से देखता हूं तो रंगून नदी दिखाई देती है। यह नदी बर्मा की सुप्रसिद्ध ईरावती नदी और समुद्र को मिलाती है। बड़ी बड़ी नावें उसमें पड़ी हुई हैं। उनके बीच से होकर एक छोटी सी नाव चली आ रही है। उसके पार हरे भरे खेत दिखाई देते हैं। लेकिन हमें तो तैयार होकर बाजार जाना है। सड़कों पर होली जो मनानी है। ...

बाजार पहुंचने पर पाया कि मानों सारा बर्मा मस्त हो उठा है। लोग पानी सा पानी डाल रहे हैं। जीप, बस, रिक्शा, मोटर, पैदल कोई भी तो उस प्यारी मार से नहीं बच पाता। चारों ओर नाचते गाते इन स्त्री पुरुषों को देखकर मुझे अथर्ववेद के उस मंत्र की याद आ जाती है जिसमें एक ऋषि ने गाया है—ये नाचते गाते लोग ...

आज हमारा लक्ष्य 7 मील दूर हमारे आतिथेय की फैक्ट्री है। लेकिन न गाड़ी तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आगे बढ़ ही नहीं पाती। बार बार हाथ का इशारा करके भीड़ उसको रुकवा देती है और फिर हमें पानी से तर कर देती है। गिलास से वे कमर पर इस प्रकार पानी फेंकते हैं मानो कोड़े मार रहे हों। दूर से आती ट्यूब की तीव्र धारा बदन में चुभ-चुभ जाती है। कानों में पानी भर जाता है। कहीं गर्म, कहीं ठंडा, कहीं शर्बत भी है। बड़े प्यार से पिलाने के लिए लाते हैं और पीने से जो बच जाता है उसे हमें समर्पित कर जाते हैं।...

देखता हूं, स्थान स्थान पर मंच बने हुए हैं। मुंह पर पाउडर लगाए जूड़ा बांधे, लिपिस्टिक से ओंठ रंग, गौरवर्णी बर्मी लड़कियां, नाना रंग की पोशाकों से सजी-धजी कहीं गीत गाती दिखाई देती हैं तो कहीं इस अदा से बैठी हैं मानों इंद्र सभा की परियां हों। लेकिन पानी डालने से नहीं चूकती। यहां स्त्री-पुरुष, युवक-युवती का कोई भेद नहीं है। कोई अशिष्टता भी नहीं है। एक दिव्य उल्लास जो तल को भिगोता है और मन को सिंजोता है। देखता हूं, युवतियां विशेष रूप से सब का लक्ष्य हैं। पास आकर उनकी एंजी को गर्दन के पास से जरा हटा कर बर्फ सरका देने में किसी को संकोच नहीं होता। वे भी आपत्ति नहीं करतीं। यही मैं एक अंतर देख पाता हूं भारत और बर्मा में। यहां की नारी कितनी मुक्त है। पुरुष की सहयोगिनी और भारत में असूर्यपश्या दासी।

मार्ग में शांति पगोडा के पास रुकते हैं। भारत मंदिरों का देश है। बर्मा पगोडाओं का। यह भी तो मंदिर ही है, लेकिन ठोस। इनके नीचे भगवान बुद्ध के पवित्र अवशेष दबे हैं। इस पगोंडा के निर्माण की एक कहानी है। सन् 1948 में पकोक की बस्ती से कुछ दूर पर 'शिंग मा चऊं' की पहाड़ी की तलहटी में एक बर्मी ध्यानस्थ बैठा था। न जाने कहां से आ कर एक श्वेत वस्त्रधारी वृद्ध उनके पास खड़ा हो गया। उसके हाथ में बांस का एक दंड था। जिस पर सिरी मंगला लिखा हुआ था। यह दंड उस व्यक्ति को देते हुए वृद्ध ने कहा—"इसे आप प्रधानमंत्री ऊ नू को दे दीजिए और कहिए यहां एक पगोडा बना दें।"

ऊ नू ने वृद्ध की बात मान कर रंगून से सात मील दूर एक पहाड़ी को चुना। संयोग की बात इस पहाड़ी का नाम सिरी मंगला था। पगोडा का नाम रखा गया 'गबा एई'। गवा अर्थात् विश्व, एई अर्थात् शांति। यह पगोडा विश्व-शांति को समर्पित है। इसका व्यास 300 फीट, ऊंचाई 118 फीट, शिखर पर सोने का छत्र है। भीतर 100 फीट की एक गुफा है। उसके पांच द्वार हैं। प्रत्येक द्वार के सामने तथागत की एक विशाल मूर्ति है। एक ऊंची वेदी पर 28 बोधिसत्वों की स्वर्ण प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। यहां पर भगवान बुद्ध के पवित्र दांत के अतिरिक्त उनके परम शिष्य सारीपुत्त और महामोग्गलायन के पवित्र अवशेष भी सुरक्षित हैं। ये सांची में मिले थे। वहां से लंदन के संग्रहालय गये। लेकिन भारत के स्वतंत्र होने जाने पर उन्हें वहां से मंगवा लिया गया। यहां का प्राकृतिक वातावरण अत्यंत मनोरम है।

इसके पास ही महापसना गुफा है। उसके निर्माण की भी वैसी ही विचित्र कहानी है। बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते-करते ऊ नू एक बार बोधगया गये थे। वहां बोधिसत्व के नीचे जब वे ध्यानस्थ बैठे हुए थे, उस समय उन्हें एक गुफा दिखाई दी, जो ठीक महापासना गुफा के समान थी। उसमें देश-देशांतर से आए हुए बौद्ध भिक्षुओं का समुदाय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था जो युद्ध से क्षत-विक्षत व्यक्तियों को शांति और प्रेम का संदेश देने के लिए एकत्र हुआ था।

बर्मा लौट कर उसी स्वप्न को ऊ नू ने मूर्त रूप दिया। इस गुफा का निर्माण विशेष रूप से छठा बौद्ध संगायन संपन्न करने के लिए किया गया था। यह संगायन सन् 1954 की बुद्ध पूर्णिमा से सन् 1956 की बुद्ध पूर्णिमा तक चलता रहा था। उसी समय भगवान बुद्ध की ढाई हजारवीं जयंती मनाई गई।

गुफा में प्रवेश करने के लिए छः द्वार हैं। भीतर छः स्तंभों वाला एक विशाल सभाकक्ष है। इसके निर्माण में विभिन्न संप्रदायों के लगभग 64 हजार व्यक्तियों ने श्रम दान किया था। इसमें चारों ओर हजारों भिक्षुओं के बैठने के लिए स्थान बने हुए हैं। किसी गृहस्थ का वहां जाना वर्जित है। लेकिन आज तो वैसे भी वह गुफा बंद है ...

हम लोग फिर उल्लास में डूबे-डूबे विश्व-प्रसिद्ध 'श्वे डगोन' पगोडा के पास पहुंच गये। प्रत्येक देश की संस्कृति को समझने के लिए अलग-अलग प्रतीक और माध्यम होते हैं। बर्मा की सांस्कृतिक परंपरा को जानने के लिए वहां के पगोडाओं का इतिहास जानना आवश्यक है। कहते हैं लंका का 'डगोबा' शब्द बिगड़कर 'पगोडा' बना। डगोबा का संस्कृत के धातु गर्भा शब्द से संबंध है। धातु गर्भा का अर्थ है, पुनीत अवशेषों की स्थापना का स्थान।

पगोडाओं की आकृति के संबंध में एक कथा प्रचलित है। भगवान गौतम बुद्ध ने महानिर्वाण से पूर्व स्वयं निर्देश दिया था कि उनकी समाधि पर चावल के ढेर की पहाड़ी बना दीजिए। यह भी सुना जाता है कि भगवान जब मां के गर्भ में थे तब उनकी आकृति कमल कली के समान थी। इन दोनों रूपों को मिला देने पर पगोडाओं का रूप निश्चित हुआ।

श्वे डगोन पगोडा का निर्माण ईसा से 500 वर्ष पूर्व हुआ बताते हैं। प्रारंभ में यह केवल 27 फुट ऊंचा था, लेकिन 15वीं सदी तक इसकी ऊंचाई 326 फीट तक पहुंच गई। इसका श्रेय पेंगु की रानी 'शिन साबूने' को दिया जाता है।

बौद्ध धर्मग्रंथों में इसके निर्माण की एक और कहानी दी गई है। ओ काला के 'मौन' क्षेत्रीय दो व्यापारी तापुसा और बालिका या भल्लिका एक बार समुद्र के रास्ते भारत गए थे। वहां उनकी भेंट भगवान तथागत से हुई। भगवान उनकी श्रद्धा से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपने आठ बाल उपहार स्वरूप दिये। जब ये व्यापारी बर्मा लौटे तो उस समय में राजा ओकलापा ने तेई गूतारा नाम की पहाड़ी पर एक सोने के पगोडा में इनकी स्थापना की। तब से भक्त लोग इस पगोडा पर सोना, चांदी और माणिक्य-मुक्ता चढ़ाते आ रहे हैं। इनके शिखरों, प्रतिमाओं और आंगनों का वर्णन करना बहुत कठिन है। इनके चारों ओर चार छायादार प्रवेश द्वार हैं। आज अपार भीड़ थी। द्वार से प्रवेश पाना असंभव हो गया। लिफ्ट द्वारा ऊपर जा कर फिर नीचे आये। देखा सहस्त्रों उपासक-उपासिकाएं उपासना में लगे हुए हैं। पूजा की सामग्री के लिए चारों ओर दुकानें हैं ...।

यदि हम पश्चिमी द्वार से प्रवेश करते हैं तो हम राजा ओकलापा की मूर्ति देख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकते हैं। इस पगोड़ा की कुर्सी धरातल से 2 फुट 3 इंच ऊंची है। इसकी परिधि 1420 फुट है। मुख्य देवालय के आंगन में 64 पगोडा और हैं। चार बड़े पगोडा ठीक मध्य में हैं। आंगन सुंदर संगमरमर का बना है। परिक्रमा करते समय हम जिधर भी देखते लकड़ी पर कारीगरी के एक से बढ़ कर एक नमूने दिखाई देते थे। विशाल स्तंभों को गिनना हमारे लिए असंभव हो गया। पीतल की बनी हुई भगवान बुद्ध की अनेकानेक मूर्तियां बहुत ही आकर्षक दिखाई देती हैं।

हम लोग भीड़ में से मार्ग बनाते हुए महाघंट के पास जा पहुंचे। यह यहां की अत्यंत आकर्षक वस्तु है। वास्तव में यहां दो घंटे हैं। एक सात फुट ऊंचा साढ़े छः फुट चौड़ा और एक फुट मोटा है। इसे राजा सिंगूमिन ने सन् 1778 ई. में भेंट किया था। इसके बाद राजा धारावड़ी ने सन् 1841 में एक और घंटा भेंट किया। उसका नाम है महा तिसा घंटा। इसका वजन 40 टन, ऊंचाई साढ़े आठ फुट, चौड़ाई 7 फुट 9 इंच और मोटाई एक फुट है। देखकर चकित रह गए। इस घंटे के संबंध में माना जाता है कि यदि इसे नौ बार बजाया·जाए तो उस व्यक्ति को फिर बर्मा जाना पड़ता है। हमने ऐसा ही किया (लेकिन दस वर्ष बीत जाने पर भी दूसरी बार जाने का अवसर अभी तक नहीं आया है)।

जैसा कि भारत में होता है यहां भी पुरोहित लोग चीख-चीख कर बोल रहे थे, महिलाओं को देखा वे कपड़ा बिछा कर इस प्रकार अर्चना कर रही थीं कि नमाज पढ़ने का भ्रम होता था।

ऊपर की ओर दृष्टि गई। तीन चौरस चबूतरे दिखाई दिए। उन पर अनेक छोटे बड़े पगोडा बने हुए थे। एक और घंटा हमने यहां देखा। पास ही भिक्षु-पात्र बने हुए थे। 31 फुट पांच इंच का एक कमल भी वहां बना हुआ था। बहुत ऊंची मीनार के ऊपर 33 फुट ऊंचा स्वर्ण छत्र बना हुआ है। बताया गया कि इसका मूल्य 7 लाख रुपये हैं। इसे राजा भिडन ने भेंट किया था। मीनार की ऊंचाई 52 फुट से भी अधिक है। इस पगोडा के शीर्ष पर हीरे की कली जड़ी हुई है। और उसके नीचे है बहुमूल्य रत्नों से जड़ी स्वर्ण मेखला। सहसा विचार उठा—धर्म को सचमुच मनुष्य ने सोने क्रे पात्र से ढक दिया है। उपनिषद में जिस हिरण्यपात्र की चर्चा आती है वह यही तो है। अपने ही स्वर्ण मेखला में बंध कर मनुष्य ने वास्तविक धर्म से मुक्ति पा ली है। शेष रह गए हैं केचुल ....

लेकिन रहने दें आज दर्शन की चर्चा। हमारा अंतर्मन तो होली के उल्लास से भीगा हुआ है। बर्मी संस्कृति के इस प्राचीनतम आलोक स्तंभ से बाहर निकल हम फिर जलोत्सव की वर्षा से रस-सिक्त हो उठते हैं ....

आज रात्रि के भोज में एक और नया फल देखा। कटहल जैसे इस फल का नाम है 'दुरियान'। इसके भीतर बड़े बड़े बीज होते हैं। जिन पर मलाई जैसा स्निग्ध पदार्थ चिपा रहता है। इसमें एक विचित्र प्रकार की गंध आती है। कुछ व्यक्तियों को यह गंध अत्यंत प्रिय है, कुछ को अत्यंत अप्रिय। कहते हैं, यह फल बहुत शक्तिदायक है। इसलिए सहज सुपाच्य नहीं है। अपनी तीव्र गंध के कारण इसका वायुयान में ले जाया जाना वर्जित है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज हमें पैगू जाना है। रंगून से 50 मील दूर यह नगर किसी समय बर्मा की राजधानी रहा है। यहां पर शयन मुद्रा में बुद्ध की बहुत ही सुंदर और विशाल मूर्ति है। 8 बजे से पहले रवाना नहीं हो सके। सड़क पक्की है। सुहावने मार्ग के दोनों ओर हरियाली है। बीच-बीच में गांव के पास से गुजरना होता है और वहां दूर-दूर तक दल के दल स्त्री-पुरुष, बच्चे सड़क के दोनों ओर जल डालने के लिए खड़े हुए हैं। ट्रकों पर और जीपों पर नाचते गाते, पानी बरसाते लोग भी कम नहीं हैं। कहीं पर ट्यूब हैं तो कहीं पर बाल्टी और कटोरे। पिचकारियां भी कम नहीं हैं। चुपके से आकर कुर्ता हटा कर बर्फ डालने में उन्हें कैसा आनंद आता है। आनंद हमें भी कम नहीं आता। जब सिर पर बाल्टी उड़ेल देते हैं तो सिहरन सी बदन में दौड़ जाती है। लेकिन उल्लास उमड़ उठता है। असभ्यता यहां भी हम कहीं नहीं देख सके। हास-परिहास की कमी नहीं। एक स्थान पर देखा, एक व्यक्ति एक बबुए को धागे में लिपटाये हुए खड़ा है और बार-बार पुकार कर कुछ कह रहा है। मैंने पूछा, 'यह क्या कहता है?'

साथी ने हंसते हुए उत्तर दिया, ''यह कहता है, यह बच्चा भूखा है। इसे दूध पिला दो न।''

एकाएक फिर अट्टहास उठा। हमारे सिर पर आज रंगीन तौलिये थे। ''पारे पारे'' कहता हुआ एक दल पास आया और फिर उतना ही निराश होकर 'मपाबू मपाबू' कहता हुआ वापिस लौट गया। 'ईराबो ईराबो' के शोर से वातावरण गूंज रहा है। उन्माद अपनी चरम सीमा पर है। उल्लास और मस्ती से उच्छृंखलता और असंयम का आभास तक दिखाई नहीं देता।

इस उल्लास में डूबते-उतराते हम कब पैगू पहुंच जाते हैं यह पता भी नहीं लगता। अच्छा खासा बाजार दिखाई देता है। पगोहा भी है। वैसी ही भीड़, वैसी ही पूजा-विधि। देखता हूं स्त्री-पुरुष, भिक्षु, बालक, सभी समान रूप से निःसंकोच हो कर चुरूट पी रहे हैं। मानो यह यहां का राष्ट्रीय पेय हो।

धूप में तेजी आ चली है। बाजार से होते हुए हम शयन मुद्रा में भगवान बुद्ध की मूर्ति देखने के लिए चले जाते हैं। प्रतिमा की विशालता और मुख पर झलकने वाली दिव्य सौम्यता हमें अभिभूत कर लेती है। सहज रूप से लेटे हुए भगवान बुद्ध मानो मुस्करा कर शांत भाव से धर्म चर्चा कर रहे हैं। यह शांति, यह मधुरिमा और यह विराट भव्यता देखकर सहसा मुझे मैसूर राज्य में 'गोमतेश्वर बाहुबलि' की प्रतिमा और लियोनार्ड द विंची की विश्व प्रसिद्ध कलाकृति 'मोनालिसा' की याद आ जाती है। उतनी ही रहस्यमयी है यह मुस्कान, जिसको काल तनिक भी प्रभावित नहीं कर सका है।

हम बिल्कुल भीग चुके हैं। ऊपर से भी और भीतर से भी। शोर की कहीं कोई सीमा नहीं है। दुकानों पर युवतियां ही युवतियां हैं। मातृमूलक इन देशों में नारी ही तो प्रधान है। उधर देखा अनेक ट्रक खड़े हैं। सबमें युवतियां ही युवतियां हैं। नारी तो सहज प्रसाधन प्रिय है, क्षण भर रुककर केशों में कंघी करती हैं, जूड़ा बांधती हैं, मुख पर पाउडर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगाती हैं। पाउडर के समान एक और पदार्थ इन देशों में होता है। उसका नाम है 'तक्खा'। चंदन के समान घिस कर उसे मुख पर लगाया जाता है। लेकिन जो अति आधुनिकाएं हैं, उनमें यह लोकप्रिय नहीं रहा है...

वे तैयार हुई और मनचले युवकों का एक दल आ पहुंचा। पानी बरसने लगा। युवतियां जैसे इसी के लिए तो तैयार हुई थीं। उल्लास से भर उठीं।

देखता हूं, व्यापार करती नारियां खूब मोल भाव करती हैं। खाने के नाना पदार्थ दिखाई देते हैं। नाना प्रकार के फल हैं, लेकिन चावल, फलूदा और मांस यहां का प्रिय भोजन है।

लौटने का समय पास आ गया है। धूप में अभी भी तेजी है। मार्ग में इस बार उतना उल्लास दिखाई नहीं देता। मन में उठता है कोई हम पर पानी डाले, लेकिन बस कुछ लड़कियों पर ही लोग पानी डालते हैं। हमारे रंगीन तौलिए भी उन को आकर्षित नहीं करते। यह कैसा परिवर्तन है? लेकिन दूसरे ही क्षण यह रहस्य खुल जाता है। यहां पर पानी की बहुत कमी है। इसलिए विवश होकर ये लोग कुछ स्त्रियों पर ही पानी डाल कर संतोष कर लेते हैं। लेकिन जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये, पानी का अभाव कम होता गया। हम लोग उसी तरह भीगते गये। वातावरण उसी तरह गूंजता रहा। घर पहुंचते-पहुंचते हम पूरी तरह रस सिक्त हो चुके थे।

आज रात नृत्य नाट्य और संगीत का रसास्वादन कर सके।...

रंगून आज भी मस्ती की लहरों में बह रहा है। चीन के प्रधान मंत्री चाउ एन लाई जलोत्सव में भाग लेने के लिए अभी अभी यहां से गुजर कर गए हैं। हम स्थानीय मित्रों से पैगू का इतिहास जानने को उत्सुक हो उठते हैं। कभी इस नगर का नाम 'हंसावती' था। फिर 'ऊ पा' हुआ। हर नाम की एक कहानी है। कथा आती है, एक बार भगवान बुद्ध इधर से कहीं जा रहे थे। उन्होंने एक टापू पर एक हंस को देखा। बोले 'यहां पर मेरा धर्म फलेगा।'

उस समय यह टापू बहुत छोटा था। फिर धीरे-धीरे विस्तृत होता गया। हंस का निवास स्थान होने के कारण इसका नाम पड़ा 'हंसावती'। हंसावती से ऊ पा और ऊ पा से पैगू बनने की बड़ी विचित्र कहानी है। 'पै' का अर्थ होता है 'बत्तख' और 'गू' का 'तैरने का स्थान'। जब अंग्रेज आए तो उन्होंने हंस को बत्तख बना दिया और इस प्रकार इस नगर का नाम हो गया पैगू।

न जाने कितनी विश्वसनीय और अविश्वसनीय कहानियां हमने सुनीं। हमारे मित्र भारती एक युग से यहां रहते हैं। बर्मा के इतिहास और भूगोल का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया है। इधर के देशों में सब कहीं 'राम कथा' प्रचलित है। यहां भी नृत्य नाट्य में 'राम कथा' का प्राचुर्य है। लेकिन बर्मा के उत्तरी प्रदेश 'अराकान' के साथ कृष्ण की कहानी भी जुड़ी हुई है। भारत से बाहर एक यही प्रदेश है जहां कृष्ण पहुंच सके।...

लेकिन अभी तो जलोत्सव का उन्माद उतरा नहीं है। उल्लास में जरा भी कमी नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आई। संध्या को घूमते हुए एक अद्‌भुत दृश्य देखा। एक पुरुष बहंगी में दो बच्चों को बिठाए हुए ले जा रहा था और रह रह कर कुछ पुकार उठता था। उसकी बात सुन कर सभी स्त्री पुरुष खिलखिला कर हंस पड़ते। मैंने अपने आतिथेय से पूछा, 'यह व्यक्ति क्या कहता है? और इन बच्चों को कहां ले जा रहा है?'

वे हंसे और बोले, यह व्यक्ति कहता है इन बच्चों की मां खो गई है। मैं उसे ढूंढ़ने निकला हूं। वह कहां चली गई। अरे लो, यही तो सामने खड़ी है। मिल गई, मिल गई।

आश्चर्य ! स्त्रियां भी मुक्त मन से हंस रही है। जलोत्सव के उन्माद में कौन किसी बात का बुरा मानता है। कभी कभी यह परिहास और आगे बढ़ जाता है। वह व्यक्ति कहता है, 'अरे बच्चे को दूध तो पिला दो। लो पिला दो न।'

आतिथेय ने हमें बताया कि कहीं-कहीं गांव में यह परिहास असभ्यता की सीमा को छू जाता है, लेकिन भारत से इस की कोई तुलना नहीं है।

रात्रि को हम फिर झांकियां देखने के लिए निकले। नृत्य, नाट्य, संगीत, सब कुछ देखा सुना, लेकिन मैं स्वीकार करूंगा, हम उससे विशेष प्रभावित नहीं हो सके। कला का अभाव निरंतर खटकता रहा। पूछने पर पता लगा कि गत वर्ष सैनिक शासन में सब कुछ बंद कर दिया गया था। अब नये सिरे से फिर जीवन जाग उठा है।

रातें बड़ी सुहावनी होती हैं। विस्तृत खुली छत पर मित्रों के बीच में बैठ कर हम बर्मा के इतिहास और शरतचंद्र के जीवन पर चर्चा करते हैं। मंद मंद बयार और चारों ओर से उठती हुई मंद मधुर कीर्तन ध्वनि वातावरण को उल्लसित कर रही है। तिन्जान का अभी एक दिन और शेष है।

जलोत्सव का उन्माद अब शांत हो चला है। आज विसर्जन का पर्व है। हम अपने काम की ओर ध्यान देते हैं। दो बंगाली बंधु मि. घोष और मि. डे मिलने के लिए आए हैं। शरत बाबू के बर्मा प्रवास के संबंध में बहुत कुछ जानकारी देने को उत्सुक हैं, लेकिन मैं तुरंत समझ जाता हूं कि मि. घोष के मस्तिष्क में कहीं न कहीं कोई विकृति है ...

दिन इसी प्रकार बातों में बीत जाता है। संध्या के समय हम 'विसपासना रिसर्च असोसिएशन' देखने जाते हैं। एक अवकाश प्राप्त अकाउंटेंट जनरल यहां योग की क्रियाएं सिखाते हैं। वातावरण शांत है। योगी महोदय ऊपर के मंदिर में बैठते हैं। उनके चारों ओर और नीचे साधकों के लिए कमरे बने हुए हैं। वे सब टेलीफोन से जुड़े हुए हैं और उसी के द्वारा उन्हें आदेश मिलता रहता है। ऊपर के गोलाकार कमरों में वे स्वयं जा कर भी देखते हैं।

आज नव-वर्ष का उत्सव है। हम 'श्वे डगोन पगोड़ा' की ओर जाते हैं। चारों ओर से दल के दल लोग उधर ही तो जा रहे हैं। और उनके बीच में जा रही हैं सजी धजी बर्मी युवतियां। प्रत्येक के सिर पर जल का पात्र है। पंक्तिबद्ध एकलय में चलती हुई बहुत सुंदर दिखाई देती हैं। जलोत्सव का अंतिम दिन है न। वे देवता के चरणों में जल का विसर्जन करेंगे। और तिन्जान का त्यौहार समाप्त हो जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चारों ओर ये ही दृश्य दिखाई देते हैं। मन वहां से हटने को नहीं करता। लेकिन 'विवेकानन्द क्लब' का आमंत्रण है। शरतचंद्र की स्मृति में यहां एक छोटा सा पुस्तकालय बना हुआ है। दस पंद्रह व्यक्ति हमारा स्वागत करते हैं। लेकिन आश्चर्य, एक वृद्ध व्यक्ति के अतिरिक्त और किसी को शरत बाबू के संबंध में कोई जानकारी नहीं है। मन निराशा से भर उठता है।...

लेकिन बाजार की शोभा फिर हमें उल्लास से भर देती है। नारियां आज विशेष रूप से सजधज कर घूम रही हैं। 'महीन एंजी', जूड़ों में सोने के कंघे और गलों में स्वर्णहार, मुख पर पाउडर और तनखा का आलेप है। और पेशानी पर एक ओर पड़ा है केश गुच्छ। यह मोहक रूप मन को आकर्षण से सिक्त कर देता है। पार्कों में स्थान-स्थान पर सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहे हैं। जलोत्सव कुछ देर बाद समाप्त हो जाएगा। सोचता हूं बर्मा और भारत के बीच यह एक ऐसा सांस्कृतिक संबंध है जो बाहरी रंग रूप में भेद होने पर भी दो देशों के अंतर को जोड़े हुए है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी हमारे देश की एकता में सबसे अधिक सहायक होगी, इसमें संदेह नहीं।

—जवाहरलाल नेहरू

भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

मैं यह दावे के साथ कहता हूं कि हिंदी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

—बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय

हिंदी भाषा उस समृद्ध जलराशि के सदृश है, जिसमें अनेक नदियां मिलती हों।

—डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फीजी द्वीप के हिंदी शिक्षक और साहित्यकार

प्रो. विजयेंद्र स्नातक

आज से 67 वर्ष पूर्व मेरा फीजी द्वीप से परोक्ष परिचय हुआ। मैं उस समय पांचवीं कक्षा का विद्यार्थी था। हमारे एक शिक्षक श्री योगेंद्र नारायण पथिक हमें अंग्रेजी और इतिहास पढ़ाते थे। सन् 1925 में उन्हें फीजी द्वीप के आर्य बंधुओं की ओर से फीजी में गुरुकुल पद्धति से फीजी के विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिए एक निमंत्रण मिला और वे जुलाई मास में गुरुकुल वृंदावन से त्यागपत्र देकर फीजी चले गए। वहां उन्होंने गुरुकुल पद्धति से शिक्षा की व्यवस्था की। उनके साथ ही गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री अमीरचंद विद्यालंकार अध्यापन कार्य के लिए फीजी पहुंचे। इन दोनों महानुभावों के सदप्रयासों से आर्य समाज द्वारा संचालित गुरुकुल शिक्षा पद्धति की ओर फीजी के भारतवासियों का ध्यान आकृष्ट हुआ और पंडित अमीचंद विद्यालंकार ने हिंदी की कुछ पाठ्य-पुस्तकें भी तैयार कीं। इनकी सहायता से फीजी में हिंदी प्रचार को बल मिला।

आर्य समाज की विचारधारा उस समय फीजी द्वीप में जोर पकड़ रही थी और वहां के निवासी गुरुकुल शिक्षा पद्धति के द्वारा अपने बालकों को शिक्षा देने की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। फलतः सन् 1926 में 28 विद्यार्थियों का पहला दल भारत आया। इस दल में कई मेधावी छात्र थे। क्रमला प्रसाद, राघवानंद, सचिदानंद, जयराम, बहादुर,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ज्ञानेंद्र, बीडी लक्ष्मण, हरिश्चंद्र आदि अनेक मेधावी छात्र थे जो भारत में आने के बाद तीन वर्गों में विभक्त हो गए। अधिकांश विद्यार्थियों ने गुरुकुल वृंदावन में प्रवेश लिया। कुछ विद्यार्थी डी.ए.वी. हाईस्कूल, कानपुर और कुछ विद्यार्थी डी.ए.वी. कालेज, देहरादून में पढ़ने के लिए चले गए। इन विद्यार्थियों को कलकत्ते से वृंदावन लाने का कार्य मेरे पिता जी ने किया था। मेरे पिता जी ने इन विद्यार्थियों से उनकी अभिरुचि तथा हिंदी-अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञान का परिचय प्राप्त किया और उन्हें वृंदावन, कानपुर और देहरादून भेजने की व्यवस्था कर दी। पंडित अमीचंद विद्यालंकार ने जो पाठ्यपुस्तकें फीजी में तैयार की थीं उनका स्तर सामान्य था किंतु भाषा प्रवेश की दृष्टि से ये पुस्तकें उपयोगी थीं।

पंडित अमीचंद विद्यालंकार शिक्षा विषयक एक कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए इंग्लैंड गए थे। वहां से वापस आते समय विमान दुर्घटना में उनका देहांत हो गया। पंडित योगेंद्र नारायण पथिक ने उनका दायित्व संभाला और वे सदैव के लिए फीजीवासी हो गए। इसी समय सनातन धर्म सभा की ओर से बिजनौर निवासी पंडित रामचंद्र कीर्तन विशारद फीजी पहुंचे और पांच वर्ष तक फीजी में रहकर उन्होंने हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति का प्रचार किया। कीर्तन विशारद जी कविता भी करते थे और प्रवासी भारतीयों के मन में स्वरचित कविताओं से भारतीयों को फीजी द्वीप की तत्कालीन अवस्था को समझाते हुए भारत के प्रति उनका ध्यान आकृष्ट करते थे।

पंडित योगेंद्र नारायण पथिक उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के निवासी थे और आर्य समाज के प्रभाव में रहने के कारण भारतीय प्राचीन संस्कृति के प्रति उनका गहरा अनुराग था। महात्मा गांधी के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन में भी उन्होंने काम किया था। उनकी पत्नी उस समय भारत में ही थी किंतु वे सन् 1926 में कुछ समय के लिए भारत आए और लगभग एक वर्ष तक भारत में रहे और सन् 1927 में सपत्नीक गए।

फीजी द्वीप में पुस्तकीय ज्ञान का सूत्रपात हो चुका था किंतु वास्तविक भाषा ज्ञान का आधार प्रवासी भारतीयों की स्मृति में बसी हुई तुलसीकृत रामायण, सूर के पद, कबीर के भजन, तोता मैना के किस्से और आल्हा खण्ड ही था। चूंकि ये भारतीय, मजदूर के रूप में गए थे और वहां उनका जीवन गुलामों से भी बदतर था इसलिए उन्हें विपरीत परिस्थितियों में रहते हुए भी अपनी स्मृति के कोने में बसे हुए रामचरित मानस की चौपाइयां, कबीर के भजन, सूर के पद और ग्रामीण किस्से कहानियां ही उन्हें भारत से जोड़े हुए थीं।

पंडित योगेंद्र नारायण पथिक जब सन् 1927 में भारत आए थे तब उन्होंने हमारी कक्षा के छात्रों को फीजी द्वीप की और प्रवासी भारतीयों की जो करुण कथा सुनाई थी वह आज भी मैं भूला नहीं हूं। वह एक ऐसी कहानी थी जो कि सुनने वाले को मर्मांतक पीड़ा के साथ स्वदेश वासियों की दयनीय दशा पर द्रवित होकर आंसू बहाने को विवश कर देती थी। उसी कहानी को सुनकर मैं फीजी द्वीप से भीतर ही भीतर जुड़ गया था। सन् 1926 में जब गुरुकुल वृंदावन में 28 छात्रों का पहला दल आया तो हम लोग

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन छात्रों को बड़े स्नेह और अनुराग भरे नेत्रों से देखते रहे। इस दल में बी.डी. लक्ष्मण को छोड़कर और सभी दस वर्ष से पंद्रह वर्ष की आयु तक के विद्यार्थी थे। हिंदी की प्रारंभिक शिक्षा अर्थात शब्द ज्ञान, वाक्य-विन्यास और बोलचाल के सांकेतिक प्रयोग प्रायः सभी जानते थे। किंतु उनकी भाषा न तो खड़ी बोली थी और न ब्रजभाषा ही। वे अपने भावों की अभिव्यक्ति प्रायः पूर्वी हिंदी या भोजपुरी में करते थे। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जनपद के तथा बिहार के छात्रों का यह दल बहुत समय तक खड़ी बोली हिंदी का शुद्ध प्रयोग नहीं कर पाता था। जो विद्यार्थी कानपुर और देहरादून के डी.ए.वी. स्कूलों में पढ़ने चले गए थे उन्होंने अंग्रेजी माध्यम को प्रमुख रूप से स्वीकार किया किंतु गुरुकुल वृंदावन के छात्र हिंदी माध्यम से ही शिक्षा प्राप्त करते रहे।

इसके बाद भी सन् 27 और 28 में दो दल फीजी द्वीप से भारत में और आए। कुछ कन्याएं भी आर्य समाज के प्रभाव में गुरुकुल जालंधर में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आईं और वहां से शिक्षा प्राप्त करके फीजी वापस गईं। फीजी से भारत में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने वाले छात्रों का क्रम चार-पांच साल तक रहा किंतु एक दुर्घटना के कारण फीजी से भारत में आने वाले छात्रों का क्रम सहसा बंद हो गया। गुरुकुल वृंदावन में सन् 1930 में फीजी के दो विद्यार्थियों का हैजा की बीमारी से निधन हो गया और दो-तीन विद्यार्थियों को घातक चेचक निकल आई। उचित चिकित्सा उपचार से वे दोनों बच तो गए किंतु एक प्रकार का आतंक फीजी के विद्यार्थियों में व्याप्त हो गया और उन्होंने अपने अभिभावकों को भारत की जलवायु के विषय में ऐसी सूचनाएं दे दीं, जिनके कारण छात्रों का भारत में आना बंद हो गया। उन्हीं दिनों योगेंद्र नारायण पथिक ने भारत से अध्यापकों को बुलाने का प्रयास किया किंतु योग्य अध्यापक फीजी नहीं पहुंच सके। गुरुकुल वृंदावन के एक प्रबंधक ठाकुर संसार सिंह (अलीगढ़ निवासी) फीजी गए और वहां शिक्षा-संस्थानों के प्रबंध में पथिक जी का सहयोग करते रहे। पथिक जी अत्यंत शांत स्वभाव के व्यक्ति थे। मित भाषी एवं शालीनता की साक्षात प्रतिमूर्ति थे। अपने सौम्य व्यवहार से वे अपने छात्रों को अनुशासन में रखते और सत्य, अहिंसा एवं ब्रह्मचर्य का उपदेश देते थे। उनके सदुपदेश से फीजी के बड़े-बड़े शहरों में उन्हें प्रवचन के लिए आमंत्रित किया जाता था। जब तक वे जीवित रहे फीजी द्वीप को उन्होंने भारत का एक छोटा सा भूखंड ही बना दिया था। उनके निधन के बाद वैसा सात्विक वातावरण फीजी द्वीप में नहीं रह सका। उनके सुपुत्र ने डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त करके चिकित्सक का पेशा अपना लिया और सामाजिक कार्यों के प्रति पथिक जी का अनुकरण वे नहीं कर सके। किंतु जिन विद्यार्थियों पर वे अपनी छाप छोड़ गए उनमें से कुछ विद्यार्थियों ने फीजी में सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में गहरी रुचि दिखाई।

गुरुकुल वृंदावन में पहले दल में से बारह, दूसरे और तीसरे दल में से क्रमशः आठ-आठ विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया। इस प्रकार इतनी संख्या होने पर भी केवल एक छात्र ही स्नातक की उपाधि लेकर फीजी वापस गया। उस प्रतिभाशाली छात्र का नाम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, पंडित कमला प्रसाद मिश्र। जब हम फीजी के साहित्यिक परिवेश पर दृष्टि डालते हैं तब केवल एक व्यक्ति का नाम ही उभर कर सामने आता है और वह नाम है—पंडित कमला प्रसाद मिश्र। कमला प्रसाद मिश्र ने सन् 1937 में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृंदावन से सर्वोच्च *शिरोमणि* उपाधि प्राप्त की थी। शिरोमणि उपाधि के लिए उन्होंने आयुर्वेद तथा चिकित्सा विज्ञान को अपना प्रमुख विषय बनाया था किंतु इस विषय के साथ उनकी गहरी रुचि संस्कृत और हिंदी साहित्य में थी। उन्होंने छोटी आयु में ही संस्कृत साहित्य के रघुवंश, कुमार संभव, अभिज्ञान शाकुंतलम्, उत्तर रामचरित, कादंबरी आदि ग्रंथों का मनोयोगपूर्वक अध्ययन कर लिया था। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा के कारण उन्हें इन सभी ग्रंथों के बहुत से अंश याद हो जाते थे और वह निरंतर हिंदी की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े रहते थे। उस समय हिंदी जगत में सुधा, माधुरी, सरस्वती, विशाल भारत, अभ्युदय, विश्वमित्र आदि उच्चस्तरीय मासिक पत्र प्रकाशित होते थे। अंग्रेजी का मासिक पत्र माडर्न-रिव्यू भी हमारे पुस्तकालय में आता था। दैनिक पत्रों में *लीडर* (अंग्रेजी) और *आज* (हिंदी) नियमित रूप से आते थे। विद्यार्थी कमला प्रसाद इन सभी पत्र-पत्रिकाओं में डूबा रहता था। उसकी अनुपस्थिति सिर्फ एक जगह खेल के मैदान में ही रहती थी। जब कमला प्रसाद महाविद्यालय की कक्षा में पहुंचा तब अपने कमरे में चुपचाप शांत मुद्रा में पड़ा रहने वाला छात्र था। मैं कमला प्रसाद का उसकी प्रतिभा और अध्ययन प्रियता के कारण, उसका मित्र बन गया था। मेरे पिताजी, जो गुरुकुल में हिंदी के अध्यापक थे, कमला प्रसाद के सौम्य, शांत स्वभाव के कारण उसको साहित्य पढ़ने में प्रेरित करते रहते थे। कमला प्रसाद खड़ी बोली में काव्य रचना करने में तो नवीं-दसवीं कक्षा में ही पारंगत हो गया था किंतु महाविद्यालय में पहुंचते ही उसकी काव्य प्रतिभा ने ऊंची उड़ान भरना शुरू कर दिया। मुझे याद है कि उसने सन् 31 से 36 तक जो कविताएं लिखी वे छायावाद के उत्कर्ष काल की रचनाएं हैं। ऐसी उत्कृष्ट कविताएं छायावादी कवि ही लिख रहे थे। कमला प्रसाद ने छायावाद के कई तत्वों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया जो छायावाद के भी विशिष्ट तत्व थे। प्रेम, रहस्य, प्रकृति, रूप सौंदर्य आदि विषयों पर उन्होंने जो कविताएं लिखीं वे काव्य सौष्ठव, भाव-वस्तु और शिल्प की दृष्टि से छायावादी कवियों से किसी रूप में भी हल्की नहीं हैं।

पंडित कमला प्रसाद मिश्र लगभग 11 वर्ष (1926-1937) भारतवर्ष में रहे और उन्होंने गुरुकुल वृंदावन में रहकर हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास और आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने खड़ी बोली में ही कविताएं लिखीं किंतु उनके मन में ब्रज भूमि, वृंदावन, मथुरा, नंदगांव, बरसाना आदि के प्रति गहरा लगाव हो गया था। इन स्थानों के प्रति प्रेम का कारण ब्रजभाषा की कविता ही थी। ब्रजभाषा काव्य के प्रति मेरे पिताजी ने उनके मन में प्रेम उत्पन्न किया था और वे कहा करते थे कि "मैं मास्टर जी के प्रति कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे ब्रजभाषा के साहित्य से परिचित ही नहीं कराया वरन्

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरी गहरी रुचि भी ब्रजभाषा साहित्य में उन्हीं के द्वारा उत्पन्न हुई।'' मेरे पिताजी ने कमला प्रसाद को भारत में आते ही पहचान लिया था और उन्होंने साहित्य के प्रति कमला प्रसाद के मन में गहरी रुचि उत्पन्न की थी। मैं कमला प्रसाद के संबंध में अपने कुछ साहित्यिक संस्मरण यहां प्रस्तुत करना चाहता हूं।

जब कमला प्रसाद आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था और मैं ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ रहा था उस समय कमला प्रसाद की एक रचना मेरे हाथ लगी उसमें दो कवित्त थे। दोनों कवित्त सरस्वती वंदना के थे। खड़ी बोली में रचित इन छंदों को पढ़कर मैं विश्वास नहीं कर सका कि ये छंद कमला प्रसाद के हैं। मैंने छानबीन की और कमला प्रसाद से पूछा—''ये कवित्त तुमने कहां से लिए हैं? मेरे मन में संशय था कि ये छंद शायद किसी और के हैं और कमला प्रसाद ने इन्हें अपना बनाकर प्रस्तुत किया है। जांच पड़ताल के बाद जब मुझे विश्वास हो गया कि दोनों कवित्त कमला प्रसाद की रचना हैं तब मैंने उन्हें प्रकाशनार्थ *सरस्वती* के संपादक के पास भेज दिया। *सरस्वती* संपादक ने उन दोनों छंदों को *सरस्वती* के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित कर किया और कमला प्रसाद के नाम, मेरे पते से, एक साधुवाद का पत्र भेजा। कमला प्रसाद ने न तो कभी उस पत्र की चर्चा की और न कभी सरस्वती में प्रकाशित होने पर प्रसन्नता व्यक्त की, और न कभी दूसरे सहपाठियों से उन छंदों के विषय में कोई चर्चा की। कमला प्रसाद के इस निस्संग भाव को देखकर मुझे लगा कि यह व्यक्ति सचमुच ही कविता को आत्मकेंद्रित बना कर रखना चाहता है। विज्ञापन या आत्मप्रचार उसकी प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

उसके बाद मैंने कमला प्रसाद से यह समझौता कर लिया कि जब वह कविता लिखे तो उसे प्रकाशनार्थ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में भेज दे, और यदि उन्हें संकोच होता हो तो मुझे सौंप दें, मैं उन्हें उच्चस्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेज दूंगा। लगभग चार वर्ष तक मैं ही उनकी रचनाओं को इधर-उधर स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में भेजता रहा और मुझे हर्ष है कि वे सभी कविताएं प्रकाशित होती रहीं और एक भी कविता कभी वापस नहीं आई। *माधुरी* में भी मैंने उनकी कई कविताएं भेजी थी। उन सभी कविताओं को पढ़कर हम लोग तो प्रसन्न होते ही थे किंतु जो यह नहीं जानते थे कि कमला प्रसाद कौन हैं, उनके लिए भी यह सुखद आश्चर्य का विषय होता था। सन् 1934 में मैंने कमला प्रसाद की 'ताजमहल' शीर्षक कविता 'विशाल भारत' के संपादक पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी के पास प्रकाशनार्थ भेजी। मैंने पत्र में यह लिख दिया था कि यह कविता एक प्रवासी भारतीय की है जो फीजी द्वीप से भारत में शिक्षा प्राप्त करने आया हुआ है। उस कविता का काव्य सौष्ठव और अभिव्यंजना शिल्प इतना उच्च कोटि का है कि जिसे पढ़कर चतुर्वेदी जी स्वयं मुग्ध हो गए और उन्होंने उसे 'विशाल भारत' में सुरुचि पूर्ण ढंग से प्रकाशित किया। चतुर्वेदी जी ने बहुत सुंदर पत्र कमला प्रसाद के नाम भेजा और लिखा कि आपकी यह रचना ताजमहल पर लिखी गई सैकड़ों रचनाओं में मूर्धन्य स्थान पर है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कमला प्रसाद उस समय तक विद्यार्थी ही था। कोई नहीं जानता था कि यह विद्यार्थी प्रवासी छात्र है और फीजी द्वीप से भारत में शिक्षा लेने आया है। 20 वर्ष की उसी आयु में कमला प्रसाद ने कुछ दार्शनिक एवं रहस्यात्मक उच्चकोटि की कविताएं भी लिखी थी। आश्चर्य यह है कि शताधिक कविताएं लिख लेने के बाद भी कमला प्रसाद के मन में अहंकार, गर्व या महत्वाकांक्षा का कोई बीज अंकुरित नहीं हुआ। वह अपने को ज्ञान सिंधु के तट पर खड़ा हुआ एक अबोध बालक ही मानता रहा—

मैं जगती को जान नहीं पाता हूं
मैं समझ काल का गान नहीं पाता हूं,
किस तरह अखिल वसुधा को मैं पहचानूं
जब अपने को पहचान नहीं पाता हूं।

सन् 1937 में भारत से विदा होते समय कमला प्रसाद को रह रहकर भारत की याद आती रही। प्रस्थान के समय उन्होंने बहुत सुंदर गीत लिखा था जो गीत कई भावों की सृष्टि करके चित्त में उद्वेलन उत्पन्न कर देता है—

आज तो स्वीकार कर लो यह हृदय का प्यार मेरा,
उमड़ आया कण्ठ तक है चिर मधुर उद्‌गार मेरा।
स्नेह की यह अतुल निधि मैं आज अर्पण कर रहा हूं,
इस समय तो है हृदय पर सर्वथा अधिकार मेरा,
कल न जाने यह हृदय किसी दूसरे के पास होगा,
हो हृदय में आज तुम कल और ही निश्वास होगा।

मथुरा और वृंदावन का स्मरण कमला प्रसाद ने बहुत ममता के साथ किया है। 'मथुरा' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा है—

आज मथुरा की न जाने आ गई क्यों याद सहसा,
छा गया दृग में नशा सा, बढ़ गया उन्माद सहसा,
वह मधुर यमुना की जिसमें स्निग्ध दृग का जल पड़ा है,
वह मधुर ब्रज भूमि जिसको कृष्ण के उर ने वरा है।

निस्संदेह किशोर कमला प्रसाद सिंह के मन में भारत के नदी-नद, पर्वत, गुल्मलता वितान और ब्रज भूमि के करील-कुंज बारह वर्ष के भारत प्रवास में इतने गहरे समा गए थे कि उन्हें रह-रहकर इन स्थानों और दृश्यों की याद आती थी। ऐसा मधुर-मोहक स्मरण शायद ही किसी प्रवासी भारतीय ने काव्य शैली में कभी किया हो। कुछ प्रवासी भारतीयों ने उपन्यास कहानियां तो लिखीं हैं किंतु ऐसी स्नेहसिक्त स्मृतियों से भरी कविता शायद ही लिखी हो। कमला प्रसाद ईश्वर-प्रदत्त नैसर्गिक प्रतिभा के धनी थे। यदि वे भारत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में रहते और भारतीय साहित्य से परिचित बने रहते तो उनका स्थान निश्चय ही हिंदी साहित्य में ही नहीं वरन् भारतीय साहित्य में एक सुपरिचित नाम होता। मुझे आश्चर्य होता था कि भारत से हजारों मील दूर बैठे इस किशोर के मन में शैशवावस्था से ही भारत की अस्मिता के प्रति ऐसा आकर्षण क्यों पैदा हुआ।

एक दिन मैंने उनसे पूछा कि फीजी में हिंदी भाषा का विकास कैसे हुआ? जब कि वहां गिरमिटिया मजदूर के रूप में गए भारतीयों के पास न तो हिंदी भाषा या साहित्य से जुड़े रहने का कोई साधन था और न वे मजदूर स्वयं शिक्षित थे। इन अपढ़ मजदूरों ने किस प्रकार अपनी भाषा और संस्कृति की पहचान बनाई! उन्होंने उत्तर दिया कि इन मजदूरों के पास रामायण, महाभारत, गीता आदि मुद्रित पुस्तकें तो नहीं थीं किंतु इन ग्रंथों की सुगंध इनके मन में व्याप्त थी। कठोर परिश्रम करने वाले मजदूर शाम को इकट्ठे होकर रामचरितमानस की चौपाइयां, कबीर और सूर के भंजन और पद अपने-अपने प्रदेश की भाषा में लय, स्वर के साथ गाते थे। आल्हा का गान तो प्रायः सभी मजदूरों के कण्ठ में बसा था इसलिए सामूहिक रूप से आल्हा का गान इनके मनोरंजन का प्रमुख साधन था। यदि कोई अप्रिय घटना घट जाती तो उसे अपनी भाषा में स्वर, लय, ताल में बांधकर ये लोग गाते थे। झिनकी नाम की एक भारतीय मजदूर महिला को एक ओवरसीयर ने बुरी तरह पीटा। उसकी क्रूर पिटाई का वर्णन एक मजदूर ने इस प्रकार किया—

विपति झिनकी की सुनै को दैया।
नंदरौंगा जिला में कावानांगासाऊ सहेबा है बड़ा पिटैया।।

इन व्यथा भरी पंक्तियों में जिस भाषा का प्रयोग मजदूर कवि ने किया है वह आह से उपजा हुआ गान ही है। इस प्रकार के वाचिक पद्यबद्ध गीत उस समय लिखे गए। इन्हीं दर्द भरे गीतों में कविता भी सांस ले रही थी। उस समय फीजी में न तो भाषा-शिक्षण के विद्यालय थे और न पाठ्यपुस्तकों का ही निर्माण हुआ था। तुलसीदास कृत रामचरितमानस को वहां पाठ्यपुस्तक के रूप में मान्यता प्राप्त थी। इसकी चौपाइयों को मौखिक रूप से गाकर मजदूर लोग अपने बच्चों में नाना प्रकार के भावों, विचारों, कल्पनाओं को जागृत करते थे। भय और आतंक तो सर्वत्र व्याप्त था ही उसकी झलक भी उनकी पद्यात्मक रचनाओं में स्वतः स्फूर्त हो जाती थी। इस प्रकार फीजी द्वीप में मौखिक कविता का उदय और विकास हुआ। बाद में जब स्कूलों का सूत्रपात हुआ तब पंडित अमीचंद्र विद्यालंकार द्वारा रचित कुछ पाठ्यपुस्तकें विद्यालयों में स्थान पा सकीं। पंडित अमीचंद जी गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक थे और आर्य समाज के प्रचार के लिए उन्हें वहां भेजा गया था। उसके बाद जो व्यक्ति भारत से फीजी में पहुंचे उन्होंने भी हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार में योग दिया।

मैंने कमला प्रसाद से यह प्रश्न किया कि "जिन भावों और विचारों को तुम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी कविता में स्थान देते हो क्या वे यथार्थ जीवन से गृहीत हैं अथवा कल्पनाश्रित वर्णन पर आधृत रहती है!'' कमला प्रसाद ने उत्तर दिया—''मैंने अपने 22-24 वर्ष के जीवन में जो कुछ देखा सुना या पढ़ा है वही मेरी कविता की भाव संपदा है। स्थान और दृश्य के वर्णन तो यथार्थ पर आश्रित हैं किंतु अधिकांश कविताएं जिनमें प्रेम, रूप, सौंदर्य, प्रकृति, आदि का वर्णन है वे विशुद्ध कल्पनाश्रित हैं। मुझे प्रसन्नता इसी बात की है कि मेरी कल्पनाओं को पाठकों ने सराहा और पसंद किया है।''

मेरा तीसरा प्रश्न था कि ''नारी के रूप वर्णन में आपके सामने कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट आदि द्वारा वर्णित नारी सौंदर्य के चित्र रहते हैं या कभी प्रत्यक्ष दर्शन से भी नारी का रूप सौंदर्य शब्दों में बांधा है।'' कमला प्रसाद ने उत्तर दिया—''मैंने संस्कृत और हिंदी साहित्य के अतिरिक्त शेक्सपीयर के नाटकों में वर्णित नारी रूप को भी यत्र-तत्र अपनी कविता में, अपनी शैली से स्थान दिया है। नारी का प्रत्यक्ष दर्शन और उसके रूप, गुण, शील में पैठकर मैंने कभी अपने लिए आकर्षण का विषय नहीं बनाया। इसलिए मैं रूप वर्णन के लिए नदी, पर्वत, पेड़, गुल्मलता, फूल आदि को ही आलंबन बनाकर कविता लिखता रहा। यदि आपको मेरी सुमन शीर्षक कविता में पुष्प से इतर किसी रूप छवि का आभास होता हो तो इसे मैं आपकी दृष्टि-सृष्टि ही कहूंगा।''

मेरा प्रश्न था कि ''आप सन् 1926 में वृंदावन विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल आये थे, उस समय आपकी आयु लगभग चौदह वर्ष की थी किंतु उसी वर्ष हिंदी का साधारण ज्ञान प्राप्त करते ही आपने कविता लिखना कैसे प्रारंभ कर दिया? वह कौन सी प्रेरणा थी जिसने भाषा पर पूर्णाधिकार न होने पर भी छंदोबद्ध रचनाएं कर डाली? क्या आपने पिंगल शास्त्र का विधिवत अध्ययन किया था?'' कमला प्रसाद जी का उत्तर था—''मैंने पिंगल शास्त्र का उस समय तो क्या बाद में भी विधिवत् अध्ययन नहीं किया किंतु किसी दैवी प्रेरणा से मेरे भीतर पद्य-बद्ध रचनाओं का स्रोत फूट पड़ा और उस प्रवाह में मैंने सैंकड़ों कविताएं, छंद शास्त्र के ज्ञान के अभाव में लिख डाली। यह काव्य प्रवाह स्वतः छंद में होता था इसलिए मुझे पिंगल शास्त्र की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ।''

आकर्षण की एक बात और, फीजी की प्रारंभिक मजदूर वाणी में जो काव्य संगीत था वह इतना मोहक था कि हमारे फीजी प्रवासी पूर्वज जब भारत-स्मृति के स्वरचित गीत गाते तो त्यौहारों के समय उन्हें सुनने के लिए फीजी के मूल निवासी भी एकत्र हो जाते थे। फीजी के मूल निवासी 'कायाबीती' लोग भी भारतीयों के इन अटपटे गीतों की मधुर गूंज पर मुग्ध होकर नाचने लगते और हिंदी भाषा में बोलने का प्रयास करते। यहीं से हिंदी अपने सहज भोजपुरी, मैथिली आदि प्रादेशिक रूपों में पारस्परिक सौमनस्य का कारण बनी थी।''

कमला प्रसाद से मैंने भारत प्रवास के समय ही पूछा था कि क्या फीजी द्वीप में तुम्हारी इन कविताओं को वहां के निवासी समझेंगे? उनका उत्तर था कि—''मैं नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कह सकता कि वे पूर्ण रूप से समझेंगे ही। मैं आगे जो कविताएं लिखूंगा उनमें भाव, भाषा, विचार, शिल्प आदि को सहज सरल बनाकर ही लिखूंगा। क्योंकि वे रचनाएं अपने प्रवासी भारतीयों को संप्रेषित होंगी। हुआ भी ऐसा ही। पंडित कमला प्रसाद मिश्र सन् 1937 में अपनी शिक्षा पूर्ण कर, शिरोमणि उपाधि से अलंकृत होकर फीजी गए और वहां जाकर उन्होंने पहले एक साप्ताहिक पत्र *जागृति* शीर्षक से निकाला। उसके बाद *जय फीजी* शीर्षक से दूसरा पत्र निकाला, जिसके द्वारा फीजी में हिंदी भाषा और साहित्य को बहुत प्रश्रय प्राप्त हुआ। उस समय तक कमला प्रसाद ने हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी भाषा में ही योग्यता प्राप्त की थी किंतु यहां से जाने के बाद उन्होंने अनेक भाषाओं का अध्ययन किया और सात-आठ भाषाओं में काव्य-रचना का प्रयास भी किया। आज वे विश्व की एक दर्जन भाषाओं का ज्ञान रखते हैं और प्रवासी भारतीयों में ऐसा विद्वान कवि गुणी व्यक्ति शायंद दूसरा कोई नहीं है।

फीजी द्वीप के संस्मरणों का जब मैं सिंहावलोकन करता हूं तो मुझे अपने कई मित्रों का ध्यान हो आता है। यों तो फीजी से आने वाले विद्यार्थियों की संख्या चालीस के ऊपर थी किंतु सबसे मेरी घनिष्ठता नहीं थी। उन विद्यार्थियों में सबसे बड़े विद्यार्थी का नाम था बी.डी. लक्ष्मण। उन्होंने कानपुर डी.ए.वी. कालेज से बी.ए. और हिंदू विश्वविद्यालय से बी.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। एक दूसरे छात्र हरिश्चंद्र थे, वह भी डी.ए.वी. कालेज कानपुर से बी.ए. पास करके वापस चले गए। पंडित कमला प्रसाद के दो मामा डी.ए.वी. कालेज देहरादून से पढ़कर इंग्लैंड चले गए थे और वहीं से उनमें से एक ने बार-एट-ला की उपाधि प्राप्त की थी। बाद में वे फीजी में अधिवक्ता और एक भाई ने जस्टिस का पद प्राप्त किया था। इनके अतिरिक्त गुरुकुल वृंदावन में शिक्षित बहादुर दत्त वैदिक कर्मकांड में दक्ष होकर फीजी गए थे और वहां उन्होंने चिरकाल तक पुरोहित का कार्य किया। जयराम नाम के एक छात्र ने फीजी जाकर व्यापार किया और अच्छी संपत्ति अर्जित की। ज्ञानेंद्र ने अपने विद्यार्थी जीवन में खेलकूद में दक्षता प्राप्त की थी और वहां किसी स्कूल में शिक्षक हो गए थे। कमला प्रसाद का छोटा भाई कृष्ण प्रसाद भी गुरुकुल में पढ़ता था। सोहन लाल, भास्कर, आदि छात्र भी उस समय भारत में विद्याध्ययन के लिए आए थे। सात-आठ वर्ष तक भारत में रहकर फीजी वापस चले गए थे। इसके अतिरिक्त कुछ और विद्यार्थी भी ऐसे थे जिन्होंने फीजी में भारतीयता की पहचान बनाए रखने में सराहनीय कार्य किया। आज तो इन सब घटनाओं के दर्शक और सहभागी कहां होंगे, यह मुझे विदित नहीं है। कभी-कभी पंडित कमला प्रसाद मिश्र के समाचार उनके मित्रों से या फीजी की यात्रा करने वाले भारतीयों से मिल जाते हैं। कैप्टेन भगवान सिंह फीजी में तीन वर्ष तक हाई कमीश्नर पद पर रहे थे। उनका पंडित कमला प्रसाद मिश्र से वहां पर्व त्यौहारों के अवसर पर मिलना होता रहता था। श्री भगवान सिंह स्वयं साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति हैं और उनका जन्म भी फीजी में हुआ था। उनके पिता मजदूर प्रथा के अंतर्गत फीजी गए थे और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वहां उन्होंने भारतीयों में सौहार्द स्थापित करने की दिशा में अच्छा कार्य किया था। कैप्टेन भगवान सिंह को उत्तराधिकार में फीजी की जलवायु का प्रसाद मिला और उन्होंने कमीश्नर के रूप में भारतीय अस्मिता को प्रवासी भारतीयों के मन में बड़ी आकर्षक शैली में प्रस्तुत किया। पंडित कमला प्रसाद मिश्र उनके बड़े प्रशंसक हैं और फीजी तथा भारत के पारस्परिक स्नेह संबंधों के लिए इसी कोटि के राजदूत की इच्छा रखते हैं।

पैसेफिक सागर के मध्य में बसा फीजी द्वीप आज जनसंख्या के आधार पर तो अब भी भारत का ही एक कोना लगता है किंतु जनचेतना की दृष्टि से आज वह गिरमिटिया मजदूरों का देश नहीं है। सांस्कृतिक दृष्टि से फीजी ने बहुत उन्नति की है। औपनिवेशिक बंधनों से वह मुक्त हो चुका है और कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय तथा शिक्षा में उसने बहुत उन्नति की है। भारत के साथ फीजी के मधुर संबंध हैं और भारत हर प्रकार से फीजी वासियों की सहायता करने को तत्पर रहता है। प्रवासी भारतीयों ने भी फीजी में शिक्षा, व्यापार, सरकारी पद और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। दिल्ली विश्वविद्यालय के हमारे पूर्व छात्र डॉ. विवेकानंद शर्मा एम.ए. तथा मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ से पी-एच.डी. की उपाधि लेकर फीजी गए थे और वहां अठारह वर्ष पूर्व पार्लियामेंट के सदस्य थे और डिप्टी मिनीस्टर के पद पर भी एक सत्र तक कार्य किया था। इस समय फीजी द्वीप में हिंदी समझने वालों की संख्या तो बड़ी मात्रा में है किंतु लिखने और बोलने वालों की संख्या भी उत्तरोत्तर बढ़ रही है। कुछ कन्याएं भी चंडीगढ़ से बी.ए., एम.ए. करके वहां पहुंच गई हैं और विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। यदि फीजी द्वीप में फीजी सरकार तथा भारत सरकार मिलकर हिंदी सम्मेलन का आयोजन करे तो हिंदी को विश्व के मानचित्र पर उभरने का अच्छा सुयोग प्राप्त हो सकता है। इस कार्य में प्रवासी भारतीय भी सहयोग देंगे और हिंदी भाषा की छवि इस प्रयास से उज्जवल होगी। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदेशों में हिंदी अध्यापन : कुछ विचार

विश्वविद्यालय के स्तर पर जो भाषाएं पढ़ाई जाती हैं, उन भाषाओं से विश्वविद्यालयों में आने से पूर्व, उन विद्यार्थियों का, कोई संपर्क नहीं होता। प्रथम बार इन भाषाओं से उनका संपर्क विश्वविद्यालय होता है। हिंदी और पूर्व देशों की भाषाओं से प्रथम परिचय होते हुए भी भारत के कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों के अभ्यासक्रम में रखी जाने वाली पुस्तकें यहां के पाठ्यक्रम में भी रखी जाती हैं—जैसे 'प्रसाद' की 'कामायनी' या प्रेमचंद के उपन्यास आदि। परंतु उनमें से जितना भाग अध्यापक पढ़ा पाते थे उतना ही हो पाता था, पूरी पुस्तक न पढ़ा पाने का मुख्य कारण विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनों को शब्दकोश की निरंतर सहायता लेती पड़ती थी।

(डॉ. श्रीमती कमलेश सिंह, हिंदी प्रोफेसर, गेंट यूनिवर्सिटी, बेल्जियम)

वार्सा विश्वविद्यालय में मुझे आए अभी एक महीना भी नहीं हुआ है मगर यहां के विद्यार्थियों से मिलकर उन्हें पढ़ाते हुए और उनसे बातचीत करते हुए हिंदी भाषा और हिंदुस्तान के प्रति उनकी रुचि तथा उनकी जिज्ञासा को बहुत कुछ समझने लगा हूं।

यहां के विद्यार्थी बहुत सजग हैं। जो कुछ सीखना चाहते हैं, ठीक-ठीक और पूर्णतः सीखना चाहते हैं। अतः प्रश्न करने में उन्हें संकोच नहीं होता। सैद्धांतिक उदाहरणों की अपेक्षा प्रतीकों औरं कल्पनाओं के माध्यम से सीखना उन्हें ज्यादा अच्छा लगता है।

इन दिनों हमारी एक छात्रा मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' पर आधारित अपना लघु शोध प्रबंध लिख रही है। सो, अध्ययन के साथ ही शोधकार्य की ओर भी इनकी पर्याप्त रुझान है।

(अब्दुल बिस्मिल्लाह, वार्सा, पोलैंड)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यहां के विदेशी विद्यार्थी भाषा सीखने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति, भूगोल, जलवायु, धर्म, रीति-रिवाज एवं भिन्न परंपराओं के विषय में जानकारी प्राप्त करना जरूरी समझते हैं। विदेशी अध्येताओं के लिए हिंदी के शिक्षण-प्रशिक्षण, विभिन्न व्यावहारिक एवं प्रयोजनात्मक क्षेत्रों में उसका उपयोग संसार में हिंदी के माध्यम से एकता का आना व्यापार का क्षेत्र विकसित होना आदि आदि कई कार्य संपन्न हो रहे हैं जिसका अनुभव रुचिकर है। इसका कारण ऐतिहासिक परंपरा, व्यापकता, धर्मनिरपेक्षता है। विदेशों में भाषा-शिक्षण अत्यंत रुचिकार है।

(डॉ. जोगेश कौर, मास्को विश्वविद्यालय, रूस)

एक साल के अध्यापन के अनुभव ने पढ़ाई के अनेक नए द्वार खोले थे। इन नए द्वारों को खोलने में मेरे प्रिय विद्यार्थियों का हाथ भी है। कोरिया के विद्यार्थी ईमानदार और मेहनती हैं। गुरु के प्रति इनके मन में सम्मान की भावना इतनी गहरी है कि आज्ञाकारिता में वे हमेशा अव्वल ही रहेंगे। इनकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत है। रटने में अद्वितीय हैं। इन्हें पढ़ाना, लिखाना, समझाना और विशेष रूप से बोलचाल सिखाना मेरा काम है।

(डॉ. सी. तुलसम्मा, हांगूक विश्वविद्यालय, सियोल, कोरिया)

अमरीकी देशों में लोग हिंदी सांस्कृतिक, धार्मिक और व्यावसायिक कारणों से सीखना चाहते हैं। फिल्मी गाने, भजन, धार्मिक ग्रंथ और संस्कृत ग्रंथों की हिंदी में अनूदित पुस्तकों को पढ़ सकने की इच्छा उन्हें हिंदी सीखने को प्रेरित करती है। इस समय सूरीनाम में रामचरितमानस और रामानंद सागर द्वारा प्रस्तुत रामायण सीरियल के कैसेटों की मांग बढ़ गई है।

(डॉ. त्रिलोकी नाथ सिंह, सूरीनाम)

प्रायः भाषा सीखने के पीछे राजनीतिक, व्यावहारिक, व्यावसायिक स्वार्थ निहित देखे जाते हैं। कोरे धार्मिक-सांस्कृतिक कारणों से एक समूह का जुड़ना अवश्य एक विशेष बात है। अंग्रेजी के माध्यम से भाषा शिक्षण को आरंभ करके शीघ्र गति से उक्त लक्ष्य तक ले जाने वाली योजना एवं शिक्षण सामग्री की आज यहां आवश्यकता है। ध्यान देने की बात है कि यहां के भाषार्थी समूह में 7 वर्ष के बच्चों से लेकर 60 वर्ष के वयोवृद्ध तक हैं। सभी एक साथ बैठकर भी सीखने के लिए तैयार हैं। किंतु हफ्ते में एक या दो दिन मात्र का समय उनके पास है। वह भी प्रायः दो घंटों का।

शिक्षण प्रविधियों और शिक्षण सामग्री के लक्ष्यों तक पहुंचाने वाला होना चाहिए। यह यहां की प्रधान समस्या है। यहां की प्रधान शिक्षा संस्था 'राष्ट्रीय उच्च शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' के अंतर्गत 'भाषा संकाय' (स्कूल आफ लांग्वेज) ने इस बात की ओर ध्यान दिया तो है।

(वी.रा. जगन्नाथन, वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय, त्रिनीदाद)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रिक्शावाला

तोमिओ मिजोकामी

कीर्ति रिक्शावाला, पंद्रह साल से रिक्शा खींचता चला आया है। वह गरीब तो था ही और रिक्शा चलाने में जी-तोड़ परिश्रम की जरूरत होती थी, पर उसे इस धंधे पर गर्व था। गाढ़े पसीने की कमाई थी और वह अपनी मर्जी का खुद मालिक था।

वह अभी अधेड़ तो नहीं था, पर चौंतीस साल के पुरुष को युवक भी नहीं कह सकते, यद्यपि उसका हृष्ट-पुष्ट शरीर एक नौजवान के समान था। हां, इससे अधिक वह अपने दिल के भोलेपन, जो पर्वतीय जाति का सामान्य गुण था, के कारण अपनी उम्र से कम मालूम देता था। वह गढ़वाल के एक गांव में खानदानी कृषक घराने में पैदा हुआ था। कहते हैं कि उसके पूर्वज वीर राजपूत थे, अतः कीर्ति सिंह को वंश का अभिमान भी था। उसके पिता को अपने एक घनिष्ठ मित्र के हाथों धोखा खाकर लाखों रुपए की हानि उठानी पड़ी। जमीन-जायदाद तक बेचनी पड़ी। उसका पूरा कुनबा गरीबी के नरक-कुंड में गिर-सा गया। इसके फलस्वरूप कीर्ति को अपनी शिक्षा केवल तीसरी कक्षा में ही छोड़ देनी पड़ी। उसके बड़े भाई, बूढ़े माता-पिता और थोड़ी-सी बची जमीन की देखभाल के लिए अपने तीन छोटे भाई और बहनों के साथ गांव में रह गए, परंतु कीर्ति को शहर में मजदूरी के लिए गांव छोड़ना पड़ा।

अपनी बिरादरी का आश्रय लेकर वह पहले दिल्ली आया था। वहां पहले एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रेस्तरां में बर्तन मांजने का काम किया था, परंतु यह काम दस साल के लड़के के लिए बहुत सख्त था, दिन-भर की थकावट के बाद रात को सोने के अलावा कुछ नहीं कर सकता था। अभी उसे पढ़ने की बहुत इच्छा थी। इसलिए वह यह काम छोड़कर एक अमीर आदमी के घर में नौकर बन गया ताकि पैसा कमाकर कुछ पढ़ सके। यहां तीन साल तक काम किया।

मालिक अच्छे थे और उनके छोटे मुन्ने का अच्छा दोस्त भी बना था। छोटी-मोटी किताबें भी पढ़ने को मिल जाती थीं। किंतु तनख्वाह इतनी नहीं मिलती थी कि पेट भर खा सके और घर भेजकर मां-बाप की मदद कर सके। फिर चढ़ती हुई जवानी ने उसे नई दुनिया देखने को प्रेरित किया। वह दिल्ली छोड़कर बंबई आ गया। बंबई में एक फिल्म अभिनेत्री के घर नौकर बना। यह उसके लिए बिलकुल अलग दुनिया थी। यद्यपि यहां कीर्ति के साथ बहुत अच्छा व्यवहार नहीं किया गया, बल्कि कभी-कभी कटु-व्यवहार भी किया जाता था, पर कम-से-कम खाना तो भर पेट मिलता था, इसलिए दो-तीन साल में वह बहुत हृष्ट-पुष्ट शरीर का नौजवान बन गया।

यहां उसने तरह-तरह के आदमियों को देखा। फिल्मी सितारे, फिल्म निर्माता आदि। फिल्म उद्योग से संबंधित लोगों का रोज तांता-सा लगता था, हर समय शराब और जुआ के दौर चलते थे। उसे बचपन से यह कड़ी शिक्षा मिली थी कि मदिरापान बहुत बुरी चीज है, आत्मा को भ्रष्ट करता है। परंतु वातावरण था कि उसे भी शराब का चसका लगा—हां, उसकी पूरी कोशिश थी कि इस दुर्व्यसन से कोसों दूर रहे। जब तक किसी मेहमान के हाथों जबर्दस्ती न पिलाया जाता था तब तक उसने शराब न छूने की ठानी थी।

इस घर में उसे प्रायः ऐश करने वाले आदमी ही मिलते थे, कोई सज्जन पुरुष तो इसकी नज़र में नहीं आया। उसकी मालकिन सज-धज कर बाहर चली जाती थी और प्रतिदिन किसी-न-किसी नए आदमी को घर ले जाती थी। तितली की तरह चंचल थी। यहां का भोग-विलास भरा वातावरण उसे अच्छा नहीं लगा, अतः उसने फिल्म अभिनेत्री के यहां की नौकरी भी छोड़ी। यहां उसने यह शिक्षा पाई कि आदमी धनी होने मात्र से सुखी नहीं होता, भले ही मालकिन अपने को सुखी समझती हो, पर कीर्ति को वह सुखी नजर नहीं आई।

कई बार उसने किसी कंपनी या कारखाने में पक्की नौकरी पाने की कोशिश की। परंतु उसने विशेष कुछ तकनीकी शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। यह योग्य नहीं था—ऐसी बात नहीं थी, सिर्फ़ अवसर से वंचित था। उसकी निरीहता, कर्मठता, सहनशीलता और उसका भोलापन इनमें से कोई गुण पक्की नौकरी दिलाने में काम नहीं आया। फिर भी उसने कभी किसी से असंतोष प्रकट नहीं किया। संयोग से उसे दादर स्टेशन पर कुली का काम मिला। यह मजदूरी भी सख्त थी। पर उसका स्वस्थ बदन भारी सामान उठाने के काबिल था। यहां भी उसने नाना प्रकार के यात्रियों को देखा, विरह-मिलन सब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देखा। उसे लगा कि स्टेशन जीवन का एक रंगमंच है। उसने कुली का काम करते-करते मराठी, गुजराती और थोड़ी अंग्रेजी भी सीखी।

अब वह साल में दो बार छुट्टियां लेकर गढ़वाल चला जाता था, और दिन-रात कड़ी मेहनत करके कुछ बचत भी कर लेता था। उसने बैंक में अकाउंट खोला। बूढ़े मां-बाप की इच्छा थी कि कीर्ति की शादी जल्दी कर दी जाए। अब वह उन्नीस साल का पूरा नौजवान था, हर तरह से शादी लायक था। बड़े भाई ने अपने गांव की सत्रह साल की एक लड़की को कीर्ति की वधू के रूप में सुझाया जो उस जैसी बिलकुल भोली-भाली लड़की थी। मां-बाप और बड़े भाई के आग्रह को टालने का विशेष कोई कारण नहीं था, अतः उसने उन लोगों के कहने के अनुसार उस लड़की से शादी कर ली। अब उसकी नई जिंदगी शुरू हो गई; पर उसके साथ विडंबना तो यह थी कि अपने गांव की जमीन की तंगी की वजह से गुजारा नहीं हो सकता था। अतः उसे फिर नौकरी की तलाश में शहर जाना पड़ा।

कीर्ति जीवन में हर प्रकार का दुःख झेलता आया है, परंतु कभी अपने भाग्य पर रोया नहीं। किसी भी कष्ट को चुपचाप हंसते-हंसते सहन करता आया है। भगवान ने एक ओर उसे धन से वंचित किया था तो दूसरी ओर उसे अद्भुत सहन-शक्ति और लगन प्रदान की थी। वह जीवन में उन्नति करना चाहता था। कई बार पेशा बदलने के पीछे यह भाव काम करता था—असंतोष का कारण इसकी तुलना में कम था। अब वह किसी के यहां नौकरी करना नहीं चाहता, बल्कि 'सेल्फ-एंप्लाई' बनना चाहता था। लेकिन कीर्ति जैसे अल्प-शिक्षित तथा अल्प-पूंजी वाले व्यक्तिं के लिए, जो कभी 'स्किल्ड लेबर' नहीं रहा, 'सेल्फ-एंप्लाई' बनना इस प्रकार कठिन था मानों एक गरीब का महलों के ख्वाब देखना। कीर्ति सीधा-सादा आदमी था, पर उसमें बुद्धि का अभाव नहीं था। उसने मेरठ शहर में अपना रिक्शा चलाने की सोची। अब तक अपनी कुल बचत पांच सौ रुपए, एक नया रिक्शा खरीदने के लिए पर्याप्त नहीं थी, पर आधा तो नकद में दे सकता था। बाकी खर्चे के लिए उसने रिक्शा संघ के नाम बैंक से उधार ले लिया। इस प्रकार उसे नया चमचमाता रिक्शा मिला। जब उसने पहली बार इस नये रिक्शे को देखा तो वह गदगद हो गया। ऐसी अद्भुत तृप्ति मिली जैसी जीवन में पहली बार 'अपनी' चीज प्राप्त हुई थी।

मेरठ में अधिकांश रिक्शा-चालकों के पास अपना रिक्शा नहीं था, उन लोगों के मालिक उनकी कमाई का अधिकांश भाग हड़प लेते थे। इस दृष्टि से कीर्ति अन्य रिक्शावालों से कहीं अधिक सौभाग्यवान् था। लेकिन उसे पूरा विश्वास था कि अगर पूरी मेहनत और ईमानदारी से काम करें तो इस शहर के सभी रिक्शा-चालक अपना रिक्शा खरीद सकेंगे और मालिकों के शोषण से मुक्ति पा सकेंगे। उसने रिक्शे पर बैठकर पैडल चलाया, कितना हलका और द्रुतगामी था। वह चलता क्या था मानों हवा से बातें कर रहा हो। उसे लगा मानो वह महाराणा प्रताप बनकर चेतक पर बैठा हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लेकिन कुछ दूर जाने के बाद बाईं ओर मोड़ना चाहा तो नहीं मोड़ सका। जल्दी से हैंडल घुमाया, लेकिन जिस दिशा में वह जाना चाहता था उस दिशा में न जाकर एक बिजली के खंभे से टकरा गया। उसको साइकिल चलाना तो आता था, किंतु साइकिल और रिक्शा चलाने में बड़ा अंतर मालूम हुआ। रिक्शे का हैंडल बहुत भारी था, इसलिए हैंडल घुमाना मुश्किल लगा। उसे मालूम हो गया कि देखने में आसान लगता है, लेकिन रिक्शा चलाने में बड़ी कुशलता की आवश्यकता है, हर कोई तो नहीं चला सकता। विशेषतः जहां गाड़ी और आदमियों की भीड़ लगी रहती हो वहां से निकलने के लिए एकाग्रचित्त होकर हैंडल पकड़ना पड़ता है, नहीं तो दुर्घटनाग्रस्त होने की बहुत संभावना होती है। कीर्ति को इस दक्षता को प्राप्त करने के लिए पूरा हफ्ता लगा था। अब उसे पूरा विश्वास हो गया कि रिक्शा चलाना भी 'स्किल्ड लेबर' की कोटि में आ जाना चाहिए। एक तो वह 'सेल्फ-एंप्लाई' था, और अब 'स्किल्ड लेबर' बना। सोने में सुहागा-सा लगा। अब वह शहर के एक कोने से दूसरे कोने तक सवारियों को बिठाकर ले जाता था। इतवार को भी काम करता था, किंतु जिस दिन आराम करने की इच्छा हुई तो आराम करता था। वह खुद मालिक था, किसी से अनुमति लेने की जरूरत नहीं थी। शहर में एक छोटी-सी कोठरी भी ले ली। नाश्ता और रात को खाना खाता था। दिन को खाना नहीं खाता था—हां, चाय बहुत पीता था। मेहनत का काम था, पसीना जल-प्रपात की तरह बह निकलता था। एक दिन की औसत कमाई लगभग दस रुपए थी। उसका दृढ़ संकल्प था कि रोज पांच रुपए बचाकर प्रति मास डेढ़ सौ रुपए घर भेजेगा। उस जमाने में गांव में डेढ़ सौ रुपए बहुत नहीं, तो भी एक परिवार के गुजारे के लिए काफी थे।

यहां भी उसने तरह-तरह के मनुष्यों को देखा—बूढ़े, बच्चे, स्त्री, अमीर, गरीब, बड़े, छोटे आदि। सवारियों का आपस में वार्तालाप वह ध्यान से सुन लेता था। उसकी जिज्ञासा थी कि लोग किस प्रकार का जीवन बिताते हैं। कीर्ति ईमानदार आदमी था। कभी किसी सवारी से ज्यादा पैसा नहीं मांगा। कुछ रिक्शा वालों के ज्यादा पैसा मांगने से रिक्शा वाले बदनाम थे। लेकिन उसे पूरा विश्वास था कि बेईमानी से पैसा कमाने वाले बहुत ही कम हैं। कीर्ति को इस बात का भी दुःख था कि कुछ सवारी रूखे शब्दों में बात करती थी, थोड़ा दिशा-भ्रम होने से या धीरे चलाने से उन लोगों के मुख से इस प्रकार के अपशब्द निकलते थे—"अबे साले! क्या करता है?" स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अपमान असहनीय था, पर कीर्ति यह भी हंसकर सुन लेता था। उसकी अद्भुत सहिष्णुता को देखकर किसी ने कीर्ति को 'वैशाख नंदन' कहा था। कीर्ति यों समझता था कि गाली देने से गाली खाने वाला अपमानित नहीं होता, अपितु गाली देने वाला स्वयं अपमानित हो जाता है। कीर्ति ने देखा कि समाज में सम्मानित कुछ आदमी भी रिक्शा वालों से रूखे ढंग से बोलते हैं। कीर्ति को ऐसा लगता है कि आदमी पाखंडी है। वह अपनी पीठ के पीछे मनुष्य के चरित्र का सही रूप देख सकता है। यही उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उसे यह समझ में नहीं आता था कि आदमी क्यों अक्खड़ हो जाता है। उसके विचार में उनके दिल की कमजोरी के अलावा कुछ भी नहीं है। कीर्ति यह मानता था कि समाज में बड़े आदमी और छोटे आदमी का फ़र्क अनिवार्य है, किंतु उसका विचार था कि यह भेद कर्मजनित होना चाहिए, जन्म से नहीं। कीर्ति साम्यवाद, समाजवाद सरीखे शब्द से परिचित नहीं था। किंतु उसने जीवन के प्रति अपनी यह धारणा बना रखी थी कि आदमी को समान अवसर प्राप्त होना चाहिए पर आदमी की क्षमता में मात्र भेद होने के कारण अंततः आदमी बराबर नहीं हो सकता। इस दृष्टि से वह समाज में वर्ग-भेद को स्वीकार करता था, परंतु उच्च वर्ग के लोगों को घमंड होने का कारण उसकी समझ में नहीं आता था। आदमी को वहन करने का काम क्यों निम्न हो सकता है? आखिर विमान का पायलट भी चालक है न? फिर पायलट के प्रति इतना आदर क्यों? शायद इसलिए कि वह मशीन चलाता है और ज्यादा सवारियों को वहन करता है? जितनी बड़ी संख्या में सवारियों को वहन करेगा उतनी ही इज्जत मिलेगी? तब रेलगाड़ी के चालक का स्थान पायलट से ऊंचा होना चाहिए।

यदि यह बात है तो सवारी के स्थान के अनुसार चालक का स्थान निर्धारित होना चाहिए क्या? इसका मतलब यह हुआ कि अगर शहर के प्रतिष्ठित न्यायाधीश संयोग से कीर्ति की सवारी बनें तो वह महान है? और उसके साथी के रिक्शे में कोई मेहतर बैठा हो तो वह नीच है? नहीं, आदमी 'संयोग-से' छोटा-बड़ा नहीं हो सकता।

यों सोचते-सोचते दस साल हो गए, लेकिन न तो जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन आया न उसके भोलेपन में, हालांकि उसके पारिवारिक जीवन में बड़ा परिवर्तन आया था। अब वह दो बच्चों का बाप था। साल में दो-तीन बार गांव में वापस जाकर बच्चों के साथ समय बिताने का आनंद पाकर उसका जीवन और सार्थक हो गया था। वह 'परिवार-नियोजन' को मानता था, इसलिए अब और बच्चे पैदा नहीं करेगा।

सवारियों के प्रति उसका कौतूहल ज्यों का त्यों बना हुआ था। अब उसने आगरा जाकर रिक्शा चलाने का फैसला किया, क्योंकि आगरा में बहुत विदेशी पर्यटक आते हैं। उसने बंबई में थोड़ी अंग्रेजी सीखी हुई थी, अतः विदेशी सवारियों के साथ अंग्रेजी में बोलना कितना आनंदपूर्ण अनुभव होगा। दस साल में वह तीन-चार बार नया रिक्शा खरीद चुका था। इस बार भी उसने यह सोचकर पुराना रिक्शा बेच दिया कि आगरा में फिर नया रिक्शा खरीद लेगा। अब नए रिक्शे का दाम आठ सौ हो गया था।

कीर्ति को आगरा शहर में रिक्शा चलाते चार-पांच साल हो गए। इस शहर में रिक्शा वालों की बदनामी के बारे में मेरठ से कुछ ज्यादा सुनने को मिला था। कहते हैं कि वे विदेशियों को ठगते हैं, एक विदेशी पर्यटक को आगरा छावनी स्टेशन से ताजमहल तक के किराए के लिंए बीस रुपए देने पड़े। कीर्ति को फिर भी विश्वास था कि बेईमान आदमी तो हर जगह, हर क्षेत्र में हैं, ज्यादातर रिक्शा वाले ईमानदार होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कीर्ति ने यहां बहुत से स्वार्थहीन और निष्काम सेवा करने वाले रिक्शा वालों को देखा है। एक समय बस्ती का एक छोटा-सा बच्चा अचानक रोगग्रस्त हो गया था, जान खतरे में थी और चिकित्सालय बहुत दूर था। तब कीर्ति का एक साथी अपने रिक्शे पर बच्चे और उसकी घबराई हुई मां को बिठाकर कड़ी धूप और गर्मी की परवाह न करते हुए तेज़ी से रिक्शे को चलाते हुए दोनों को डॉक्टर के पास ले गया जिसके कारण उस बच्चे की जान बच गई। मां के बहुत आग्रह करने पर भी उसने एक भी पैसा नहीं लिया था, उसकी आत्मा को यह संतोष मिला था कि उसने एक इंन्सान की जान बचाई। कीर्ति ने सोचा कि ऐसे आदमी को ही समाज में सम्मान मिलना चाहिए।

कीर्ति ने भी खुद दो नौजवान लड़कियों को आक्रमण से बचाया था। एक दिन सांझ ढल चुकी थी। दो नौजवान लड़कियां, जो कॉलेज की छात्राएं मालूम होती थीं, कीर्ति के रिक्शे पर बैठीं। उसने दिल में सोचा था कि रात में लड़कियों को बाहर नहीं निकलना चाहिए। हजार में से एक रिक्शा वाला तो बदमाश हो सकता है। फिर शहर में गुंडे-आवारा भी तो बहुत हैं। कीर्ति सावधानी से दाएं-बाएं की ओर देखता हुआ तेजी से रिक्शा चला रहा था कि रास्ते में दो गुंडे अचानक रिक्शे के सामने आ गए और लड़कियों को जबरदस्ती ले जाने की कोशिश की। कीर्ति पहले गुंडे का सामना तो कर चुका था, पर कभी दो गुंडों का सामना नहीं किया था। वह बिना आगा-पीछा सोचे दोनों पर टूट पड़ा और ज़ोर से घूंसों और लातों की बारिश की और शीघ्र ही दोनों को खदेड़ कर सांस ली। फिर लड़कियों को उनके घर तक सकुशल पहुंचाया। लड़कियों के घर वालों ने कीर्ति को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और एक लड़की ने कहा, ''आप हमारे यहां चाय पीकर जाइए।''

कीर्ति पहले तो बहुत हिचकिचाया, परंतु उस लड़की के बार-बार आग्रह करने पर उसने स्वीकार कर लिया। उस लड़की के घर वालों ने कुछ इनाम भी देना चाहा परंतु उसने इनाम यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि यह तो उसका फर्ज था। हां, चाय उसने बड़े शौक से ली। वह यह देखकर फूला नहीं समाया कि उसे घर के बाकी लोगों के साथ खाने की मेज-कुर्सी पर बिठाया गया और चाय भी मिट्टी के प्याले में नहीं बल्कि कप में दी गई थी जिसमें घर के और लोग पी रहे थे। उसे अपने जीवन में पहली बार 'आप' कहकर संबोधित किया गया, सुकर्म का फल था। हां, उसके दिल का संशय अभी नहीं सुलझा था कि मध्यम पुरुष सर्वनाम 'आप', 'तुम', 'तू' की सापेक्षता का निर्णय करने वाला कौन है?

कीर्ति की सवारियों में बहुत से विदेशी पर्यटक भी थे—अंग्रेज, अमरीकी, जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी, इटालियन, जापानी आदि प्रायः हर देश के लोग कीर्ति की सवारी बन चुके थे। कीर्ति को टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलने में मजा आता था। विदेशी सवारियों से बातचीत करने से एक तो उसे दुनिया भर की नई-नई बातें जानने का मौका मिलता था, दूसरे, उसे थकावट का ज़रा भी, आभास नहीं होता था। जिस तरीके से भारतीय सवारियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

द्वारा कीर्ति की कभी-कभी उपेक्षा की जाती थी वह उपेक्षा विदेशी सवारियों द्वारा कभी नहीं की गई। जिस उल्लास से कीर्ति बात करता था उसी उल्लास से विदेशियों से जवाब मिलता था और प्रत्युत्तर में विदेशी भी कीर्ति से नाना प्रकार के प्रश्न करते थे। हां, विदेशियों में भी सब एक जैसे नहीं थे। कीर्ति को लगा कि ज्यादा खुलकर बोलने वाले अमरीकी हैं, उससे थोड़ा कम बोलने वाले रूसी हैं और सबसे कम बोलने वाले जापानी हैं।

कुछ विदेशियों के मुख से कुछेक रिक्शा वालों की बेईमानी की शिकायत सुनकर तो कीर्ति का मुंह शर्म से नीचा हो जाता था, लेकिन आज उसे विदेशियों द्वारा भोले-भाले रिक्शा वालों के साथ विश्वासघास किये जाने की एक अत्यधिक चौंकाने वाली खबर मिली। बात यों थी कि तीन जर्मन लड़कियों ने तीन रिक्शा वालों से वायदा किया कि वे उनसे शादी करेंगी। शादी करने के बाद वे उनको जर्मनी ले जाएंगी और वहां उन्हें मजदूरी करने की कोई जरूरत नहीं होगी अपितु एक ऐश्वर्य की जिंदगी होगी। चूंकि रिक्शा वालों से विदेशी लड़कियों की शादी इस शहर में ही नहीं, बल्कि पूरे भारत में एक नई घटना थी। यह खबर समाचार पत्रों में छपी और शहर में क्या पूरे देश में फैल गई। इस घटना के प्रति लोगों की विविध प्रतिक्रियाएं थीं, कुछ लोगों ने कहा कि पागल लड़कियां हैं जिन्होंने ऐसी नीच जाति के लोगों से शादी कर ली। किसी ने कहा कि बेचारियों ने रिक्शा वालों से धोखा खाया होगा। किसी ने रिक्शा वालों के 'कौशल' की व्यंग्यपूर्ण प्रशंसा की और कहा कि कमबख्तों ने गोरी मेमों को अच्छा फंसाया है। और किसी ने खुलकर ईर्ष्या-भाव प्रकट किया कि काश! गोरी मेम से एकात्म होने का सौभाग्य मुझे भी मिलता।

लेकिन यह समाचार छपने के पांच दिन बाद ये 'पत्नियां' और 'पतिदेवों' को छोड़कर कहीं भाग गई। ये लड़कियां 'हिप्पी' थीं और उनके 'बिजा' की अवधि खत्म होने वाली थी और उसे बढ़ाने का एकमात्र साधन उन्हें भोले-भाले रिक्शा वाले ही नजर आए थे। कीर्ति ने सोचा कि बेचारे रिक्शा वाले अवश्य सहानुभूति के पात्र हैं लेकिन आदमी को इतना सीधा-सादा भी नहीं होना चाहिए। कीर्ति को यह विश्वास हो गया कि कुछ विदेशी लोग भी बदमाश होते हैं। अब वह कुछ सतर्कता से विदेशी पर्यटकों को देखने लगा।

इधर एकाध साल से विदेशी सवारियों में से कोई-कोई हिंदी बोलने वाले भी मिलने लगे। कीर्ति के लिए यह एक नया अनुभव था। कीर्ति ने अपने पिता से यह सुना था कि अंग्रेज लोग भारतीयों के साथ कभी 'आप' का इस्तेमाल नहीं करते थे। अंग्रेज शासक थे, इसलिए उनको दबदबा बनाए रखना था। शुरू में कीर्ति की यह कल्पना थी कि सभी विदेशी यही 'साहबी हिंदी' बोलेंगे। लेकिन प्रायः सभी विदेशियों ने कीर्ति को 'आप' कहकर संबोधित किया। कीर्ति को अजीब-सा लगा कि ऐसा क्यों है? उसने यह भी सोचा कि उन लोगों की भाषा में संबोधन के लिए सिर्फ 'आप' ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मौजूद होगा, बाहर के लोग एक-दूसरे को हमेशा आदर से संबोधित करते होंगे। लेकिन उन विदेशी पर्यटकों की बात-चीत के दौरान उसे इसका कारण पता चला कि वे लोग किताब से हिंदी सीखकर आते हैं और किताब में सिर्फ 'आप' ही लिखा होता है। किसी अमरीकी ने कीर्ति को समझाया कि यूनिवर्सिटी में शिष्ट भाषा ही सिखाई जाती है और अमरीका की दर्जनों यूनिवर्सिटियों में हिंदी पढ़ाई जाती है। कीर्ति को यह सुनकर खुशी हुई कि बाहर के लोग भी हमारी हिंदी शौक से सीख रहे हैं। अब तक कीर्ति की यह धारणा थी कि विदेशी लोग हिंदी बहुत नहीं जानते होंगे।

जापानियों की मितभाषिता की ओर कीर्ति का ध्यान पहले से ही था। परंतु हिंदी बोलने वाले जापानी दूसरे देशों के लोगों से कुछ ज्यादा थे और जो जापानी हिंदी बोलते थे, काफी उत्साह से बोलते थे। हालांकि धीरे-धीरे बोलते थे। कीर्ति को 'आप' से संबोधित किया जाना बुरा तो नहीं लगा, लेकिन अस्वाभाविक लगा, क्योंकि उसमें अति शिष्टता और परायापन था। कीर्ति को 'तुम' से संबोधित किए जाने में कोई आपत्ति नहीं थी। 'तुम' में हमेशा निरादर का भाव नहीं है, बल्कि उसमें आत्मीयता का भाव भी है।

कीर्ति का ध्यान विदेशियों में सबसे अधिक जापानियों की ओर आकृष्ट होने लगा, क्योंकि एक तो उन लोगों की शक्ल भी गढ़वाल के लोगों से कुछ मिलती थी, दूसरे उनका व्यवहार बहुत नम्र था।

एक दिन एक जापानी पर्यटक उसे मिला था जो सज्जन पुरुष था और धारावाहिक हिंदी बोलता था। उम्र लगभग कीर्ति जितनी ही मालूम होती थी। उसकी धारणा थी कि जापानी लोग भी उम्र से कम दीखते हैं। वह ऐसे कम विदेशियों में से एक था जिन्होंने शुरू से ही कीर्ति को 'तुम' कहकर संबोधित किया था। कीर्ति को बहुत अच्छा लगा, क्योंकि उसमें अत्यधिक स्वाभाविकता थी और बिलकुल उपेक्षा का भाव नहीं था। बल्कि आत्मीयता से परिपूर्ण थी। इतना ही नहीं वह बिलकुल स्वाभाविक हिंदी बोलता था। उच्चारण भी मोटे तौर पर शुद्ध था। उस जापानी के साथ भी आगरा शहर के बारे में, ताजमहल के बारे में और कीर्ति के जीवन के बारे में इत्यादि तमाम बातें होने लगीं।

'तुम कितने साल से रिक्शा चलाते हो?'—उस जापानी ने पूछा।

'पंद्रह साल से, साहब।'

'कितने बच्चे हैं तुम्हारे?'

'दो हैं—लड़का और लड़की।'

'तुम कभी-कभी रिक्शे पर अपने बच्चों को बिठाते हो?'

'नहीं, वे तो गांव में हैं।'

'गांव किधर है?'

'गढ़वाल में है।'

'अच्छा, यह रिक्शा कितने में बनता है? और कहां मिलेगा?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'यह आठ सौ रुपए का है और मेरठ से बनकर आता है। क्यों? आप रिक्शा खरीदेंगे क्या?'

'हां, यही सोच रहा हूं।'

यह सुनकर उसे बहुत हैरानी हुई। आज तक किसी विदेशी ने रिक्शे के प्रति रुचि प्रकट नहीं की थी। रिक्शे की उपयोगिता पर कीर्ति के संशय को दूर करते हुए उस जापानी ने समझाया कि वह रिक्शा यहां बनाकर जापान ले जाना चाहता है और अपने बच्चो को रिक्शे में बिठाकर शहर की सैर कराना चाहता है।

कीर्ति यह सुनकर और हैरान हुआ—'क्यों, वहां रिक्शा नहीं चलता है?' इस पर जापानी ने आधुनिक जापान का संक्षिप्त इतिहास और रिक्शे का इतिहास बताते हुए कहा कि रिक्शा जापानी शब्द है और अंग्रेजी के माध्यम से हिंदी में अपनाया गया है। मौलिक रिक्शा तो उसी को कहते थे जो दो पहिए वाला है जिसे आदमी ही खींचता है और जो आजकल कलकत्ते में ही उपलब्ध है। तीन पहिए वाला साइकिल-रिक्शा तीन दशक पहले जापान के कुछ खास शहरों की खास जगहों पर खास उद्देश्य के लिए चलता था जिसका नाम भिन्न थां। जो भी हो, आजकल जापान में रिक्शा कहीं नहीं चलता। रिक्शे का स्थान बहुत पहले टैक्सी ने ले लिया।

हमारे देश में औसतन हर दो घरों में से एक के पास गाड़ी है। और कई अमीरों के पास हवाई जहाज भी हैं, लेकिन रिक्शा किसी के पास नहीं है। इसलिए मैं इसे जापान ले जाना चाहता हूं। मेरे बच्चे भी बहुत खुश होंगे। और मेरे व्यायाम के लिए भी अच्छा होगा। एक पंथ दो काज नहीं, तीन काज हैं न? यह सुनकर कीर्ति हार गया उसकी बुद्धि तथा निरालेपन से।

'साहब, तब तो मुझे जापान ले चलिए, आपको खुद रिक्शा चलाने की जरूरत नहीं होगी।'

इस पर भी जापानी ने लंबी-लंबी व्याख्याएं दीं और कहा कि चाहते हुए भी कानूनी पाबंदी होने की वजह से यह संभव नहीं है। कानूनी पाबंदी की बात कीर्ति की समझ में नहीं आई क्योंकि उसे मालूम था कि बहुत से भारतीय विलायत और एशिया में जाकर मजदूरी करते हैं। इस पर उस जापानी ने समझाया कि जापान का कानून विदेशियों के लिए अत्यंत कड़ा है।

कीर्ति ने अपनी बात पर बल देना ठीक नहीं समझा और विषयांतर किया।

'साहब, आप अपने रिक्शे का नाम चेतक रखिएगा। बहुत सुंदर नाम है न? यह आपके बच्चों की रक्षा करेगा।'

कीर्ति को उस दिन की याद आ गई जिस दिन पहली बार उसने अपना रिक्शा चलाया था। अब कीर्ति के लिए जापान जाकर 'चेतक' को चलाना एक अतृप्त स्वप्न-सा बन गया। □

गगनाञ्चल के विश्व हिंदी अंक (1983) में प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

हिंदी भारत की अमरवाणी है, यह स्वतंत्रता और संप्रभुता की गरिमा है।

—माखनलाल चतुर्वेदी

केवल अंग्रेजी सीखने में जितना श्रम करना पड़ता है, उतने श्रम में हिंदुस्तान की सभी भाषाएं सीखी जा सकती हैं।

—आचार्य विनोबा भावे

हिंदी की होड़ किसी प्रांतीय भाषा के साथ नहीं, बल्कि अंग्रेजी के साथ है।

—डॉ. राजेंद्र प्रसाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक अजगर वह

न्यी पुलेः

हमेशा बंद रहनेवाले मकान के सामने अहाते का फाटक खुला हुआ था। बैठक में बैठकर ऊ टौ टौ सड़क की ओर बेमतलब देखता हुआ कहीं खोया हुआ था। जिस आराम कुर्सी पर वह बैठा था उस जगह पर उसका पिता बैठा करता था। आराम कुर्सी पर लगाई गई चादर न तो खद्दर के कपड़े की थी और न ही नाइलोन की। पिताजी ने उस पर कई वर्षों तक बैठने के लिए चमड़े की चादर चढ़वा रखी थी। जब यह नयी-नयी थी तब बड़ी सख्त थी और कच्चे चमड़े की ज़रा-सी थोड़ी-थोड़ी बू भी आती थी। पिताजी ने इसी कुर्सी पर बैठकर चने की दाल, सुटानी, अरहर इत्यादि तरह-तरह की दालों के बारे में मित्र दलालों के साथ बातचीत करते हुए ऊ टौ टौ को बड़ा किया था। इसी आराम कुर्सी पर बैठकर वह लूठु, भहोसी, मांःखि इत्यादि समाचार पत्रों को पढ़ते रहे थे। इसी कुर्सी पर बैठकर रुपयों की अनगिनत गड्डियों की गिनती एक-एक नोट का ध्यान रखकर पिताजी करते रहे थे। जब वह मौंटौटो कह पुकारा करते थे, तब वह उस ऊंचे लकड़ी के घर में रहते थे, जिसकी पुताई मिट्टी के कच्चे तेल से की जाती थी। जब उसको टौ टौ बुलाने लगे तब उसके माता-पिता ने ऊंचे घर को तुड़वाकर सीमेंट की पक्की दुमंजिली कोठी बनवाई। तब तक उसे भी चना, अरहर दाल के बारे में काफ़ी कुछ समझ आ चुकी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आराम कुर्सी के चमड़े की चादर अब एक शनील चादर की तरह मुलायम हो चुकी थी। चमड़े की चादर पर किसी तरह के रंग को न चढ़ाने पर भी साफ़-सुथरी लग रही थी। बिना पालिश के भी वह चमक रही थी। सिलाई के धागों का अधिकतर हिस्सा चमड़े में धंसा हुआ था। कुछ सिलाई के धागे लुंगी के रगड़ से घिस चुके थे। सर टिकानेवाला भूरा गिलाफ़ तेल से चीकट था। सरटिकाऊ गिलाफ़ पर कनोउ फूल भी ऊ टौ टौ के पिता द्वारा ही उकेरे गए थे जो चमड़े की चादर पर की गई सिलाई की ही तरह एक जैसी सुंदर थी। इसे पिताजी ने अपने हाथों से टांका था। दीवार पर लगी घड़ी आज भी अपनी जगह वैसे ही लगी हुई थी, जैसे उसके पिता ने लगाई थी। इसी से उसने घड़ी देखना सीखा था। पूरब दिशा वाली दीवार से टिका दीवार घड़ी को हर सप्ताह एक बार चाबी देने के लिए उन्होंने लाल नीले सिक्के की पेंसिल के लाल सिक्के से एक पर्ची पर एस.यू.एन. तीन शब्द लिख रखे थे। उन तीन अक्षरों के चारों और नीले सिक्के से एक फ्रेम बना दिया गया था। उस तीन अक्षरों के लेख को घड़ी के नीचे, दीवार से चिपका रखा था। वह लिखाई भी पिता की ही थी। घड़ी का चेहरा अब पीला पड़ गया था लेकिन रोमन अक्षर अभी तक काले चमकीले बने हुए थे।

एक-एक सेकेण्ड टक-टक कर ठीक समय चलती हुई घड़ी की दोनों सुईंयां जिस तरह ठीक समय दिखा रहीं थीं, वैसे ही तारीख वाली सूई भी ठीक काम कर रही थी। यह आज का दिन पांचवीं तारीख के रूप में जता रही थी।

ऊटौटौ के माता-पिता उसके लिए काफ़ी ज़ायदाद छोड़ गए थे। यह दो मंजिली कोठी, ज़मीन, घरेलू सामान, फर्नीचर, बर्तन—जिनमें गिलास, प्याले प्लेट, चम्मच वगैरह के साथ पतीले, कड़ाही, केतली, थरमस, पानदान, बड़ी से छोटी-घर की हर चीज़ शामिल थी। ऊटौटौ अपने चारों ओर फैली चीज़ों को एकटक देखता रहा। उसका मन इन सबसे दूर हटकर एक चचेरे भाई और भतीजे के पास पहुंच गया। वह दोनों थे ऊ औं टोः और मौं तांजिन!

ऊटौटौ परिवार की आर्थिक हालत काफी समय से ढलान की ओर थी। किसी भी बुरी लत के न होने पर भी अब उन्हें अपनी पिछली थाती खोलकर गुज़ारा करना पड़ रहा था। पैसे कमाने की कोशिश के बावजूद हालत सुधर नहीं रहे थे। धीरे-धीरे परिस्थिति ऐसी हो गई जैसे फिनाइल की गोलियों की होती है। जो आकार में दिनोंदिन छोटी होती चली जाती है। अब जब लोगों का कर्ज उतारना था तो उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ रही थी। कारोबार कुछ अच्छा नहीं था। जब अपनी ओर से सामान खरीदा जाता था तो भावों की तेज़ी में फंसना पड़ता था। दालों को खरीदकर गोदामों में भर दिया गया था कि भाव में तेज़ी आते ही निकालेंगे, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता था। चीज़ों के दाम जब बढ़ने चाहिए थे तब नहीं बढ़ते थे। हताश होकर जब माल बेचा जाता तो भावों में ऐसी गिरावट आती थी कि संभालने पर भी संभलने का नाम नहीं लेती थी। तेजी से दाम घट जाते थे। किसी एक साल या दो साल की मार होती तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सह भी लेती। लेकिन तीन-चार साल लगातार जब नुकसान-ही-नुकसान होता रहा तो तब इसके अलावा और कोई चारा नहीं होता कि जो गड्डियां सुरक्षित रखी हैं, उन्हें बाहर निकालें, खोलें और परिस्थिति का सामना करे। कई तरह से हाथ-पांव मारे गए पर काम बन नहीं पाया। भाग्य ने साथ नहीं दिया।

उसे सबसे पहले सलाह देने वाला व्यक्ति था कोयीऔं। उनके रिश्तेदारों में से ही एक। ज़मीन जायदाद और घर खरीदने-बिकवाने के कार्य करने वाले किसी प्रॉपर्टी डीलर ने संदेशा भिजवाया था कि अगर आप अपना मकान बेचना चाहें तो आठ लाख आसानी से मिल जायेंगे। ऐसी सलाह को सुनकर ऊटौटौ इतना नाराज़ हुआ कि गनीमत थी कि कोई बुरी गाली नहीं निकाली। बस इतना ही कह पाया कि जाओ—जाओ, अभी यहां से चले जाओ। तुम्हारी मनहूस सूरत हम नहीं देखना चाहते। क्रोध में वह कई बार अपने ही हाथ पर चांटा मारता रहा और उसका चेहरा भी तमतमा गया। बड़े और छोटे की बात थी। कोयीऔं ने बुरा नहीं माना। माफी मांगी और कहा कि मुझे इस बात का अनुमान नहीं था कि आपको इन चीज़ों से इतना मोह होगा।

इसके बाद वह पहले की ही तरह सामान्य तौर पर घर में आया-जाया करता। और पर्व-त्यौहार में भी वह नमस्कार करना नहीं भूलता।

ऊटौटौ के पिता श्री का नाम ऊ खिं था। वह भूमि विभाग कमिश्नर ऊफोःताः, मेयर ऊ पेसे की सुपुत्री खितीटा की संतान थे। बाद में यह जमीन ऊखि को जायदाद के रूप में मिली थी। पुराना घर तोड़कर ऊंचा दुमंजिला मकान बनवाने की बात तो ऊटौटौ को अच्छी तरह याद थी। तब वह काफ़ी सयाना हो चुका था। जब घर बनाया गया था। यह भी याद था कि जब नींव खोदी गई थी तब दो चांदी के घड़े जमीन से गड़े निकले थे।

घर के सामने सड़क पर साइकिलें दोनों दिशाओं से आती-जाती थीं। कुछ ही दूर पर एक पेट्रोल पंप था जो शहर में एक जगह से दूसरी जगह जाने वाले मुसाफिरों को पहुंचाने के लिए चलती बसों के लिए खोला गया था। इसीलिए उनके घर के सामने से शहर की लगभग सारे नंबरों की बसें गुज़रा करती थीं। फिर खालिस व्यापारियों, दलालों और आढ़तियों, दाल की दुकानों, गोदाम चक्कियों, तेल और आटे के कारखाने, मोटर गाड़ियां ठीक करने, इन्हें धोकर साफ़ कर तेल वगैरह डालने के वर्कशॉप, वीडियो पार्लर भी थे। श्वे टछों भी ज्यादा दूर नहीं थे। भोझोउ रोड भी वहां से एक फर्लांग की दूरी पर ही था। शहर में आखिरी पिछले दिनों जो बड़ी भारी आग लगी थी—उसका मुहल्ला उससे बच गया था।

सड़क के किनारे खड़े-खड़े उसे सर्दी-सी लगने लगी और उसने 'टाइपोंइजी' पहन ली। सामने की दुकान जिसमें दालें तैयार करने की मशीन लगाई गई थी, उसमें मज़दूर दालें धूप में सुखाने के लिए तिरपालें बिछा रहे थे। ऊटौटौ के सामने की हवेली की छत पर सफेद धुएं के रंग वाले सफेद-नीले, नीले लाल और सफ़ेद काली धारियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वाले कबूतर क़तार में बैठे हुए थे। वे भी ऊटौटौ की तरह उस मैदान की ओर एकटक देख रहे थे, जहां चने की दाल सुखायी जानी थी।

ऊटौटौ ने दो एक इंच वाली दीवार के बीच से पत्नी को जब लौटते देखा तो उन्होंने अपना ध्यान पूरब की दीवार की ओर किया। उन्होंने अनुभव किया कि उनकी पत्नी हर रोज़ बाज़ार से लौटने के समय से बीस मिनट पहले ही आ गई है। डौडौत्वि ने भी दूर से ही पति के हाव-हाव को परखा। उसका चेहरा बहुत दिनों से उतरा हुआ था। पिछले दो-तीन दिन से वह और भी अधिक उतरा दीखा।

डौडीत्विं ने टोकरी को एक हाथ से उठाते हुए घर के पिछवाड़े से प्रवेश किया। पति-पत्नी ने एक दूसरे के साथ कोई बातचीत नहीं की। ऊटौटौ भी आराम कुर्सी पर बैठे सड़क की ओर एकटक देखता रहा।

हर रोज़ जब भी पत्नी बाजार से लौटती थी तो वही उठकर आंगन का दरवाज़ा खोला करता था। कभी-कभार सौदे-सुलफ वाली टोकरी को भी थामकर सहायता किया करता था। यह भी पूछा करता—मात्विं, आज कौन-सी सब्जी बनाने की सोच रही हो। शायद डौत्विं उत्तर देगी खट्टे छिपौंः पत्तों का सूप! जिस दिन सूअर का मांस खरीदकर लाती उस दिन जवाब देती—अजी आपकी पसंदवाला लाल सूअर का मांस पका रही हूं। डौडी त्विं जिस भी तरकारी का नाम ले ले ऊ टौटौ कहा करते, बढ़िया है भागवान।

आज दोनों में जोरदार झगड़ा हुआ है—ऐसा लगा। और किसी तलाक लेने वाली दंपत्ति की तरह बातचीत बंद हो गई। दोनों खामोश थे और दोनों के ही चेहरे उतरे हुए थे।

एक ओर एकटक देख रहे थे जब भाई साहब की पुकार के साथ मुस्कराते हुए उनके छोटे भाई ऊऔंटोः आ धमके। "हां ... ठीक हूं! ज़रा यह तो बताओ कि मौं तांजिन् कहां है? उन्होंने उत्तर देते हुए प्रश्न किया। वह पीछे चला आ रहा है। जरा पान खरीदने लगा था। ऊटौंटोः ने सारे घर में नज़रें दौड़ाई। हर रोज़ जैसा ही दृश्य था। कुछ नहीं बदला था। पान तो यहां थे ही—यह कहते हुए ऊटौटौ ने मेज़ पर रखी पीतल की पानदानी की ओर टोढ़ी से इशारा किया, फिर उनकी उदास आंखें उसी सड़क पर जा टिकीं।

कार के हॉर्न की दो आवाज़ों ने उनके दिल को धड़का दिया और उन्होंने सिर मोड़कर देखा। कार उनके सामने न रुककर आगे बढ़ गई। कार का हार्न सुनते ही धड़कनें तेज़ होने लगतीं। मुड़कर देखना पड़ता। घड़ी देखनी पड़ती। न जाने कितनी बार यही सब दोहराना पड़ता। मुंह में पान डालकर गाल के एक और चिपका रखने के कारण, एक गाल फूली हुई दीख रही थी। तभी तांजिन् आ धमका और पूछने लगा, चाची आज कौन-सी सब्जी बनी है? पान से भरे मुंह से उसने कुछ दूर से अस्पष्टता से पूछा। यह जब भी बात करेगा ऐसे ही करता। बात भी तेजी से करता। आज हमें भोजन कराना होगा। अच्छी तरकारी बनानी होगी। और ऐसा कहकर ऊटौटौ कोशिश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करके मुस्कराया। फिर बोला, ''क्यों नहीं, जरूर खिलाएंगे। ऊऔंटौ जब से आया है, तब से वह अपने बड़े भैया के चेहरे को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। बड़े भैया द्वारा मुस्कराने के लिए कोशिश करके मुस्कराना, आंखों का हंसे बिना रह जाना और चेहरे का मुस्कराते हुए से धीरे-धीरे गंभीर हो जाना। फिर गंभीरता के साथ पहले की तरह उदास हो जाना और किसी ओर एकटक देखने लगना जैसे हाव-भावों को शुरू से अंत तक देख पाया। ऊटौटौ को देखकर ऊऔंटोः के मन को धक्का लगा।

बातचीत का सिलसिला टूट गया। फिर कोई बात भी न हो पाई। जिस कमरे में तीन जन हों और उनमें दो अपने अपने ख्यालों में कहीं खोए हों, तो तीसरे व्यक्ति को कमरे या घर की दूसरी चीजों की ओर ध्यान देकर ही शायद समय बिताना पड़ता होगा। तांजिन् ने भी चुपचाप सारे घर पर नजर दौड़ाई। तस्वीरें भी दीवारों पर पहले की तरह टंगी हुई थीं। चारपाइयां और बाक़ी फर्नीचर भी अपनी-अपनी जगह ठीक थे। सारे कमरे में ऐसी खामोशी फैली हुई थी, मानों कमरे में कोई नहीं था। बर्फ-घर जैसी चुप्पी भरा सन्नाटा था। आखिर में आ धमके तांजिन् के पास भी बड़ों द्वारा सोचा जा रहा वह दुखद मामला फैल गया। ब़करे की तरह वह जिस पान की जुगाली कर रहा था—आगे और चबा नहीं पाया। गाल में एक ओर सटाकर रख लिया। पान का पीक तक उठकर थूक नहीं पाया।

तभी लेटेस्ट मॉडल की एक लाल कार घर के सामने आकर रुकी। स्टार्ट रहने के बावजूद थोड़ी-सी भी आवाज नहीं कर रही थी। जब ऊ टौटौ के मुख से अरे—'शायद आ गए हैं' की आवाज सुनाई देने पर ही पिता-पुत्र ने सर उठाकर देखा। कार चालक ने ऊटौटौ वगैरह की ओर देखा। उसके सिर के बग़ल के चेहरे का एक हिस्सा दिखाई दिया। कोयींऔं का चेहरा दीख पड़ने के कारण जब यह निश्चित हो गया कि नहीं है, तब अपनी बीमारी के सर होने की सच्चाई को जान जाने वाले एक बीमार की तरह, वह असहाय हो गया। कोयींऔं के होठों के कोने ऊपर की ओर चढ़ गए थे। वह पहले ऊटौटौ वगैरह के पास आया। उस आदमी ने कार के शीशे ऊंचे करने के बाद कार के दरवाजे को धीरे से बंद किया। दरवाजा बंद करने की आवाज उतनी नहीं हुई, जितनी कोयींऔं के बंद करने पर हुई थी। कार के दरवाजे पर चाबी लगाकर निश्चिंतता के लिए बाहर से एक बार खींचकर देखा। उस ओर भी जिस ओर कोयींऔं बैठे थे। बाद में पीछे की डिकी के लॉकर में चाबी डालकर कार की डिकी खोल दी।

''चाचाजी, हमें कुछ देर हो गई है''—उसने छूटते ही कहा। ऊ टौटौ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह जरा-सा मुस्कराया। उसके सिवा इस बात को कोई नहीं जानता था कि उन्हें यूं जरा-सा मुस्कराने के लिए कितनी कोशिश करनी पड़ी है। को म्योःखि ठीक समय पर पहुंच गए थे। उन्होंने कहा—''मुझे छाःअेःताजांः मुहल्ले में एक मकान के मामले में कुछ समय देना पड़ा। मेरे चलते कुछ देर हो गई।''

जिस कमरे में पूरी खामोशी थी अब उसमें कोयींऔं की आवाजें गूंज रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसकी तेज कर्कश आवाज उस वातावरण से जरा-सी भी मेल नहीं खा रही थी।

कोयींऔं को भी इस बात का एहसास हुआ। ऊटौटौ और अन्य सब भी अभिनय कर रहे थे। वे मन से प्रसन्न नहीं है, इस बात को कोयींऔं ने समझ लिया था। डौडौ त्विं भी रसोई से बाहर आई और पूछने लगी कि क्या तुम भोजन कर आए हो भौयींऔं? कमरे में बैठे सारे लोग समझ रहे थे। कि डौडौ त्विं ने बिना किसी मतलब यह बात पूछी है। कोयींऔं ने जल्दी-जल्दी कहा, "जी हा-जी हां चाची, अभी-अभी।" ऐसा कहने के बाद उसे अपनी आत्मा पर अविश्वास हुआ। इस तरह ग़लतबयानी होने की बात सामने की दीवार पर लगी घड़ी अधिक जानती थी। तांजिन् के पान का बीड़ा कोयींऔं की ओर बढ़ा दिया। वह आदमी एक थैला उठाकर ला रहा था। वह जो थैला उठा लाया था उसे कुछ लोग सांप के खाल का थैला बताते थे। कुछ उसे पीना थैला कहते। कोयींऔं को छोड़कर बाक़ी दूसरे लोगों की आंखें उनकी ओर आ रहे उस आदमी की ओर लगी हुई थीं। आगंतुक को देखते हुए ऊ टौटौ के दिल में एक जबर्दस्त चोट का अनुभव होने लगा। उसे अपने जीवन में एक बार भी इस तरह का अनुभव नहीं हुआ था। वे हवाएं, जिन्हें वह सांसों द्वारा अपने भीतर जमा किया करता था, क्या अब बाक़ी नहीं रह गई थी? सांसों से हवा भी पर्याप्त नहीं मिल पा रही थी। जैसे ही धीरे-धीरे वह आदमी पास आया, वह भी कोशिश करके मुस्कराने लगा। जी में तो अभी भी टीस उठ रही थी।

सांप के खाल वाले थैले को लंबी बेंच पर रखने के बाद उसने कहा—"चाचाजी, चाचाजी, वह को म्योःखिं हैं।"

बातों के सिलसिले को आगे बढ़ाने के लिए वह अभी शब्दों का विचार कर ही रहा था कि को म्योःखि के आदमी ने ऊ टोटौ की ओर हाथ बढ़ा दिया। उसे इस तरह के व्यवहार की आशा नहीं थी। इसीलिए आराम कुर्सी से अचानक उठकर को म्योःखि के बढ़े हाथ को थामकर अभिवादन करने लगा। कोम्योःखि की हथेली की गरमाहट पाकर ऊ टौटौ ने अपनी परिस्थिति की ओर ध्यान दिया। उसकी हथेलियां पसीने से ठंडी हो रही थीं। किसी युवती की नरम हथेली थामकर कौन-सी बात कही जाए, वह यही सोचता रहा। मेरे मुंह से कुछ तो निकलना चाहिए। एक ही बात—"बैठिए जी। इधर की कुर्सी पर बैठिए"—ऊऔंटोः ने बीच में कह दिया। तब जाकर उसने कहा—"जी हा—जी हां, यहां बैठिए को म्याःखिं" ऊ टौटो ने यह शब्द बड़ी ही कोशिश के बाद कहे।

कमरे के अंदर जितने लोग भी थे, उनकी आपस में बातचीत दोबारा बंद हो गई। वे कुछ भी बतिया नहीं रहे थे। सारा कमरा फिर चुप हो गया। एक दूसरे के चेहरे देखते, मुस्कराने की बात न होने पर भी मुस्कराते रहे। कमरे की खामोशी ठीक नहीं है। ऐसा सोचकर ऊटौटौ ने पूछा—"को म्योःखि, आप माण्डले के ही हैं न? क्या आपका जन्म माण्डले में ही हुआ है?" उन्होंने अनायास ही पूछ लिया।

बाद में उन्हें ख्याल आया कि नाहक़ ही मैंने यह क्यों पूछ लिया? किसी की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यक्तिगत बातों को मुझे पूछने का अधिकार नहीं। ऐसा सोचकर उन्हें पछतावा-सा हुआ। बड़ा ही संकोच हुआ। वहां का जो वातावरण था और उसने जो प्रश्न किया था, उन दोनों में कोई मेल नहीं था। इन्हें इस शहर में आए अभी अधिक दिन नहीं हुए हैं—ऊ म्योःखिं के लिए कोयींऔं ने बीच में ही उत्तर दिया। कुछ देर बाद डौडौ त्विं रसोई घर की ओर चली गई। वह आदमी बस यूं ही मुस्कराता रहा।

जब से को म्योःखिं आए थे, सभी उन्हें परखने की निगाहों से देख रहे थे। आदमी की उम्र कोई ज्यादा नहीं थी। जवान था। उसका अनुमान था कि अभी वह पैंतीस-चालीस कें बीच ही होगा। दायें हाथ में बांधी सुनहली घड़ी उसके चमकते पीले रंग से खूब मिल रही थी। बायें हाथ की अंगुली में हरे रंग का पन्ना जड़ित अंगूठी सुशोभित थी। उसने बड़े कीमती नए कपड़े पहने रखे थे। ऊ टौटौ उसके कपड़ों के कीमत का अनुमान नहीं लगा पाए।

बेंच पर रखे सांप की खाल वाले थैले को कोम्योःखि बीच वाली मेज़ पर उठा लाए। सांप की खाल के थैले में जो नोट लाए गए थे, वे बाहर से ही नज़र आ रहे थे। जब वह इन रुपयों को ले लेंगे, तब यह ज़मीन और मकान उसे सौंपेंगे। वह तब इनके मालिक नहीं रहेंगे। तब इसके नये मालिक कोम्योःखिं होंगे। वही इस मकान में रहेंगे। ऊटौटौ और दंपत्ति को यह कोठी खाली करनी पड़ेगी। उन्हें ऐसे स्थान को जाना होगा, जहां किसी तरह उनका गुज़ारा हो सके। उन्हें उस नयी जगह जाना होगा, जहां का वातावरण उन्हें भा जाए। नए मुहल्ले में बाद में आए नए लोग बनना होगा।

कोम्योःखिं सांप की खाल वाले थैले के मुंह को बांधी हुई नाइलोन की रस्सी की गांठ खोलने लगे। पूरे पैसे देने के बाद भी दो हफ्ते तक उन्हें रहने देने का प्रस्ताव, जो उन्होंने कोयींऔं के मार्फत रखवाया था, उसने बताया या नहीं, इस बारे में कब बात करनी चाहिए, ये यही सोचने लगे।

नाईलोन की रस्सी भी उसने जूतों के तस्मों की तरह बांध रखी थी। इसलिए एक बार खींचने पर ही गांठ खुल गई। लगा ऊटौटौ की धड़कन और तेज़ हो गई है। उन्हें लगा शायद वह अपनी धड़कन सुन रहे हैं। वह मन में अंदाज़ा लगा ही चुके थे कि खरीदार पूरे पैसे तभी देगा, जब वे मकान खाली कर देंगे। कितना रुपये रोकेंगे? उन्होंने अपनी टाइपोंइंजी की पाकेट से रुमाल निकालकर माथे पर आए पसीने क़ी बूंदों को धीरे से पोंछ दिया

उसके पिता ने दलालों को नमूना दिखाए जाने वाली मेज पर सांप की खालवाली थैली में रखे नोटों को उड़ेल दिया। थैली के नीचे के हिस्से के दोनों कोनों को पकड़कर ऊपर उठाते हुए नोटों को यूं उड़ेल दिया मानों इसमें चावल के दाने या भूसी हो। मेज पर नोटों का ढेर लग गया। नोटों की तीन-चार गड्डियां मेज के सिर को पार कर गई और नीचे जा गिरीं। हरे, बैंगनी, गुलाबी हरे-भूरे नोटों की भरमार थी। सच बात तो यह है कि ऊ टौटौ ने अपने जीवन में इतने ज्यादा रुपयों को कभी छुआ तक नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आंखों के सामने लगे रुपयों के ढेर देखते वह आवाक् रह गए। दुःख, पीड़ा, दर्द, मोह, आश्चर्य, अविश्वास इत्यादि भावों के बीच, अपने माता-पिता की याद हो आई और वह उदास हो गए।

को म्योःखिं की बात को सुनकर उसकी चेतना जागी। क्या? क्या? इस आदमी ने क्या कहा है? ऊ टौटौ ऐसा जागे जैसे कोई नींद से जागता है और वे को म्योःखिं को एकटक देखने लगे।

कोयींऔं जानते थे कि ऊ टौटौ को उनकी बात समझ में नहीं आई, इसीलिए उन्होंने कहा। को म्योःखिं कहते हैं कि वह पैसे अच्छी तरह गिनकर नहीं लाए, यूं ही गड्डियां उठाकर थैले में डाल लाए हैं। इसलिए यहां जो भी युवक बैठे हैं जैसे लेःऔं और हमारे छोटे भाई तांजिन् इन्हें चाहिए कि ये अच्छी तरह गिनकर रुपये लें। अगर कम पड़ जाएं तो बताएं कि कितने कम हुए। कम हुए तो म्योःखिं उन्हें पूरा कर देंगे। पूरा करने के लिए वे अलग-से रकम लाए हैं। ठीक ही तो है, रुपये अच्छी तरह गिनकर ही लाने चाहिए। ऊ टौटौ और तांजिन् भी ऐसा सोचने लगे।

ऊऔंटोः ने सादी चाय के प्याले में थोड़ा-सा पानी डालकर अपने पास रखा। नोट गिनते समय अंगूठे और अंगुली को गीला करने के लिए प्याला अपने पास रखा गया था। तांजिन ने मुंह में रखे हुए पान को थूकदान में थूक दिया। जब वो रुपये गिनने लगे, कोयींऔं ने उठकर दरवाजा बंद करना चाहा ताकि कोई देख न पाए। कोक्योंखिं ने मना करते हुए हाथ से इशारा किया कि दरवाजा खुला ही रखे।

ऊ टौटौ के मन में बड़ी ही बैचेनी हो रही थी। लेकिन ऐसा लगा था कि को म्योःखिं को जैसे कुछ भी अनुभव नहीं हो रहा। वह लकड़ी के बेंच पर आराम से जा बैठा। घर के पिछवाड़े की ओर जाना तो दूर रहा, घर के चारों ओर का एक चक्कर भी उन्होंने नहीं लगाया। वैसे यह पहला अवसर था जब वो इस घर में आए थे। ऐसा नहीं लगता था कि वे इस कोठी को खरीद रहे हैं। उनके हाव-भाव से यूं लगा जैसे वो सदा से ही यहीं रह रहे हों और किसी बाहरी यात्रा से लौटे हों।

ऊऔंटोः और उनका बेटा धीरे-धीरे नोट गिन रहे थे। गिने हुए नोटों की गड्डियों को वो अलग रख रहे थे। को म्योःखिं नोटों की दस हजार की गड्डियां बनाकर लाए थे। तांजिन् ने दस रुपये की कीमत वाले नोटों की गड्टियों को खोलकर फिर गिनना शुरू किया। ऊ टौटौ चुपचाप बैठकर दुखी मन से नोटों की गिनती देखते रहे। अपनी बेचैनी छुपाने के लिए नोटों की गिनती करने की बात भी उन्होंने सोची। उनका मन बहुत अशांत था। अशांत मन से नोट गिनने पर अवश्य ही ग़लती की संभावना थी। पर वो अपनी बेचैनी को नोट गिनकर दूर करना चाहते थे। वो सोच रहे थे कि उन्हें नोट गिनने चाहिए या नहीं। आखिरकार फर्श की ओर एकटक देखते हुए उन्होंने अपना सिर सहसा ऊपर की ओर उठाया। उन्होंने निश्चय कर लिया था, वो नोट गिनेंगे, जरूर गिनेंगे। तभी मामला जल्दी निबटेगा और म्योःखिं और लेःऔं इत्यादि वापस लौट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाएंगे। जब वह अकेला रह जाएगा। संभव है उसका अशांत मन शांत हो जाए। नोटों में उन्होंने बैंक की गड्डी को ढूंढ़ा। पर उन नोटों में बैंक की एक भी गड्डी नहीं थी।

ऊ टौटौ ने एक नोटों की गड्डी उठाई। को यीं औं ने आश्चर्य-भरी आंखों से चाचा की ओर देखा। भतीजे की नजर में चाचा के प्रति तिरस्कार की भावना थी। जो यह कह रही थी कि क्या आप आराम से नहीं बैठ सकते? ऊ टौटौ को यींऔं की नजर में सह नहीं पाए। कुछ भी नहीं समझने और देखने का उन्हें बहाना करना पड़ा। पर भतीजे की नजर उनके मन में गहराई तक समा गई।

दस हजार की एक गड्डी खोली गई। नाखून बहुत छोटे तो न थे, फिर भी धागे की गांठ खोलने में कठिनाई हुई। उसके कांपते हुए हाथ यह साबित कर रहे थे कि उसका मन बेचैन है। काफी देर तक कोशिश करने के बाद ही वह गांठ खुल पाई। दस के नोटों को एक के बाद एक वे धीरे-धीरे गिनने लगे। दायें अंगूठे की तर्जनी और बीच वाली अंगुली से नोटों को दबाकर एक-के-बाद एक इस तरह गिनने लगे जैसे एक-एक सीढ़ी पर चढ़ा जाता है। दायीं हथेली से नोटों के एक कोने को अच्छी तरह दबाए रखा। एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात आठ और नौ और दस के बाद ग्यारह नहीं गिना। एक से फिर शुरू किया। लगातार गिनते गए और एक बार एक के बाद बीस तक गिना। यह तरीका उन्होंने अपने पिताजी से सीखा था। धीरे-धीरे गिनते गए और एक हजार रुपए की एक गड्डी पूरी हुई। इसमें एक भी नोट कम न था, एक नोट भी फालतू न था। ठीक पूरी गड्डी थी।

तांजिन् ने उन सारे नोटों को अलग से रखा जिसे उसने गिना था। ऊ औं टोः ने भी गिने हुए नोटों का ढेर अलग से बनाया। ऊ टौटौ ने भी एक और हजार की गड्डी थामी और पहले की तरह ही गिनी। वे रुपए ही गिन रहे थे, उन्हें लगा कि यीं औं उनकी ओर घूर कर देख रही है। को म्योःखिन् अचानक उठा और चुपचाप अपनी कार की ओर चला गया। जैसे नोटों की गिनती से उसका कोई संबंध ही न हो। भले ही कम हो जाएं। वो यह जानते थे कि ये लोग किसी तरह की बेईमानी नहीं करेंगे। जो लोग नोट गिन रहे थे और बिना गिने बैठे थे, अगर वो धोखा करें भी तो उसे कोई चिंता नहीं थी। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। ऊ टौटौ चाहते थे कि वो सबको सावधान करें कि पैसे होशियारी से गिनें। ऐसे समय में जब को म्योःखिन् वहां उपस्थित नहीं थे, उनका चुपचाप रहना ही ज्यादा अच्छा रहेगा। नाहक में किसी तरह की गलतफहमी नहीं होगी।

छह ... सात ... आठ ... नौ ... दस ...

एक ... दो ... तीन ... चार ...

वह अपनी कार में रखे हुए सुनहले सिगरेट केस को लेकर दोबारा घर की ओर लौटे। तभी ऊ टौटौ को ध्यान आया कि मेहमान के सामने सिगरेट रखने की बात वह भूल गया था और इस बात से उन्हें संकोच हुआ। बाद में मन-ही-मन सोचने लगे कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन्हें हम अपनी सिगरेट देते भी तो पीने वाले नहीं थे। जिस गड्डी को वो गिन रहे थे, उसमें सौ नोट न होकर मात्र अठानवे थे। उन्होंने अपना सिर एक बार खुजलाया और बड़े धीरे-से एक बार फिर से नोटों को गिना। गिनते समय उनका मन तेजी से धड़कने लगा—"मैं नहीं चाहता कि गड्डी में नोट कम हों। अगर सचमुच ही गड्डी में नोट कम हुए तो क्या यह कहना अच्छा लगेगा कि गड्डी में नोट कम हैं। ऊऔंटोः और उनका बेटा काफी समय से नोट गिन रहे थे। किसी ने एक बार भी यह नहीं कहा कि कोई नोट कम है।

पांच, छः सात, आठ ...

कैसी विडंबना थी कि उसी गड्डी में ही नोट कम थे, जिसे वह गिनता था। हर रोज उस सादी चाय की प्याली को जिसमें ऊ ओं टोः सादी-सादी चाय डाला करते थे, ऊ टौटौ अपने निकट घसीटकर ऊंगलियां गीला किए नोट गिना करते थे। इस गड्डी के नोटों को मुंह के थूक को लगाकर ही आगे गिन रहे थे।

सात ... आठ ... नौ ...

नौ पर ही रोक दिया। गर्म हवाओं को फूंक कर बाहर निकाल डाला। अंतिम नोट की गिनती नहीं करते। बच गए। ऊ टौटौ ने रूमाल निकाला और टाइपौंइंजी को उतारा। कोयींऔं ने अपना चेहरा दूसरी ओर मोड़ लिया। इस भाव से कि चाचा जो भी करे वह कुछ भी नहीं कहना चाहते। उसकी उँगलियों में कोम्योःखिं का दिया एक सिगरेट सुलग रहा था।

बहुत देर तक प्रत्येक सेकेंड नोटों की गिनती का सिलसिला जारी रहा। कोम्योःखिं द्वारा लाए गए धन का चौथा हिस्सा गिना जा चुका था। किसी ने भी यह नहीं कहा कि एक नोट भी कम हुआ है।

ऊ टौटो ने पैंतालीस की एक गड्डी उठा ली। को म्योःखिं लोउ ताःप्यीदु नेजिं—दैनिक मज़दूर समाचार पत्र उठाकर पढ़ रहे थे। को यीं औ भी सिगरेट के लंबे कश खींचकर न जाने कौन-सी योजना विचार रहे थे। सामने की खिड़की से बाहर की ओर देख रहे थे। गर्दन भी तेज़ी से हिला रहे थे।

ऊ टौटौ ने बड़ी ही सावधानी से नोटों को गिना था। पैंतालीस रुपए की गड्डी में से एक नोट कम था। इस बार भी पूरी तरह सुनिश्चित करने के लिए एक बार फिर गिनती थी। निन्यानवें नोट ही थे। ग्यारह लाख में पैंतालीस रुपए का एक नोट कम था। यह कहने में उसे संकोच हो रहा था कि एक नोट कम है। उस गड्डी को थामे यह सोचने लगे कि क्या किया जाए। वही गड्डी कम रुपए वाली थी। उन्होंने तांज़िन की ओर देखा। वह बड़ी सावधानी से गिन रहा था। तांज़िन् के हाथ में जो गड्डी थी, उसकी गिनती पूरी हो जाने तक वह प्रतीक्षा करते रहे और फिर अपने हाथ में रखी पैंतालीस की गड्डी तांजिन के हाथ में थमा डाली। धीमे स्वर में 'एक नोट कम है' कहते हुए एक उंगली उंची कर दिखाई। उठी उंगली धीरे-धीरे कांप रही थी। जो म्योःखिं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने वह अखबार नीचे रख दिया जिसे वह पढ़ रहे थे और नज़र उठाकर देखने लगे। ऊ टौटौ ने अपने कान खड़े किए कि देखें भला क्या कहते हैं। को म्यो:खिं फिर अखबार पढ़ने लगे।

उन्हें बड़ी ही बेचैनी होने लगी। समझ नहीं आ रहा थी कि क्या करें! जब भी तांज़िन् एक नोट पलटते, उनके मुंह से जो कोई गिनती निकलती और तांजिन के साथ-साथ वह भी गिनती करने लगे। यह समझा जा सकता था कि तांज़िन पूरी सावधानी से गिन रहा है। सौ की संख्या वाली गड्डी धीरे-धीरे पतली होती चली गई। ऊ टौटौ की हालत उस मुजरिम की तरह हो रही थी जो न्यायाधीश का फैसला मन से सुन रहा हो। बग़ल से वो जो गिन रहा था और तांज़िन् जो मुंह से निकाल रहा था, वह बिलकुल एक जैसा था। तांज़िन् ने एक नोट कम वाली गड्डी को म्यो:खिं की ओर बढ़ाते हुए कहा—''ज़रा आप भी गिन लीजिए।''

उसने मुस्कराते हुए धीरे-से सिर को हिलाया। 'नहीं' और बगल में अलग से रखे नोटों में से एक पैंतालीस च्याट का नोट निकालकर तांज़िन् की ओर बढ़ा दिया। नब्बे के नोट अगर कम हुए तो पूरा करने के लिए नब्बे के नोटों की गड्डी अलग से रखी हुई थी। पंद्रह, दस, पांच, चार के नोटों की गड्डियां सब अलग से रखी हुई थीं। कोठी की कीमत के ग्यारह लाख में यह गड्डियां नहीं मिलाई गई थीं।

गिनती किए हुए नोटों की संख्या कितनी बढ़ रही थी, ऊ टौटौ की ताकत उतनी ही कम हो रही थी। उसकी हालत जख्मी की तरह थी जिसके शरीर से दुर्घटना में खून बड़ी मात्रा में निकल जाता है। उनके हाथ पांव भारी हो रहे थे। वह अपने पांव और हाथ हिलाना भी नहीं चाह रहे थे। ऊ औं टो: ने जिस गड्डी को गिना था, उसमें भी दो नोट कम पाए गए। अपने पिता की गिनी गड्डी को जब तांजिन् फिर से गिनने लगा तो पहले की तरह ही को म्यो:खिं ने मुस्कराते हुए कहा। ऊऔंटो: की समझ नहीं आया कि उसने क्या कहा? हाथ से इशारा किया कि फिर से गिनने की जरूरत नहीं है। हथेली खड़ी कर मना करने लगे और अलग से रखी गड्डियों में से पंद्रह के दो नोट निकालकर थमा दिए। लगता था कि को म्यो:खिं समय नष्ट नहीं करना चाहते थे। ऐसा भी नहीं लगता था कि उसे किसी पर किसी तरह का अविश्वास है। बस इतने ही रुपए, ऐसा प्रतीत होता था कि अगर नौ सौ या हजार कम भी हुए तो भी दे देंगे। यह बात उनके हाव-भाव से प्रतीत होती थी। एक और सिगरेट जलाकर अखबार आगे पढ़ने लगे। किसी बात को महसूस करने वाला इन्सान तो वह लगता ही नहीं था। वह एक मशीनी आदमी की तरह था। बड़ा ही ठंडा।

पुरानी घड़ी की पैंडुलम की टिक टिक और नोटों के गिनने की आवाजें ही धीरे से सुनाई दे रही थीं। जिस गड्डी को वह गिन रहे थे, उसे पूरा गिन लेने के बाद ऊ टौटौ को दोबारा गिनने की इच्छा न रही। दिल की बैचेनी बढ़ने-सी लगी। मन ग्लानि से भर उठा। किसी समय पैसे गिनने में हर्ष और उल्लास का अनुभव हुआ करता था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर अब ऐसी थकान हो चली थी जैसे किसी एक गहरे खड्ड से उछल-उछलकर ऊपर चढ़ने की कोशिश की जा रही हो। सांस थामकर धीरे-धीरे लेने लगे। आराम कुर्सी पर पीठ लगाकर बैठ गए। चार महीने पहले जिस कोठी की कीमत बड़ी मुश्किल से आठ लाख आंकी गई थी, उसी की कीमत ग्यारह लाख देकर खरीदने वाले को म्योःखिं की आंखें मूंदे वह ध्यान से देखने लगे। वह किसी खबर को धीरे-धीरे पढ़ रहा था।

हिज्जे लगा लगाकर पढ़नेवाले की तरह उसके दोनों होंठ धीरे-धीरे ही हिल रहे थे।

''मौयींऔं, हम यहां दो हफ्ते और रहना चाहते हैं। क्या यह बात तुम को म्योःखिं से कह चुके हो?'' ऊ टौटौ ने पूछा। रुपए गिननेवाले सारे लोगों ने गिनती रोक दी और कानों को उस ओर लगाया कि को म्योःखिं क्या कहते हैं। को म्योंःखिं ने मुस्कराते हुए कहा। जिस तरह अखबार धीरे-धीरे पढ़ते थे, वैसे ही धीरे-धीरे गंभीरता से। को यीं औं को लगा कि बाकी किसी को को म्योःखिं की बातें समझ नहीं आएंगी। इसलिए उन्होंने एक बार उन्हें दोहरा दिया। ''दो हफ्ते रहना चाहे तो रह सकते हैं—पैसे पूरे दे जाएंगे! घर बदलने का जो समय आपने दिया है, उस समय तक घर जरूर बदल दें।''

को म्योःखिं ने सारी बातें समझाई। दरअसल को म्योःखिं द्वारा चीनी स्वर बर्मी में कही बातों को वह ठीक से समझ नहीं पाए थे। □

मूल बर्मी से चंद्रप्रकाश प्रभाकर द्वारा अनूदित।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विविध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाषा की सरलता की समस्या

डॉ. नगेंद्र

जब से संविधान में हिंदी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकृत किया गया है उसकी सरलता की समस्या अनेक प्रकार से अनेक क्षेत्रों में हमारे सामने आ रही है। बात तर्कसंगत है, राज जनता का है और राजभाषा के गौरव की अधिकारिणी वही हो सकती है जो जनता की भाषा हो। हिंदी के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यही था और जनता की भाषा का निश्चय इसी के बल पर उसे राजभाषा होने का गौरव मिला। जनता की भाषा निश्चय ही सरल होनी चाहिए क्योंकि जनता का निर्माण जिस विराट जनसमूह से होता है वह न विदग्ध होता है और न पंडित।

हिंदी से जो सरलता की मांग की जाती है वह अकारण नहीं है—सरलता उसका दायित्व है और इससे उसका सहज गुण बन जाना चाहिए।

किंतु सरलता का क्या अर्थ है; वे कौन से तत्व हैं जिससे सरलता का निर्माण होता है, यह निर्णय करना सरल नहीं है। सरल शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'सिंपुल' शब्द के पर्याय रूप में होता है और चूंकि हिंदी की सरलता के लिए अधिकतर वे ही लोग व्यग्र हैं जो अंग्रेजी में सोचने-समझने के अभ्यस्त हैं इसलिए सरलता का स्वरूप-विश्लेषण करने के लिए अंग्रेजी के 'सिंपुल' शब्द का आंचल पकड़े रहना जरूरी होगा। आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'सिंपुल' शब्द के चार अर्थ हैं: (1) अमिश्र—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिसकी रचना केवल एक ही तत्व से हुई हो, (2) अखंड—जो उलझा हुआ या जटिल या अलंकृत न हो—उदाहरणार्थ, अमुक लेखक की शैली सरल और निराभरण है, (3) निरपेक्ष, (4) सीधा-सादा, अकृत्रिम, सहज, निश्छल। संस्कृत में सरल शब्द का शब्दार्थ है ऋजु, सीधा, अवक्र, शुद्ध, वास्तविक, निश्चय आदि।

उपर्युक्त अर्थों में से कुछ ही ऐसे हैं जो भाषा के प्रसंग में सार्थक होते हैं, जैसे सीधा-सादा, सहज, अकृत्रिम, उलझाव और जटिलता से मुक्त, अवक्र और निराभरण। इनके अनुसार सरल भाषा वह है—(1) जो स्वाभाविक हो, (2) जिसकी वाक्य-रचना सीधी और सुलझी हुई हो—जिसमें किसी प्रकार की जटिलता और उलझन न हो अर्थात वाक्य छोटे और सीधे हों। जिनमें किसी प्रकार का घुमाव और पेच न हो, (3) जिसमें किसी प्रकार का आडंबर, अलंकार और वक्र प्रयोग न हो, (4) जो अभीष्ट अर्थ को—मन की बात को ठीक-ठीक और बिना छलकपट के व्यक्त करे। निश्छलता सरल व्यक्ति के समान सरल भाषा का भी अनिवार्य गुण है। ये सभी तत्व सामान्यतः जितने सरल प्रतीत होते हैं उतने वास्तव में हैं नहीं और इन सभी की व्याख्या की आवश्यकता है।

स्वाभाविकता

स्वाभाविकता का अर्थ है अपनी प्रकृति के अनुकूल होना, अतः भाषा की स्वाभाविकता से तात्पर्य है अपने मूल प्रसंग और अर्थ की अनुकूलता। यदि मूल अर्थ जटिल है अर्थात् उसमें अनेक अर्थ छायाओं का मिश्रण है जो जबरदस्ती सरल और छोटे वाक्यों का प्रयोग भाषा के प्रसंग तथा मूल अर्थ के प्रतिकूल होगा और परिणामतः उसे अस्वाभाविक बना देगा। जिस प्रकार जटिल विचार श्रृंखलाओं के अभ्यस्त किसी सूक्ष्मचेता व्यक्ति को सरलता का अभिनय करते देखकर हमारे मन में तृष्णा उत्पन्न होती है। इस प्रकार सूक्ष्म और जटिल विचार संघात की अभिव्यक्ति के लिए छोटे और सरल वाक्यों की बालक्रीड़ा की भयंकर प्रवंचना है। इस तरह की कृत्रिम और मिथ्या सरलता को मर्मी आचार्य लांजाइनस़ ने बालिशता कहा है। जिस प्रकार कृत्रिम अलंकार-मोह से व्यक्तित्व का ह्रास होता है उसी प्रकार सरलता के अभिनय से भी आत्मा का आकर्षण होता हैः समाज के लिए मिथ्या वैभव और गरिमा का प्रदर्शन करने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा ऐसे व्यक्ति ज्यादा खतरनाक हैं जो सादगी का अभिनय करते हैं। इसी तर्क से भाषा के प्रसंग में भी कृत्रिम अलंकार सज्जा की अपेक्षा कृत्रिम सरलता अधिक अस्वाभाविक है, क्योंकि इस प्रकार की भाषा से प्रवंचना की आशंका अधिक रहती है। निष्कर्ष यह निकला कि भाषा की सरलता एक सापेक्ष गुण है जो प्रसंग और मूल अर्थ का अनुसारी है। जीवन के सरल सामान्य अनुभवों की माध्यम-भाषा की स्वाभाविकता एक प्रकार की होगी और सूक्ष्म-जटिल तथा गुंफित अनुभूतियों की भाषा की स्वाभाविकता का रूप दूसरा होगा। राजनीति की बारीकियों को सरल और सहज हिंदी में, छोटे-छोटे जुम्लों और बोलचाल के लफ्जों में अदा करने का आग्रह करना भाषा-विज्ञान और अभिव्यंजना शास्त्र के इस प्राथमिक नियम की अवमानना करना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जटिलता का अभाव

इसमें संदेह नहीं कि जटिलता भाषा का दुर्गुण है। किंतु जटिलता के दो रूप हैं—एक आंतरिक और दूसरा बाह्य। आंतरिक जटिलता से अभिप्राय है अर्थ की जटिलता—अर्थात् चिंतन की जटिलता। जहां चिंतन की गति ऋजु न होकर जटिल और वक्र है वहां भाषा जटिलता से मुक्त नहीं हो सकती और यदि उसे सरल करने का बरबस प्रयत्न किया जायेगा तो वह सही अर्थ को व्यक्त नहीं कर सकेगी। यहां मूल दोष चिंतन का है। भाषा की जटिलता तो विचार की जटिलता की छाया है और विचार की छाया वाक्य-रचना आदि से है—अनभ्यस्त लेखक या अयोग्य लेखक अशुद्ध शब्द-प्रयोग, वाक्यांशों के अनुपयुक्त नियोजन आदि के द्वारा वाक्य रचना को उलझा देते हैं जिससे अर्थ-व्यक्ति बाधित हो जाती है। यह दोष अनभ्यास और अयोग्यता के उत्पन्न होता है और उसका परिहार कठिन नहीं है।

आडंबर और अलंकार से मुक्ति

सरल भाषा का एक गुण है आडंबर और अलंकार से मुक्ति। यहां 'आडंबर' शब्द के विषय में भ्रांति नहीं हो सकती, वह प्रत्येक स्थिति में दोष है और भाषा भी इसका अपवाद नहीं। जिस प्रकार हीनताग्रस्त व्यक्ति व्यवहार एवं रहन-सहन में आडंबर का समावेश कर अपने अभाव को छिपाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए समाज में निंदा के भागी बनते हैं उसी प्रकार अयोग्य लेखक भी भाषा को आडंबरपूर्ण बनाकर साहित्य में निंदनीय बन जाते हैं। किंतु अलंकार भाषा का दोष न होकर गुण है, अलंकार-मोह या कृत्रिम अलंकार या अनुपयुक्त अलंकार ही भाषा का दोष हो सकता है। अलंकार जहां सहजात होता है वहां वह भाषा का अनिवार्य गुण बन जाता है—उससे सरलता बाधित नहीं होती। प्रायः अलंकार का प्रयोग अर्थ स्पष्ट करने के लिए ही किया जाता है। हमारा मंतव्य जितना सादृश्यमूलक अलंकार से साफ हो सकता है उतना रूढ़ शब्दार्थ से नहीं होता। अतः अलंकार को सरलता का विरोधी तत्व मानना ठीक नहीं है।

सही अभिव्यक्ति

अभीष्ट अर्थ की यथावत् अभिव्यक्ति सरल भाषा का अंतिम और अनिवार्य लक्षण है। जिस प्रकार निश्छल हुए बिना व्यक्तित्व की सरलता असंभव है उसी प्रकार अर्थ की निश्छल अभिव्यक्ति के बिना भाषा सरल नहीं बन सकती। अर्थ यदि अमिश्र है तो भाषा की सरलता अमिश्र वाक्य-प्रयोग आदि में निहित होगी, परंतु यदि अर्थ में ही जटिलता है तो मिश्र वाक्य-प्रयोग और व्यंजक पर्यायों के बिना अर्थ-व्यक्ति संभव नहीं हो सकती। और, जहां अर्थ-व्यक्ति ही नहीं है वहां सरलता कैसी?

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत प्रसंग में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(1) भाषा अपने मूल और सहज रूप में माध्यम ही है—अर्थ (विचार और अनुभूति) से निरपेक्ष शब्द (अभिव्यक्ति) की सत्ता नहीं। अतः भाषा का कोई निरपेक्ष नहीं हो सकता।

(2) इस तर्क के अनुसार भाषा की सरलता भी एक सापेक्षिक गुण है जो प्रसंग, वक्ता, बोधव्य आदि पर आश्रित है। वक्ता का मंतव्य यदि सरल है तो भाषा की सरलता एक प्रकार की होगी, पर उसका चिंतन यदि सूक्ष्म एवं जटिल है तो भाषा की सरलता का रूप दूसरा होगा। उस स्थिति में तथाकथित सरलता अत्यधिक दुरूह बन जाएगी। छोटे-छोटे जुम्लों और बोलचाल के लफ्जों का नुस्खा हर मर्ज में काम नहीं आ सकता।

(3) इसमें संदेह नहीं कि शब्दावली और वाक्यरचना का भाषा की सरलता के साथ संबंध है, किंतु यह संबंध अनिवार्य नहीं है—अर्थात् कोई विशेष प्रकार की शब्दावली तथा वाक्य-रचना भाषा को सरल बनाती है—ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता। संस्कृत के तत्सम शब्दों से भाषा कठिन बन जाती है और बोलचाल के शब्दों से सरल—अथवा लंबे वाक्यों का प्रयोग भाषा को दुरूह और छोटे वाक्यों का प्रयोग उसे सरल बनाता है, यह कोई अकाट्य तर्क या विधान नहीं है। कभी-कभी बोलचाल के शब्दों से मतलब एकदम दुरूह हो जाता है और छोटे-छोटे वाक्य अर्थ को खंड-खंड कर बुरी तरह उलझा देते हैं।

(4) वक्ता के अतिरिक्त श्रोता पर भी भाषा का स्वरूप आश्रित रहता है और सरलता भी इसका अपवाद नहीं है; अर्थात भाषा की सरलता का निर्णय उस जनसमुदाय की बहुसंख्या की बोध-शक्ति के आधार पर होना चाहिए जिसके लिए उसका प्रयोग होता है या जो उसका प्रयोग करता है। सरलता का अर्थ सुबोधता है और सरल भाषा वही है जो भारत की बहुसंख्यक जनता के लिए सुबोध हो। राष्ट्र-भाषा की सुबोधता का निर्णय राष्ट्र के समग्र आयाम को दृष्टि में रखकर करना होगा।

प्रस्तुत भूमिका में इस बात के लिए खेद-प्रकाशन की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है कि भाषा की सरलता की व्याख्या करने में मेरी अपनी भाषा, वर्ग विशेष में प्रचलित धारणा के अनुसार कदाचित सरल नहीं रह सकी, क्योंकि जैसा कि मैंने आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया है, सरलता जितनी सरल है उसका स्वरूप-विश्लेषण उतना ही कठिन है। मैंने यहां केवल सिद्धांत-विवेचन ही किया है, उदाहरण देने के लोभ का जानबूझकर संवरण किया गया है—क्योंकि मेरा उद्देश्य हिंदी के विरुद्ध वर्ग-विशेष के आक्षेपों का उत्तर देना उतना नहीं रहा जितना कि समस्या के मूल तत्वों का उद्घाटन करना। □

'पुस्तक परिचय' से साभार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदी और अंग्रेजी : अनुवाद का रिश्ता

हरीश त्रिवेदी

हिंदी और अंग्रेजी की रब्त-जब्त बड़ी पुरानी है, कम से कम दो सौ साल पुरानी, और इस दौरान इन दोनों भाषाओं के संबंध में न केवल कई उतार-चढ़ाव आए हैं बल्कि काफी उलट-पुलट भी हुई है। जब तक अंग्रेजों का आधिपत्य पूरी तरह जम नहीं गया वे भारत में भारतीयों की तरह रहे—हुक्का पीते हुए, हिंदुस्तानी रखैलें रखते हुए, फारसी-बंगाली-हिंदुस्तानी बोलते हुए। भारत आते ही ईस्ट इंडिया कंपनी के गुमाश्ते, सिपाही और ईसाई धर्म-प्रचारक पहला काम यह करते कि भारतीय भाषाएं सीखते। यही भाषाई प्रशिक्षण व्यवस्थित रूप से देने हेतु सन् 1800 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की गई। जिन अंग्रेजों के भाषा ज्ञान में अधिक योग्यता व रुचि थी उनमें से बहुतों ने भारतीय भाषाओं के व्याकरण लिखे, उनके द्विभाषी शब्दकोश बनाए और अन्य अंग्रेजों की सुविधा हेतु भाषा-शिक्षक पुस्तकें (या मैन्युअल्स) तैयार किए, जैसे हिंदी में विशेषतः जान गिलक्रिस्ट ने व (स्वनामधन्य) जान शेक्सपीयर ने। आधुनिक फ्रेंच विचारक *मिशेल फूको* के मत में ज्ञान ही शक्ति है, अतः भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके ऐक तरह से अंग्रेज भारत पर काबू पाने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने इस तरह हमारे बारे में जो भी समझा-सीखा उससे (एडवर्ड सईद के अनुसार) उनके मन में एक ऐसे भारत की संरचना हुई जिसका यथार्थ से जो भी संबंध रहा हो, अंग्रेजी साम्राज्यवाद से सीधा नाता था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसी काल में हिंदी-अंग्रेजी के बीच सबसे पहले अनुवाद हुए जो अंग्रेजी से हिंदी में थे। शुरू में बाइबिल के कुछ अंशों के अनुवाद हुए और फिर पूरी बाइबिल के। 1811 या 1812 में हुए हरिद्वार के (कुम्भ) मेले में जनता को बांटे गए एक ऐसे ही अनुवाद से संबंधित एक रोचक वृत्तांत लंदन की चर्च मिशनरी सोसाइटी के 'मिशनरी रजिस्टर' में मिलता है। भारत में ईसाई धर्म छा नहीं गया, या अपने लिए वैसा बड़ा अल्पसंख्यक स्थान भी नहीं बना पाया जैसा कि पहले इस्लाम ने बनाया था, तो इसके विविध कारण हैं जिनमें शायद एक छोटा कारण यह भी हो कि बाइबिल के अनेक भारतीय भाषाओं में जो असंख्य अनुवाद हुए वे नितांत अटपटे व अपठनीय थे। बाइबिली हिंदी या हिंदुस्तानी एक अजीब सी भाषा थी जिसे शायद अंग्रेज पादरी ही लिख-बोल सकते थे। यानी वही मसल कि लिखें ईसा, पढ़ें मूसा।

यह तो था हिंदी-अंग्रेजी अनुवादों का पहला दौर। दूसरे दौर में, जब अंग्रेजी प्रमुख व शासन की जड़ें भारत में ठीक से जम गईं, जब उनका काम सध गया, तो शीघ्र ही वे 'नेटिव' तौर-तरीके छोड़कर फिर अक्खड़ 'साहब' बन गए और उन्होंने यहां की भाषा व संस्कृति पर अपनी संस्कृति व अपनी भाषा आरोपित करनी शुरू कर दी। अब उल्टे हम भारतीयों ने अंग्रेजी सीखनी शुरू कर दी; यह महान राष्ट्रीय प्रयास अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी निरंतर व अबाध चल रहा है, बल्कि अब जितने जोर पर है उतना पहले कभी नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में पांच विश्वविद्यालय व जगह जगह चालीस-पचास कालेज खुले और अंग्रेजी शिक्षा का सहसा विस्तृत प्रचार हुआ। अंग्रेजी सीखकर भारतीयों ने अंग्रेजी साम्राज्य के *बिचौली* या दलाल बनकर मध्यम श्रेणी के शासकीय पद तो संभाले ही (जैसा कि अंग्रेज शासकों का अभिप्राय था) पर साथ ही उन्होंने अंग्रेजी साहित्य व पश्चिमी संस्कृति को भी आत्मसात् करना शुरू कर दिया। डिप्टी कलक्टर बनने का सपना लेकर अंग्रेजी सीखने वाले भारतीयों ने शीघ्र ही पाया कि शेक्सपीयर व बायरन पढ़कर उन्हें एक नए प्रकार का रोमांच अलग से हो रहा है।

लगभग सन् 1880 से लेकर अगले चालीस-पचास वर्षों का समय अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। हिंदी में शेक्सपीयर का पहला अनुवाद हुआ 1882 में, 'कामेडी आव एरर्स' का 'भ्रमजालक नाटक' नाम से इलाहाबाद के मुंशी रतनचंद द्वारा, जिसमें अंग्रेजों की खिल्ली उड़ाने के अनेक प्रसंग इस साहसी अनुवादक ने किंचित् रूपांतर करके हासिल कर लिए थे, और फिर जल्दी ही आया भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'मर्चेण्ट आव वोनिस' का रूपांतर 'दुर्लभ बंधु' (1885), जिसमें सभी ईसाई पात्र बना दिए गए हिंदू और शायलाक जैसे ज्यू बना दिए गए जैन! तब से अब तक हिंदी में शेक्सपीयर के बीस नाटकों के सत्तर से अधिक अनुवाद नाटक के रूप में और लगभग डेढ़-सौ और रूपांतर कथा-कहानी के रूप में छप चुके हैं। अंग्रेजी साहित्य के जिन अन्य ग्रंथों व लेखकों के अनुवाद तब हुए उनमें प्रमुख थे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जोसेफ एडिसन, आलिवर गोल्डस्मिथ, टामस ग्रे, सैमुएल जानसन (विशेषतः उनका उपन्यास 'रैसेलस') व अठारहवीं शताब्दी के ऐसे ही अन्य नव-रीतिवादी (नियो-क्लासिकल) लेखक, और इनके प्रमुख अनुवादकों में थे श्रीधर पाठक, कामताप्रसाद गुरु व बाबू तोताराम इत्यादि।

इन अनुवादों का हिंदी साहित्य के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा यह कहना कठिन है। यह तो असंदिग्ध है कि इस दौरान हिंदी में कुछ ऐसी नई विधाओं का उद्‍भव हुआ, जैसे कि निबंध या उपन्यास, जिनका सांचा हमें अंग्रेजी या पाश्चात्य साहित्य से मिला। पर यह स्पष्ट नहीं है कि हिंदी में अंग्रेजी से अनुवाद यदि न होते तो भी इन विधाओं के विकास में यह प्रभाव उसी भांति न पड़ता। लगता है कि जो लेखक हिंदी में निबंध या उपन्यास लिख रहे थे उनके सामने अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित निबंध या उपन्यास न थे बल्कि प्रत्यक्ष मूल अंग्रेजी के ही ग्रंथ थे जिनका वे स्वयं परायण कर सकते थे व कर रहे थे। हिंदी साहित्य के एक इतिहास में उचित ही कहा गया है कि ठीक उन्हीं वर्षों में जब हिंदी उपन्यास का उदय हो रहा था, "अंग्रेजी के किसी गंभीर उपन्यास के (हिंदी में) अनुवाद की सूचना नहीं मिलती।" यह सच है कि हिंदी में उपदेशात्मक 'रैसेलस' के तो एकाधिक हिंदी अनुवाद मिल जाएंगे पर जेन आस्टेन, डिकेन्स, थैकरे, जार्ज एलियट, टामस हार्डी या डी.एच. लारेंस इत्यादि के अनुवाद दुर्लभ हैं। यहां तक कि भारत के ही बारे में लिखे गए सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी उपन्यासों 'किम' व 'ए पैसेज टु इंडिया' का विश्व की असंख्य अन्य भाषाओं में भले ही अनुवाद हो गया हो, हिंदी में नहीं हुआ है। कारण यह नहीं है कि हिंदी-भाषी ये उपन्यास नहीं पढ़ते, कारण यह है कि हिंदी वालों को अंग्रेजी साहित्य सीधे अंग्रेजी में ही पढ़ने का सुभीता व अभ्यास जल्दी ही हो गया था।

ऐसी स्थिति में, जहां हिंदी सीधे अंग्रेजी को ग्रहण व आत्मसात् कर रही हो, अनुवाद का स्थान नगण्य हो जाता है। अंग्रेजी राज का हम पर इतना गहरा असर पड़ा कि हम कई मानों में अंग्रेज ही हो गए, खुद अंग्रेजी पढ़ने-बोलने लगे। भारत में पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों से अगर अंग्रेजी की उपस्थिति एक आइसबर्ग की भांति है तो अनुवाद उसका दशांश मात्र है, बाकी नौ हिस्से तो अदृश्य रूप में हमारी अथाह गहराइयों तक व्याप्त हैं। एक अन्य रूपक बांधे तो जैसे बोध-गया में फल्गू नदी मुख्यतः अन्तःसलिला है उसी प्रकार हिंदी आत्म-बोध को अंतस्तल तक आप्लावित करने वाली धारा है अंग्रेजी। कौन हिंदी वाला अब ऐसा कोरा बचा है जो अंग्रेजी से सर्वथा अछूती हिंदी लिखता-बोलता हो, और कितने पढ़े-लिखे हिंदी वाले ऐसे बचे हैं जो साथ ही अंग्रेजी न बोल सकते हों या बोल सकना न चाहते हों? इस संदर्भ में रघुवीर सहाय का विशेष ध्यान आता है जिनकी कविताओं का एक मुख्य विषय ही है हिंदी की वर्तमान परिस्थिति व उसकी अंग्रेजी से रकाबत व शिकस्त :

हिंदी के नेता बोले बड़ी देर तक। हिंदी जनता ने पूछा अंग्रेजी बोल सकते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हैं उनमें से सबसे बड़ी चुटियावाला आया अंग्रेजी बोल गया बाकी हिंदी वाले रह गए।

यह कहना आवश्यक है कि ऐसा नहीं है कि अंग्रेजी भाषा के प्रसार के बाद अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद न हुए हों। शेक्सपीयर के ही तीन नाटकों के स्वयं रघुवीर सहाय ने अनुवाद किए, शेक्सपीयर के ही चार नाटकों के अनुवाद बच्चन कर चुके थे और उसके पहले रांगेय राघव ने डेढ़-दो साल के भीतर शेक्सपीयर के पंद्रह नाटकों का धड़ाधड़ अनुवाद करके अंबार लगा दिया था। मोहन राकेश ने हेनरी जेम्स के एक प्रसिद्ध उपन्यास का कुछ जल्दी में अनुवाद किया 'एक औरत का चेहरा' नाम से, और विष्णु खरे ने टी.एस. एलियट की अनेक दुरूह कविताएं बड़े एहतियात से अनूदित कीं। और भी अनेक अनुवाद हुए और उनमें से बहुतों की प्रेरणा थी या तो अनुवादक का अनुवाद्य के प्रति विशेष अनुराग, या साहित्यिक रियाज की भावना या फिर आर्थिक जरूरत। ऐसा न था कि झुण्ड के झुण्ड हिंदी पाठक शोर मचा रहे हों कि हमें पढ़ने को अंग्रेजी साहित्य के और अनुवाद दो।

लगभग इसी समय कई हिंदी अनुवादकों ने या तो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से गैर-अंग्रेज/अमेरिकन साहित्यकारों के हिंदी अनुवाद किए, जैसे कि राजेंद्र यादव ने कामू का 'अजनबी' या फिर अंग्रेजी का दामन छोड़कर अन्य विदेशी भाषाएं सीखकर उनसे सीधे अनुवाद किए, जैसे निर्मल वर्मा द्वारा अनूदित सात चेक कहानियों का संग्रह 'इतने बड़े धब्बे' (1966), जिसमें एक कहानी मिलान कुण्डेरा की भी थी, जिनका तब तक अंग्रेजी तक में अनुवाद नहीं आया था। अंग्रेजी जानने का (बेजा?) फायदा उठाकर या अंग्रेजी को दरकिनार करके विश्व की अन्य भाषाओं व अन्य राष्ट्रों का साहित्य हिंदी में लाने-बसाने का काम कई अनुवादकों ने किया जिनमें अधिकतर पूर्वी योरोप के 'दूसरे विश्व' के देशों की ओर या 'तीसरे विश्व' के अफ्रीकाई या अन्य देशों की ओर आकृष्ट हुए। रघुवीर सहाय ने हंगारी से कविता और उपन्यास का अनुवाद किया, विष्णु खरे ने योरोप की अन्य कई भाषाओं से कविता के अनुवाद किए और विशेष श्रद्धा-भावना से प्रेरित होकर व निजी मुलाकात व परिचय का उल्लेख करते हुए सोमदत्त ने वास्को पोपा की और वीरेंद्र कुमार बरनवाल ने वोले शोयिन्का की कविताओं के हिंदी में संग्रह निकाले। ऐसे अनुवादों को स्वातंत्र्योत्तर स्वाभिमान व पुनर्जागरण की एक अंगड़ाई मानना ही उचित होगा। इन अनुवादों द्वारा अंग्रेजी भाषा का मीठा-मीठा तो हमने गप कर लिया पर अंग्रेजी साहित्य का कड़वा-कड़वा थूक कर फेंक दिया। वैसे पिछले पचास वर्षों के अंग्रेजी साहित्य में इस तरह थूकने को कुछ खास था ही क्या!

अब रही दूसरे पलड़े की बात, जो शायद और भी हल्का है—हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद का। अठारहवीं शताब्दी के अंत में जब सर विलियम जोन्स प्रभृति अंग्रेज शासक-पंडितों ने भारतीय साहित्य का 'आविष्कार' किया व हमारे साहित्य के चुनिंदा महाग्रंथों का उल्था करके उन्हें विदेश पहुंचाया तो ये ग्रंथ मुख्यतः संस्कृत के ही थे :

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भगवद्गीता, शाकुन्तलम्, मनुस्मृति इत्यादि। आधुनिक भारतीय भाषाओं को उन्होंने हेय व उपेक्ष्य समझा, इनसे कोई अनुवाद नहीं हुए। हिंदी के किस साहित्यिक ग्रंथ का अनुवाद सबसे पहले अंग्रेजी में हुआ यह तो ज्ञात नहीं है पर एफ.एस. ग्राउज महोदय द्वारा लगभग 1880 में अनूदित 'रामचरितमानस' के पहले बिरले ही ऐसे अनुवाद हुए होंगे। उसके बाद भी हिंदी से अंग्रेजी में अनुवादों का तांता बंध गया हो, ऐसा न था। उदाहरणतः प्रेमचंद के जीते जी उनकी कहानियों के जितने अनुवाद जापानी भाषा में छपे उससे अधिक शायद अंग्रेजी भाषा में नहीं छपे। हिंदी साहित्य की अंग्रेजों व अन्य अंग्रेजी-भाषियों को अधिक दरकार न थी, ऐसा प्रतीत होता है।

पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस स्थिति में एक नया व किंचित् अप्रत्याशित मोड़ आया। अंग्रेजी वालों ने तो अब भी हिंदी की उपेक्षा नहीं छोड़ी पर हम ही को अपने स्वातंत्र्योत्तर (पोस्ट-कलोनियल) गर्व में लगा कि हम अंग्रेजी अनुवादों के माध्यम से पूरी दुनिया को दिखाएं कि हमारे पास हिंदी में भी कुछ है। आधुनिक हिंदी साहित्य की किसी पुस्तक का शायद पहला ऐसा अनुवाद था बच्चन की 'मधुशाला' का, जो मार्जरी बूल्टन और रामस्वरूप व्यास ने किया और जो 'द हाउस आव वाइन' के नाम से लंदन में 1950 में छपा। (यह दूसरी बात है कि 'मधुशाला' भी एक प्रकार से फारसी के उमर खय्याम का एडवर्ड फिट्जजेरल्ड द्वारा अनुवाद का अनुवाद ही थी, तो इस प्रकार उसका अंग्रेजी में प्रत्यनुवाद हुआ।) इस अनुवाद को इंग्लैंड में तो विशेष सफलता न मिली पर हाल में ही यह पेंग्विन इंडिया द्वारा 'मधुशाला' के ही नाम से भारत में भी छपा है (1989)। प्रेमचंद के किसी भी उपन्यास का पहला अंग्रेजी अनुवाद अमेरिका में छपा 'गोदान' का, गार्डन रोडरमल द्वारा 'द गिफ्ट आव ए काउ', वैसे यह अनुवाद आधे से अधिक अज्ञेय का किया हुआ है। यह भारत में अब भी अप्राप्य है। शायद इसीलिए जयरतन व पी. लाल का हड़बड़ी व लापरवाही से किया 'गोदान' नाम से ही अंग्रेजी अनुवाद अब भी धड़ल्ले से प्रचलित है।

'मधुशाला' व 'गोदान' के ये अनुवाद एक मूल प्रश्न यह उठाते हैं कि हिंदी से अंग्रेजी में अनुवाद है किसके लिए, किन्ही अमेरिकन या अंग्रेजी विदेशी पाठक के लिए (जिसकी लेशमात्र भी रुचि हमारे साहित्य में जागती नहीं दिखती) या हम भारतीयों के लिए ही, जिनमें हिंदी-भाषी प्रदेशों की वह नई पीढ़ी भी शामिल है जो हिंदी फिल्में देख लेती है, बाजारू हिंदी बोल लेती है, पर हिंदी में पूरी पुस्तक पढ़ने में जिसकी नानी मरती है। इन्हीं लोगों को ध्यान में रखकर पेंग्विन इंडिया, हार्परकालिन्स व रूपा इत्यादि भारतीय अंग्रेजी प्रकाशकों ने पिछले पांच-सात वर्षों में भारतीय भाषाओं से अनूदित अनेक पुस्तकें छापी हैं जिनकी खपत भारत में ही है; पेंग्विन इंडिया की छापी पुस्तकें पेंग्विन लंदन वाले अधिकतर छूते भी नहीं।

इनमें भांति-भांति की पुस्तकें हैं। हिंदी के आधुनिक व आधुनिकतावादी कथाकारों जैसे निर्मल वर्मा व कृष्णबलदेव वैद की कृतियां, अनेक लेखकों के कहानी-संग्रह, व

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक-आध पता नहीं किस आधार पर चुनी गई काव्य-पुस्तकें, जैसे बिहारी की भीषण रूप से संश्लिष्ट व अननुवाद्य 'सतसई'। अन्य छोटे प्रकाशकों ने यशपाल व रेणु की कहानियां, 'निर्मला' व 'मैला आंचल', व सूर व कबीर के भी अनुवाद छापे हैं जो या तो कारिन फ्रेंड, कैथरीन हैंसन व डेविड रूबिन इत्यादि विदेशियों ने किए हैं या एक-आध प्रवासी भारतीयों ने।

कुछ अन्य अनुवादों में एक और नई प्रवृति दिखी है कि समर्थ अंग्रेजी वाले दीन-हीन हिंदी पुस्तकों के अनुवाद जिस रूप में भी छापना चाहेंगे छापेंगे। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में है, पर जब इसका जिलियन राइट द्वारा किया गया व स्वयं शुक्ल जी द्वारा अनुमोदित अनुवाद पेंग्विन इंडिया ने 1992 में छापा तो उसमें मूल हिंदी पाठ के पांच-दस या बीस-तीस नहीं, पूरे सत्तर पृष्ठ नदारद थे। सुश्री राइट का तो कुछ अधिक आना-जाना था नहीं, स्वयं शुक्ल जी भी शायद इसलिए मान गए कि अगर इन सत्तर पृष्ठों को लेकर विवाद उठ खड़ा होता है तो कहीं यह न हो कि रहे-सहे साढ़े तीन सौ पृष्ठों का अंग्रेजी प्रकाशन भी हाथ से जाता रहे। ऐसा सोचना स्वाभाविक भी है। यहां शायद इसका उल्लेख भी संगत हो कि अभी-अभी 1993 में लंदन से हाइनमन की नई पुस्तक श्रृंखला 'एशियन राइटर्ज सिरीज' में विभिन्न भारतीय भाषाओं के जिन छः उपन्यासों का अनुवाद छपा है उनमें इकलौता हिंदी उपन्यास है न्यूयार्क में रहने वाली व न्यूयार्क के बारे में लिखने वाली सुश्री सुषम बेदी का 'हवन' ('द फायर सैक्रिफाइस') जिसकी यहां हिंदी-जगत में दूर-दूर तक चर्चा भी नहीं है।

तो हालत अब यह है कि हिंदी के (या अन्य किसी भारतीय भाषा के भी) बड़े से बड़े लेखक की चरम लालसा शायद यह नहीं है कि उसे साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिल जाय या उसके उपन्यास पर दूरदर्शन धारावाहिक ही बना दे, बल्कि यह कि उसकी कृतियों का अंग्रेजी अनुवाद होकर बड़े 'मल्टीनेशनल' नाम वाले पेंग्विन या हार्परकालिन्स जैसे प्रकाशकों द्वारा छपे, जिससे उसे अंतर्राष्ट्रीय नहीं तो कम से कम अखिल-भारतीय ख्याति प्राप्त हो और अंग्रेजी हिसाब से दक्षिणा भी मिले। (दृष्टव्य है कि एक ही दूकान में पेंग्विन का अंग्रेजी 'राग दरबारी' पचास रुपए का बिकता है और हिंदी का राजकमल का छापा 'राग दरबारी' सिर्फ पच्चीस रुपए का, जबकि, जैसा हम जानते ही हैं, हिंदी संस्करण में सत्तर पृष्ठ की सामग्री ज्यादा है।) हिंदी लेखकों की वर्तमान पीढ़ी की यह अभिलाषा कि उसका सद्यः व सम्यक् अंग्रेजीकरण हो, सब जगह दिखती है। उदाहरणस्वरूप, जब प्रसिद्ध अमेरिकी अनुवादक डैनियल वाइसबोर्ट 1990 में साहित्य अकादेमी की एक पखवाड़े-भर की अनुवाद कार्यशाला में भाग लेने दिल्ली आए तो हिंदी के अनेक शीर्षस्थ कवियों ने उनके समक्ष अपनी-अपनी कविताओं के शब्दार्थ, भावार्थ, पृष्ठभूमि, इतिहास आदि का ऐसे मनोयोग से स्वयं इजहार व खुलासा किया कि उन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुवादक-प्रवर का उत्साह इन मूल लेखकों की अनुवाद-आतुरता के सम्मुख कुछ क्षीण व मलिन सा प्रतीत हुआ।

हमारे आधुनिक सांस्कृतिक-ऐतिहासिक प्रवाह का वेग हमें भविष्य में किस ओर ले जाएगा यह तो भविष्य ही जाने। पर यदि हिंदी लेखकों की अगली पीढ़ी हिंदी में लिखकर अंग्रेजी अनुवाद की प्रतीक्षा में बैठी रहने की बजाय एक क्या-नाम-करके 'शार्टकट' ले और सीधे अंग्रेजी में ही लिखना शुरू कर दे तो इसमें न तो किसी को अधिक आश्चर्य होना चाहिए और न ही विशेष क्षोभ। इस सम्भावित प्रवृत्ति के परोक्ष लक्षण उन अनेक हिंदी लेखकों में तो दिख ही रहे थे जो अपनी हिंदी रचनाओं का स्वयं ही अंग्रेजी में अनुवाद करने में सक्षम व तत्पर हो रहे हैं, जैसे अज्ञेय, वैद, कुंअर नारायण, गिरधर राठी इत्यादि। पर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिया है इसी वर्ष मृणाल पांडे ने, जो हिंदी की युवा/अधेड़प्राय पीढ़ी की शायद सबसे समर्थ लेखिका हैं। बीस वर्ष से अपने मूल हिंदी लेखन का यदा-कदा स्वयं अंग्रेजी अनुवाद (और अन्य प्रमुख हिंदी लेखकों का भी अंग्रेजी अनुवाद) करते रहने के बाद अब वे एक नया उपन्यास प्रकाशित करने जा रही हैं पर इस बार मूल अंग्रेजी में—'डाटर्स डाटर'। लगता है कि अब यही हवा का रुख है, यही जमाने की रफ्तार है। 'हमने जो तर्जे-फुगां की है कफस में ईजाद, 'फैज' गुलशन में वही तर्जे-बयां ठहरी है।'

पर इन सभी वाकयात और हवादिस का कुल मिला के मतलब क्या है? इस सदी के शुरू में अठारह-बीस बरस तक सिर्फ उर्दू में लिखने के बाद प्रेमचंद उर्दू छोड़कर हिंदी में चले आए थे क्योंकि हिंदी में पढ़ने वाले ज्यादा थे और पैसा ज्यादा था। पिछली शताब्दी भर और इस शताब्दी के दूसरे दशक तक उर्दू का उत्तर भारत की सभी भाषाओं की तुलना में अधिक प्रभुत्व था पर वही उर्दू अब हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों में अधोगति को प्राप्त हो रही है। अगले पचास-साठ वर्षों में क्या यही हश्र हिंदी का भी होना है? खास कर हम यह भी ध्यान में रखें कि जब भारत की समूची अर्थव्यवस्था 'उदारीकरण' (या लिबरलाइजेशन) के नाम पर वर्ल्ड बैंक को सौंप दी गई है, तो हमारी सांस्कृतिक व साहित्यिक व्यवस्था का भी अंग्रेजी के हाथों 'उदारीकरण' होते क्या देर लगेगी? क्या भारत-भारती के स्थान में अब विश्व-भारती अंग्रेजी ही यत्र-तत्र-सर्वत्र गूंजेगी और रवींद्रनाथ ठाकुर के स्वप्न को विडंबनापूर्ण रूप से साकार करेगीः 'यत्र विश्वो भवति एकनीड्म।'

सचमुच ही जमाना आ गया है जब बड़ी से बड़ी चुटियावाला हिंदी-भाषी भी भीड़ चीरकर आता है और अंग्रेजी बोल जाता है। इसमें अप्रत्याशित पराक्रम भले ही चुटियावाले का हो पर असली विजय अंग्रेजी की ही है। ऐसे एकतरफा व्यापार में पूरी आशंका है कि हिंदी घटेगी और अंग्रेजी और बढ़ेगी। रघुवीर सहाय की ही एक और कविता के शब्दों मे तो 'समाज को बदलने के लिए एक भाषा का युद्ध' जो हम लड़ रहे थे वह अब 'हम हार चुके हैं।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अंत में, अनुवाद के एक और अपेक्षाकृत विशद व सर्वव्यापी अर्थ का भी उल्लेख आवश्यक है जो इस शब्द की व्युत्पत्ति और अभिधा में ही निहित है। अनुवाद अर्थात् कोई जो कह चुका हो उसी को उसके बाद कहना, मात्र दोहराना, सिर्फ गूंज। इस अर्थ में हमारी पूरी आधुनिक संस्कृति जहां तक पाश्चात्य संस्कृति से आक्रांत है और उसकी अनुकृति है वहां तक उसे अनूदित संस्कृति कहना ही उपयुक्त होगा। अनुवादकों व अनुवाद-शास्त्रियों में यह प्रश्न सदैव विवादित रहा है कि अनुवाद करने का एकक क्या हो? अनुवाद शब्दशः हो, मक्षिकास्थाने मक्षिका वाला, या वाक्यशः हो या शब्द-वाक्य और पृष्ठ के बंधन काट कर पूरी कृति के समूचे भावार्थ को ही भाषांतरित करने का प्रयत्न क़िया जाय? हाल में ही प्रसिद्ध अनुवाद विशेषज्ञ सूजन बैसनेट और आंद्रे लेफेवर ने इससे भी दो हाथ आगे बढ़कर सुझाया है कि अनुवाद पूरी कृति का भी नहीं होता, बल्कि उस पूरी भाषा का होता है जिसमें वह कृति लिखी गई है, उसके पूरे इतिहास व उसकी पूरी संस्कृति का होता है जो उस कृति में अनिवार्य रूप से सन्निहित है।

कुछ इसी अर्थ में तेजस्विनी निरंजना ने (अंग्रेजी भाषा में लिखते हुए) यह अवधारणा की है कि भारत जैसे 'थर्ड वर्ल्ड' देश में यह तो हमारी नियति है कि हम सदैव अनुवाद की अवस्था में जिएं। इस अत्याधुनिक (पोस्ट-माडर्न) सूत्र का हिंदी लेखक रमेशचंद्र शाह ने अपने अलग ही दृष्टिकोण से कुछ अधिक व्यथित स्वर में यह कह कर अनुमोदन किया है कि हमारी पूरी संस्कृति ही अब 'अनुवाद जीवी' हो चली है, जिसका अर्थ यह है कि हमारा आत्म-विश्वास लुप्त हो गया है व हम 'आत्मा से दीन व परोपजीवी' हो गए हैं।

यह चिंता इक्का-दुक्का लेखकों की ही चिंता नहीं हमारी पूरी पीढ़ी व हमारे पूरे देश-काल की चिंता है। यह हमारे आत्म-बोध का संकट है, हमारे मूल अस्तित्व का प्रश्न है। अनुवाद या तो अनूदित मूल को खा-पचा लेगा, उसके सत्व को आत्मसात् कर हृष्ट-पुष्ट बनेगा, या फिर उसका अनुगामी व अनुचर बनकर चलेगा, उसका अनुजीवी होकर जिएगा। बीसवीं शती की तथाकथित उपनिवेशवादोत्तर संध्या के गहराते अंधेरे में किंचित् आशंकित व सहमे खड़े हम बस प्रतीक्षा ही कर सकते हैं यह देखने की कि अगली शती के प्रचण्ड आलोक में इन दो विकल्पों में कौन-सा सच सिद्ध होता है। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सर्जनात्मक उपादान और सर्जक की चिंताएं

विजय कुमार

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वस्तु और शिल्प से लेकर उसके इतर उपादानों तक सर्जक और ग्राहक के अतर्संबंध जटिलतर होते जा रहे हैं। संवेदनशील सर्जक और उसकी सर्जना की प्राथमिकता इनसे उबारने या उबरने की होनी चाहिए। अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की यातना जो सर्जक को भोगनी होती है, यदि वही पाठक के हिस्से में आती है तो यह मान लेना चाहिए कि कहीं बड़ी भूल हुई है। तात्पर्य यह कि अनुभूति की वह संपूर्णता या अंश पाठक को बखूबी संप्रेषित हो, बिना व्यवधान के। बजाए इसके कि अनुभूति से अभिव्यक्ति तक के सृजन-चिन्हों का ब्यौरा पाठक को परोसा जाए। पाठक की जो रचना से अपेक्षा या मांग है वह पूरी होने पर सार्थक सृजन की पूर्णता होती है।

अनुभूति को रुपायित करने तथा संप्रेषणीय बनाने में संवेदना का व्यापकत्व बहुत जरूरी है। वर्ना सतही स्तर की सृजनात्मकता का खतरा बना रहता है। संभव है लेखक या कवि की संवेदनानुकूल रचना माध्यम पूर्व प्रचलित परंपरागत शिल्प में उसे आत्मसात न कर पाए, जो सर्जक का अपना है। यह भी मुमकिन है कि व्यापक संवेदना और उपयुक्त शिल्प चयन के बावजूद मूल अनुभूति रचना में उपेक्षित रह जाए और सर्जना एक तरह से पाठक या श्रोता को 'रचने' का मात्र उपक्रम प्रतीत हो।

दरअसल अनुभूति के व्यापकत्व के अलावा रचना-माध्यम के प्रति आश्वस्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होकर शिल्प-चयन तक, अनुभूति-ग्रहण से अभिव्यक्ति-प्रयास तक और अभिव्यक्ति के प्रस्थान से संप्रेषण-लक्ष्य तक एक तरल और पारदर्शी जमीन सर्जक को खुद तैयार करनी होती है। जब तक रचना संप्रेषणीयता से वंचित रहेगी, निश्चित रूप से उसका मूलोद्देश्य भी अपेक्षित या उपेक्षित ही रहेगा।

जब हम संवेदना से जुड़े उपादानों की बात करते हैं तो परंपरागत उपादानों से अधुनातन उपादानों तक से रूबरू होना अनिवार्य हो जाता है। सृजन-संबंधी प्रत्येक सर्जक की अपनी मान्यता, अपनी विचारधारा हो सकती है और भावनात्मक रूप से संपृक्ति के फलस्वरूप वह रचनात्मक और बुनियादी तौर पर किसी विधा से संलग्न होता है। इसी संलग्नता के चलते उस विधा का शिल्प क्रमशः विकासमान होता है। इस विकास-यात्रा में सर्जक को कई चुनौतियों का सामना करना लाजमी है। संभव है कि सर्जक, परिवेश का दबाव महसूस करे या अपने विवेकानुसार शिल्प अन्वेषित कर ले या परंपरागत शिल्प का अनुकरण स्वीकारे या फिर शिल्प की परवाह किए बगैर मात्र अपना भावकथन या विचार-कथन करता जाए। लेकिन, ये स्थितियां किसी भी संवेदनशील, प्रतिभासंपन्न सर्जक को दिग्भ्रमित नहीं करतीं। वस्तुतः संवेदनाजन्य अनुभूति के प्रसार से ही रचना अपने व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित होती है और इसके लिए जरूरी होती है भावों और विचारों की अन्विति, बल्कि इससे भी पहले जरूरत होती है संवेदना का घनीभूत हो जाना।

संवेदना का घनीभूत हो जाना मात्र सर्जक की सर्जना तक ही सीमित रहता है तो यह रचना का बड़ा संकट है। वह पाठक या श्रोता को भी उसी परिमाण में प्रेरित या उद्वेलित करे, जिस अनुपात में सर्जक को। यहां सवाल किया जाना चाहिए कि इसके बाद जो प्रत्यक्षतः हमारे समक्ष होगा उसकी संहिति का परस्पर अनुपात क्या होना चाहिए किंवा उसका निर्धारण कैसे हो? क्या सपाटबयानी, सतहीपन, किस्सागोई या विवरणात्मकता जैसी कोई चीज़ सर्जना की मांग हो सकती है? पूछना चाहिए कि क्या ऐसा कर सर्जक अपनी रचना को भाषण या आख्यान बनने से बचा पाएगा? तात्पर्य यह कि नगण्य या न्यून अनुभूति के प्रस्तुतिकरण हेतु अभिव्यक्तिपरक उपादानों के आवरण में शब्दजाल रचकर संहति बढ़ाई जाएगी तो वह रचना अकादमिक रूप लेगी या सर्जनात्मकता की वकालत करेगी। तब, बात बनती नहीं है गोया कि किसी प्लास्टिगखड़क के वास्ते हम स्वर्ण-म्यान और मखमली मूठ की तलाश कर रहे हों, कितनी हास्यास्पद स्थिति है। कला-वादियों की दृष्टि में वह रचना चाहे जितनी महत्वपूर्ण हो, अनुभूतिजन्य संप्रेषणीयता का नकार सीधे पाठक का नकार होता है, जो कि शिल्प की अपेक्षा वस्तु के ज्यादा करीब होता है। तब, पाठक को नकारकर हम किसी रचना के सफल होने का ख्याली-पुलाव ही तैयार करेंगे, पाठक, रचना और संवेदना के साथ न्याय कदापि नहीं। और, वर्तमान साहित्य में बहुतायत-सा ऐसा हुआ है और हो रहा है, यह सर्जक की मूलभूत चिंता का विषय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दुनिया का कोई भी सृजन क्यों न हो, उसके लिए सतत् संघर्ष, साधना और इससे भी पहले किसी का टूटना या बदलना आवश्यक हुआ है। यदि कबीर अपने तरह के समाज का सृजन चाहते हैं तो पुरानी अनुपयोगी मान्यताओं और अंधविश्वासों पर प्रहार करते हैं। यदि सृजन का महत्व है तो उसके नेपथ्य में ध्वंस का महत्व भी कम नहीं है। हमारे सोच-विचार का संवहन और संप्रेषण, अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रतिफलित होता है। यहाँ ज़रूरी यह भी है कि संवेदना का स्वरूप कैसा हो? जिस तरह तीन तरह की प्रवृत्तियां—राजसी, तामसी और सात्विक मानी गई हैं; संवेदना भी तीन तरह की होती है, मसलन—आदि कवि वाल्मीकि की संवेदना के प्रस्फुटन को लें। क्रौंच-युगल में से एक का शिकारी द्वारा वध कर दिया जाता है, उसे देखकर (ऑन द स्पॉट) जो संवेदना महाकवि वाल्मीकि की वाणी से प्रस्फुटित होती है, वही सात्विक संवेदना है। यदि कोई राजसी वृत्ति का मनुष्य होता तो उसकी चोंच या पंखों से अपने भौतिक-प्रसाधनों में वृद्धि की राजसी-संवेदना ग्रहण करता किंवा तामसी वृत्ति वाला उसके भक्षण की तामसी-संवेदना से प्रसन्न होता। तात्पर्य यह कि तीनों में सात्विक-संवेदना ही श्रेष्ठ है, जो सृजन का मूल है। इन्हीं वृत्तियों के परिवृत्त संवेदना-स्वरूप का निर्धारण होता है और उसी पर आधृत भाषा निःसृत होती है। इसीलिए संवदेना से जुड़े कुछ सवाल अनिवार्यतः भाषा के सवाल भी हैं।

भाषा के संबंध में इतना अवश्य तय होना चाहिए कि लिखा क्या जा रहा है? प्रश्न किया जाना चाहिए कि क्यों न्यूटन कविता की भाषा में अपना ग्रेविटी का सिद्धांत प्रस्तुत नहीं कर सके? या पाइथागोरस अपने प्रमेय कहानी या एकांकी की तरह क्यों नहीं समझा सकते थे? दरअसल यह प्रश्न वस्तु और भाषा के संबंधों की पृथक विवेचना की मांग करता है। साहित्य में हम किसे और किस हद तक साहित्य मानते हैं? और, यदि इसे साहित्य नहीं मानते तो क्यों? अब, यहां से विचार-क्षेत्र की बात आ जाती है जो हृदय या भाव-क्षेत्र से पृथक सत्ता है। बौद्धिक रचाव, वैज्ञानिक सिद्धियों और वैचारिक प्रपत्तियों को यदि हम साहित्य नहीं मानते, तब साहित्य में विचार का प्रवेश कैसा? यहां हमें अपनी सीमाओं का स्पष्ट निर्धारण करना आवश्यक प्रतीत होता है, जो कि इतिहास लेखकों को बहुधा असमंजस की स्थिति में डालता है। यही वजह है कि इतिहास के पुनर्लेखन में कई चीजें अप्रामाणिक, असंबद्ध और त्याज्य घोषित कर दी जाती हैं। यह सवाल लेखकीय दृष्टि से भी जुड़ा है। जहां हम विशुद्ध साहित्य की चर्चा करते हैं, वहां लेखकीय दृष्टि (यदि वह साहित्य-सृजन के मकसद से उत्पन्न है) की पारदर्शिता और दूरदर्शिता को भी निर्धारित करना होगा। इसी दृष्टि के अभाव में अनेक बार अधकचरा साहित्य भी इतिहास के पन्ने टटोलता उससे चिपक जाता है। इतिहास-लेखक के साथ-साथ आलोचना के हिस्से में भी इसकी समान जिम्मेवारी आती है।

वस्तुतः उत्तम साहित्य आलोचना का मोहताज़ नहीं होता है। बहुत दीर्घ सरणि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है ऐसे रचनाकारों की जो आलोचना द्वारा नकारे जाने के बावजूद अपनी रचनात्मक विशिष्टता के बूते पर महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हुए। इस उपेक्षा से सर्जक को जो हानि होती है, वह तो है ही, आलोचना के पूर्वाग्रह भी प्रकट हो जाते हैं। आलोचना देश-काल के अनुसार स्वतः अपने मानदंड बदलती है। इसका अंतर स्पष्टतः संस्कृत के टीका-शास्त्र और आधुनिक आलोचना-शास्त्र से साफ हो जाता है। यह प्रशंसनीय है कि आधुनिक आलोचना ने नए सिद्धांत, मापदंड और बौद्धिक सोच का विकास किया है। आलोचना भी एक तरह से सृजन का ही पर्याय है और सृजन में संवेदना की अहम् भूमिका स्पष्ट है। इस लिहाज़ से प्राचीन साहित्य के टीकाकार ज्यादा महत्वपूर्ण और विश्वसनीय लगते हैं, अपेक्षा कृत आधुनिक आलोचक के ...। कम से कम उनकी टीका का लक्ष्य किसी रचना या रचनाकार के विरुद्ध षडयंत्र (प्रायः) नहीं हुआ करता था ...। हालांकि इस तरह के गिराने वाले मंसूबों से कोई एकदम पतित नहीं हो जाता, न ही एकदम ऊंचाई को पा लेता। चिंता तो यह है कि जब आलोचक-समाज के अति जिम्मेदार ऐसा अप्रिय कर्म करते हैं, तब यह विचारणीय और चिंतनीय होता है। ... कुछ दिनों पूर्व एक दिलचस्प घटना को सार्वजनिक किया गया था साहित्यिक-पत्रिका 'साम्य-2' में—'साम्य-1' में प्रकाशित डॉ. रामवक्ष के विचारोत्तेजक निबंध पर बहस जारी की गई। डॉ. रामकृपाल पांडेय ने उसकी धज्जियां उड़ाई। दरअसल डॉ. रामबक्ष ने हिंदी प्रगतिशील आलोचना के प्रतिनिधि आलोचक के रूप में डॉ. नामवर सिंह को प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया, क्योंकि वे उनके गुरु हैं। दूसरी तरफ डॉ. रामकृपाल पांडेय, डॉ. रामविलास शर्मा की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, क्योंकि वे उनके प्रशंसक हैं। ऐसा आभास बहस से होता है। अंतर्सूत्र परस्पर गूंथे हुए हैं। भला बताइए, क्या ऐसे षडयंत्रों से डॉ. रामविलास शर्मा या डॉ. नामवरसिंह का अवदान कम हो जाता है? बात का बतंगड़ बनाते हमारे विद्वान साथी आनंद पाते हैं। न जाने कहां से तथ्य भी ढूंढ़ लाते हैं। एक उदाहरण इस 'बहस' से पर्याप्त है—''किसी समारोह में आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह उपस्थित हुए। कबीर पर दोनों की मान्यता भिन्न थी। नामवर डॉ. द्विवेदी पर कटाक्ष कर गए। आगे भी कुछ इसी तरह हुआ। उनसे नाराज होने की प्रतिक्रिया का स्वरूप यह है कि—अब मैं आपके मत को अपना मत नहीं कहूंगा; मैं आपका समर्थन नहीं करूंगा; आपको भी देख लूंगा; मुझको निरा चमचा समझ रखा है, इत्यादि।'' इस तरह गुरु-चेले के दंगल में कुछ समय तक बेचारे कबीर पिटते रहे। लेकिन बताइए, क्या इससे कबीर का अवदान कम हो गया? या आलोचना के शीर्ष स्थानीयों के वाक्-युद्ध से उत्पन्न वीभत्स-रस हाथ लगा? यदि इस पूरी बहस को गंभीरता से पढ़ा जाए तो परत-दर-परत आक्रोश खुलता जाता है और बहस मूलप्रश्न से भटककर व्यक्ति-केंद्रित हो जाती है। किसी के प्रति पूर्वाग्रह-पालित आग्रह सिद्ध होने या करने तथा स्वयं को निराकांक्ष साबित करने की ये कवायदें बिलकुल बेबुनियाद और हास्यास्पद हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस लघु क्षेपक के बाद सर्जक की बुनियादी समस्या को देखें। साहित्य और जीवन प्रतिपूरक हैं—ऐसा हमारा मानना है। जीवन का मूल्यांकन आप कौन-सी तकनीक से करते हैं? साहित्य की बुनियादी चिंता भी यही है। यदि कोई जीवन के प्रति जागरूक है, साहित्य के प्रति भी हो यह क्यों जरूरी है? आम आदमी जीवन की बारीकियों में उतरता, डूबता, निकलता है, हर क्षण को अपनी तीव्रता से महसूसता है, उसकी प्रतिक्रिया के माध्यम इतर हो सकते हैं, साहित्य हो यह जरूरी नहीं। अभिव्यक्ति हर प्राणी की अनिवार्यता है। हर आदमी के जीवन में दुःख-सुख जैसे नानाविध भाव-सागर हिलोर रहा है। लेकिन, कोई अभिव्यक्त कर देता है कोई अंतर्मुखी बन जाता है, वह आत्मघाती भी होता है। साहित्य, आत्मघाती होने से हमारी रक्षा करता है। किसी सर्जक से पूछिए—"क्यों लिखते हैं आप?" और, एक आम आदमी से पूछिए—"क्यों रोते हैं आप?" दोनों के जवाब में एक अंतर्सूत्र मिलेगा, एक साम्य झलकेगा। यदि आम कहता है—"विपदाओं में रोकर मन हल्का कर लेता हूं।" तो, यही मुक्ति होती है सर्जक की और आम आदमी की। अनुभूति जब अंतर्तम में छटपटाती है तो अभिव्यक्ति का मार्ग तलाशती है। इस तलाश में न जाने कितने ऐसे पड़ाव आते हैं, जिनसे गुजरना एक सामान्य व्यक्ति के लिए न सही, सर्जक के लिए अनिवार्य हो जाता है।

एक, दो बातें और ...। साहित्य में 'प्रगतिशीलता' और 'सौंदर्य' संबंधी अवधारणाओं की व्यापकता पर विचार आवश्यक है। प्रगतिशीलता को हम एक समय-सापेक्ष धारणा मानते हैं। प्रगतिशीलता को आधुनिकता की ही उपज कहना या मानना धोखा है। चाहे हम वैदिक ऋषियों को लें या प्राचीन-काल के कबीर को। प्रत्येक युग में प्रगतिशीलता विद्यमान रही है और रहती है, इसको पुनर्व्याख्यायित करना आवश्यक हो जाता है। इसी तरह से 'सौंदर्य' की अवधारणा देश-काल-परिवेश-सापेक्ष है। यदि भारत के सौंदर्य प्रतिमान और देशों के लिए लागू किए जाए तो सारा मामला गड़बड़ हो जाता है। हम यदि आदमी के काले रंग को असुंदर मानते हैं तो अफ्रीका के सारे लोग इस असुंदरता की परिधि में आ जाएंगे। लेकिन ऐसा होता नहीं। 'ब्लैक इज़ ब्यूटी' वहां का सौंदर्य प्रतिमान है, और बिना इसका ज्ञान हुए हम वहां के साहित्य, कला और संस्कृति की गहराई नहीं समझ सकते। तात्पर्य यह कि जहां प्रगतिशीलता समय-सापेक्ष अवधारणा है, वहीं सौंदर्य देश-काल-परिवेश-सापेक्ष अवधारणा है।

अनुभूति और अभिव्यक्ति के विस्तृत दोआब पर एक खास तरह की विचारधारा अंतर्प्रवाहित होती है, जो सर्जक का एक विज़न कायम करती है। इसमें तटस्थता को खतरा भी होता है और किसी यूटोपिया में फंसने का मोह भी। इसलिए यह मोहभंग और ऑयडियालॉजी तोड़ना भी तटस्थता की अनिवार्य मांग है। तभी वह साधारणीकृत साहित्य का रूप ले सकेगा। प्लाटीनस जब कहता है—"आँखों ने सूर्य को तब देखा, जब वे स्वयं सूर्यमई हो गईं।" तब, उसका इशारा हम समझ सकते हैं। किसी शास्त्र या विचारधारा का अनुगमन न तो रचना को तटस्थ रहने देता है न उसके प्रतिपाद्य को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ही। वहा तो अनुभूति के स्तर पर न एकान्विति संभव है न अभिव्यक्ति के स्तर पर। प्लाटीनस की ही बात को पुनः समझें—रक्ततप्त सूर्य की अभिव्यक्ति के लिए आंखों ने (ऐंद्रिय संवेदन से) चित्र खींचा-मस्तिष्क ने ग्रहण किया-स्मृति में संचित कर दिया। सर्जना के क्षणों का ताप और अनुभूति का ताप इस तरह एकसार हुआ कि इमेजरि परिपक्वता के साथ अभिव्यक्त हो गई। यह सर्जक के प्रातिभज्ञान और प्रौढ़ता के परिमाण पर भी निर्भर करता है। सर्जक का अंतःकरण तो ऐसा ज़रफ़ है कि उसके भीतर भाव-संवेदन और उनके पारस्परिक संयोजन का अनंत भण्डार सर्जना के चरमबिंदु तक संचित रहते हैं। अमूर्त भावों के लिए भावाभिव्यक्तिपरक चीजों की तलाश में सर्जक की भटकन नज़रअंदाज नहीं की जा सकती। वह साधारणीकृत हो या न हो, उतनी ही सादृश्य-भाव-पूरित होती है। इससे कई बार प्रासंगिकता के खतरे भी सर्जना को उठाने पड़ते हैं। यहां एकान्विति पर दृष्टि-केंद्रित करना चाहिए। बाकी सवाल वहां गौण हो जाते हैं। शास्त्र का अनुगमन उसी सीमा तक रचना में अंतर्मुक्त होता है, जहां तक वह सौंदर्यवृद्धि में सहायक होता है। वरना सामान्य बात, सामान्य भाषा में सामान्य के लिए अधिक प्रासंगिक और उपयोगी होती है। इससे असहमति हो सकती है परंतु इसमें दो राय नहीं कि भाषा को टेक्नीकल बनाने और आधुनिकता का मुलम्मा चढ़ाने के लिए कलावादी इसे अछूत-कर्म मानने लगे हैं।

आलोचना, साहित्य की प्रत्येक विधा के मूल्यांकन का शास्त्र है। आलोचना ने कई सोपान निर्मित किए हैं। क्या अब इसकी आवश्यकता नहीं कि 'आलोचना की आलोचना' के लिए भी शास्त्र खोज लिया जाए। आलोचना के निर्मल अभिप्राय और अप्रिय-कर्म इससे सामने आ सकेंगे और आलोचना की एक स्वस्थ पद्धति विकसित हो सकेगी। क्या ये आज के सर्जक की चिंता नहीं होनी चाहिए? □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केंद्रीय हिंदी निदेशालय और हिंदी का प्रचार-प्रसार

डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया

हिंदी भाषा की सहज-सरल प्रकृति से प्रभावित होकर मध्यकाल में ही संतों ने उसे अपनाया और अपनी वाणी से जन-जन की सुप्त चेतना को जगाने का कार्य किया था। आगे चलकर भारत छोड़ो आंदोलन, बल्कि पूरे स्वाधीनता संग्राम के दौरान हिंदी भाषा व्यापक भारतीय जनसमुदाय की आकांक्षाओं की वाहिका बनी जिसके फलस्वरूप 14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा बनाए जाने का निर्णय लिया गया। संविधान के अनुच्छेद 343 से 351 तथा 120 व 210 में भाषा नीति संबंधी विविध प्रावधान सुनिश्चित किए गए। अनुच्छेद 343 में यह प्रावधान रखा गया कि देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी संघ की राजभाषा होगी। अन्य अनुच्छेदों में राज्यों की राजभाषा, न्यायालयों की भाषा, संसद में प्रयोग की भाषा, विधान मंडल में प्रयोग आदि की भाषा संबंधी व्यवस्थाएं की गईं। अनुच्छेद 351 में हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश दिया गया जो इस प्रकार है :

> *''हिंदी भाषा की प्रसार-वृद्धि करना, उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम*

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो सके तथा उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूची में उल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः वैसी उल्लिखित भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।''

संविधान की इस भावना के अनुपालन की दिशा में 1 मार्च, 1960 को शिक्षा मंत्रालय (अब शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीनस्थ कार्यालय के रूप में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हुई। जन-जन तक हिंदी पहुंचाने और उसे वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाने के लिए निरंतर प्रयासरत एवं प्रगतिमय हिंदी की यह शीर्षस्थ सरकारी संस्था अनेक महत्वपूर्ण योजनाओं को कार्यान्वित कर रही हैः

1. कोश एवं वार्तालाप पुस्तिका योजना
2. विस्तार कार्यक्रम योजना
3. प्रकाशन योजना
4. पत्राचार पाठ्यक्रम योजना
5. हिंदीतर भाषी प्रांतों में हिंदी पुस्तकों का निःशुल्क वितरण
6. राजभाषा हिंदी के बोलचाल के स्वरूप का सर्वेक्षण
7. मानक हिंदी वर्तनी आदि अनुसंधान योजनाएं
8. प्रदर्शनी एवं बिक्री
9. सिंधी भाषा का प्रचार-प्रसार आदि।

हिंदी के विकास एवं संवर्धन की दिशा में निदेशालय द्वारा भारतीय भाषाओं के कोश और विदेशी भाषाओं युक्त हिंदी के कोश तथा वार्तालाप पुस्तिकाएं तैयार करने की योजनाएं आरंभ की गई हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची में उल्लिखित 15 (अब 18) भाषाएं लिपि और प्रांत-भेद के कारण भले ही अलग-अलग लगें किंतु उनमें समान तत्व विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति की सामासिकता, उदारता और समन्वय भावना भाषाई स्तर पर भी सिद्ध है। भारतीय भाषाओं में परस्पर मूलभूत समानता है। ये प्रधानतः संस्कृत से निःसृत भाषाएं हैं। इन भाषाओं की शब्द-संपदा इतनी समरूप व समअर्थी है कि हिंदी के अखिल भारतीय स्वरूप की दिशाएं इनसे उजागर होती हैं। निदेशालय द्वारा प्रकाशित बहुभाषा, त्रिभाषा एवं द्विभाषा कोशों के अवगाहन से स्पष्ट होता है कि भारतीय भाषाएं एक दूसरे के बहुत निकट हैं। इन कोशों में हिंदी शब्दों के भारतीय भाषाओं में निर्धारित पर्याय देवनागरी लिपि में होने के कारण भाषाई समानता को द्योतित करते हैं। भारतीय भाषाओं के अनेक शब्द हिंदी भाषा ने आत्मसात ही कर लिए हैं। इनसे हिंदी का अखिल भारतीय स्वरूप सांविधानिक अपेक्षानुसार निरंतर विकासवान है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस योजना के अंतर्गत भारतीय भाषाओं के 26 व्यावहारिक लघुकोश प्रकाशित होंगे। इनमें 13 हिंदीमूलक (जैसे, हिंदी-कश्मीरी, हिंदी-तमिल, हिंदी-पंजाबी) और 13 प्रादेशिक भाषा मूलक (जैसे, उर्दू-हिंदी, कन्नड़-हिंदी) होंगे। इसी प्रकार 12 हिंदीमूलक त्रिभाषा कोश (जैसे, हिंदी-गुजराती-अंग्रेजी, हिंदी-बंगला-अंग्रेजी) और 12 प्रादेशिक भाषामूलक त्रिभाषा कोश (जैसे, उड़िया-हिंदी-अंग्रेजी, मराठी-हिंदी-अंग्रेजी) कोश तैयार किए जा रहे हैं। त्रिभाषा कोशों में उर्दू भाषा के कोश नहीं शामिल किए गए हैं। प्रचलन/व्यवहार में न होने के कारण इन कोशों में संस्कृत भाषा को भी सम्मिलित नहीं किया गया है। इनमें से प्रत्येक द्विभाषा कोश में आम बोलचाल के लगभग 10,000 शब्द और त्रिभाषा कोश में 20,000 शब्द संकलित हैं। अब तक 13 द्विभाषा कोश और 13 त्रिभाषा कोश (प्रत्येक तीन-तीन जिल्दों में) प्रकाशित हो चुके हैं। चौदह भाषाओं का कोश 'भारतीय भाषा कोश' नाम से प्रकाशित हुआ है। दो खंडों में विभक्त इस कोश में 5,000 प्रवृष्टियां हैं। पहले खंड में वर्गीकृत शब्दावली है और दूसरे खंड में विविध अर्थच्छायाओं वाले शब्द हैं। मूल प्रविष्टियां हिंदी में हैं। तेरह भारतीय भाषाओं (देवनागरी लिपि) में उनके पर्यायि दिंए गए हैं। इस कोश में भी संस्कृत को नहीं रखा गया है। विभाग की ओर से प्रकाशित तत्सम शब्द कोश में लगभग 1600 मूल प्रविष्टियां संस्कृत शब्द (प्रतिपादिक रूप) की हैं। शेष चौदह भाषाओं के पर्याय नागरी लिपि में दिए गए हैं। इन पर्यायों में भारतीय भाषाओं के तत्संबंधी मानक रूप व संस्कृत से यत्किंचित परिवर्तित रूप भी दिए गए हैं। भारतीय भाषाओं की उपभाषाओं, बोलियों आदि का भाषावैज्ञानिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक परिचय 'भारतीय भाषा परिचय कोश' में प्रकाशित किया गया है। पर्यटकों और विद्यार्थियों के उपयोग के लिए विविध व्यावहारिक वार्तालाप पुस्तिकाएं प्रकाशित की गई हैं। लगभग 800 वाक्यों वाली अंग्रेजी-हिंदी, हिंदी-अंग्रेजी, तमिल-हिंदी, हिंदी-बंगला, हिंदी-कन्नड़, हिंदी-कश्मीरी, हिंदी-असमिया और हिंदी-तेलुगु वार्तालाप पुस्तिकाएं अब तक प्रकाशित की जा चुकी हैं। उपर्युक्त कोश एवं वार्तालाप पुस्तिकाएं देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय भाषाएं एक दूसरे के बहुत निकट हैं।

हिंदी भाषा ने अब वैश्विक स्तर पर अपना प्रभाव जमाना शुरू कर दिया है। सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी भाषा युक्त अनेक विदेशी भाषाओं के कोश और वार्तालाप पुस्तिकाएं विभाग द्वारा तैयार की जा रही हैं। सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम संबंधी समझौते भारत एवं विदेशी सरकारों के बीच होते रहते हैं। ऐसे समझौतों के अंतर्गत निदेशालय द्वारा अनेक विदेशी भाषाओं युक्त हिंदी के कोशों और वार्तालाप पुस्तिकाओं के निर्माण का कार्य लिया गया है :

(क) जर्मन-हिंदी तथा हिंदी-जर्मन कोश

(ख) चेक-हिंदी तथा हिंदी-चेक कोश

(ग) हिंदी-चेक वार्तालाप पुस्तिका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(घ) हिंदी-चेक व्याकरण
(ड़) हिंदी-हंगेरी तथा हंगेरी-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका
(च) रूसी-हिंदी तथा हिंदी-रूसी वार्तालाप पुस्तिका
(छ) हिंदी-फ्रांसीसी तथा फ्रांसीसी-हिंदी वार्तालाप पुस्तिका

इनमें से जर्मन-हिंदी कोश (भाग 1 व 2) तथा चेक-हिंदी कोश प्रकाशित हो चुके हैं। पड़ोसी देशों की भाषाओं यथा इंडोनेशियाई, सिंहली आदि और हिंदी को लेकर भी अनेक कोश निर्माणाधीन हैं। अंतर्राष्ट्रीय फलक पर हिंदी भाषा के निरंतर बढ़ते प्रभाव, विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन देना और विश्व के अनेक देशों में हिंदी भाषा और साहित्य के पठन-पाठन को आरंभ करना आदि ऐसे कारण हैं जो हिंदी भाषा की लोकप्रियता सिद्ध करते हैं। अब हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य भाषाओं में अपना स्थान बनाने के लिए प्रयत्नरत है। निदेशालय ने हिंदी भाषा युक्त संयुक्त राष्ट्र संघ भाषा कोश भी प्रकाशित किए हैं।

जबकि संचार माध्यमों ने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की संकल्पना को विश्व के सम्मुख साकार कर दिया है, हिंदी की सहजता-सरलता और वैज्ञानिकता को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अंतर्गत अधिकाधिक कोश, वार्तालाप पुस्तिकाएं प्रकाशित होनी चाहिएं।

विस्तार कार्यक्रम योजनाएं हिंदीतर भाषी प्रांतों में हिंदी के विस्तार यानी प्रचार-प्रसार से संबंधित हैं। हिंदीतर भाषी हिंदी-प्रेमियों, विद्वानों, लेखकों, शोधार्थियों, विद्यार्थियों, प्राध्यापकों और अनुवादकों को सहयोजित करने वाली ये योजनाएं अखिल भारतीय स्तर पर विविध भाषा भाषियों को एक दूसरे के निकट लाती हैं। इन योजनाओं से विविध भाषाभाषियों को हिंदी का एक मंच उपलब्ध होता है जहां हिंदी भाषा के माध्यम से भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य के संबंध में अधुनातन जानकारी ही नहीं मिलती अपितु परस्पर विचार-विमर्श और संवाद के जरिए एक दूसरे को जानने-समझने में मदद मिलती है, एक दूसरे के रीति-रिवाजों तथा लोकचेतना का ज्ञान होता है। इन योजनाओं से भाषाई मूलभूत एकता और भारतीय संस्कृति के समान तत्वों के दिग्दर्शन होते हैं। हिंदी के अखिल भारतीय स्वरूप की व्यावहारिक जानकारी देने वाले विस्तार कार्यक्रमों में अनेक योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं।

(क) हिंदीतर भाषी हिंदी विद्यार्थियों की अध्ययन यात्राएं
(ख) हिंदीतर भाषी हिंदी नवलेखक शिविर
(ग) प्राध्यापक व्याख्यान यात्राएं
(घ) संगोष्ठी
(ड.) हिंदीतर भाषी लेखकों द्वारा हिंदी में पुस्तकें लिखने पर पुरस्कार
(छ) स्वैच्छिक हिंदी सेवी संस्थाओं को अनुदान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिंदीतर भाषी प्रांतों में स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रतिवर्ष दो अध्ययन यात्राओं का आयोजन किया जाता है। प्रत्येक अध्ययन यात्रा में पचास-पचास विद्यार्थियों को तीन-तीन हिंदी भाषी प्रांतों के विश्वविद्यालयों, स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं में ले जाया जाता है। हिंदी के प्रख्यात विद्वानों, साहित्यकारों, हिंदी-सेवियों से उनकी भेंट कराई जाती है। यथासंभव ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व के स्थलों का भ्रमण भी कराया जाता है। इस योजना के माध्यम से विद्यार्थियों को हिंदी के व्यावहारिक रूप को समझने में बहुत मदद मिलती है, उच्चारण अंतर का पता भी चलता है। हिंदी भाषा व साहित्य के विविध पक्षों की प्रत्यक्ष और अधुनातन जानकारी इस योजना से मिलती है। विविध प्रांतों से आए विद्यार्थी नौ-दस-दिन तक एक साथ रहते हैं। हिंदी भाषा के माध्यम से परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। इस प्रकार भारतीय युवा मानस हिंदी के मंच से अपनी एकता-यात्रा आरंभ करता है। तीन हिंदी भाषी प्रांतों में से तीसरा प्रांत दिल्ली होता है जहां पहुंचकर यह अध्ययन यात्रा संपन्न होती है। दिल्ली में प्रतिभागी विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र एवं अन्य उपयोगी पठनीय सामग्री भेंट की जाती है। विद्यार्थी यात्रा संबंधी अपने संस्मरण सुनाते हैं, सुझाव देते हैं। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक विद्यार्थी को द्वितीय श्रेणी का रेल किराया और दैनिक भत्ता भी दिया जाता है। अब तक निदेशालय द्वारा 48 अध्ययन यात्राएं आयोजित की जा चुकी हैं।

हिंदीतर भाषी हिंदी नवलेखकों को कहानी, कविता, एकांकी, लेख व साहित्य की अन्य विधाओं, अनुवाद, पत्रकारिता आदि की विस्तृत और अधुनातन जानकारी देने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष पच्चीस-पच्चीस नवलेखकों के आठ शिविर आयोजित किए जाते हैं। हिंदीतर भाषी प्रांतों में आठ दिनों तक चलने वाले इन शिविरों में नवलेखकों को मार्गदर्शन दिलाने के लिए चार स्थापित साहित्यकारों/विद्वानों/संपादक आदि को भी आमंत्रित किया जाता है। शिविरों में नवलेखकों द्वारा लिखी गई रचनाओं पर चर्चा होती है, उनमें संशोधन किया जाता है, विधा विशेष की अद्यतन प्रवृतियों के बारे में जानकारी दी जाती है। नवलेखकों की सर्जनात्मक और समालोचनात्मक प्रतिभा को दिशा देने का प्रयास किया जाता है। स्थानीय लेखकों और विद्वानों से उनकी भेंट कराई जाती है। प्रांतीय भाषा, साहित्य और संस्कृति का परिचय भी नवलेखकों को मिलता है। विविध भाषा भाषी नव लेखक इस हिंदी मंच पर आठ दिनों तक लघु भारत के रूप में अपनी अविस्मरणीय छाप छोड़ते हैं। भारतीय नवलेखक की सोच और लेखन को इस योजना के माध्यम से सकारात्मक दिशा मिलती है। इन शिविरों के आयोजन में स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं, महाविद्यालयों आदि की सहायता ली जाती है। नव लेखकों को शिविर के समापन समारोह में तत्संबंधी प्रमाण-पत्र दिया जाता है। इस योजना के अंतर्गत नव लेखकों को द्वितीय श्रेणी का रेल किराया और दैनिक भत्ता दिया जाता है। मार्गदर्शक साहित्यकारों को प्रथम श्रेणी के अधिकारियों को दिया जाने वाला रेल किराया, दैनिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भत्ता तथा प्रतिदिन के हिसाब से 50/- रुपए मानदेय दिए जाने का प्रावधान है। इन शिविरों में आने वाले अनेक नवलेखक समकालीन साहित्यिक परदृश्य में निरंतर अपनी पहचान बना रहे हैं। निदेशालय द्वारा अब तक 138 शिविरों का आयोजन किया जा चुका है।

हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर व्याख्यान देने के लिए प्रतिवर्ष चार प्राध्यापक हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों से और चार प्राध्यापक हिंदी भाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों से क्रमशः हिंदी भाषी और हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के तीन-तीन विश्वविद्यालयों में जाते हैं जहां वे स्थानीय प्राध्यापकों और विद्यार्थियों से परस्पर विचार-विमर्श भी करते हैं। हिंदी मंच से किया गया यह वैचारिक आदान-प्रदान भारत के हिंदी प्राध्यापकों, विद्यार्थियों व हिंदी-प्रेमियों को बौद्धिक एवं भावनात्मक दोनों स्तरों पर जोड़ता है। प्राध्यापक को तीन विश्वविद्यालयों में तीन-तीन व्याख्यान देने होते हैं। इस योजना में प्राध्यापकों को प्रथम श्रेणी के अधिकारियों को दिया जाने वाला रेल किराया, दैनिक भत्ता और प्रत्येक व्याख्यान के लिए 50/- रुपए मानदेय दिया जाता है। निदेशालय द्वारा अब तक 169 व्याख्यान यात्राएं आयोजित की जा चुकी हैं।

भारतीय साहित्य की विविध विधाओं और तुलनात्मक भारतीय साहित्य के संबंध में प्रतिवर्ष दो संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। प्रत्येक संगोष्ठी में चार हिंदीभाषी तथा चार हिंदीतर भाषी वरिष्ठ प्राध्यापक, साहित्यकार, विद्वान आदि विस्तृत विचार-विमर्श करते हैं, अपने आलेख पढ़ते हैं। यह योजना भारतीय साहित्य की समान एवं मूलभूत मानसिकता को उजागर करती है। भारतीय साहित्य की विविध विधाएं वास्तव में भारतीय मानसिकता को, भारतीय लोक चेतना को हिंदी भाषा के माध्यम से जानने का एक सशक्त उपक्रम हैं। भारतीय साहित्य के समान तत्व, हिंदी भाषा में भारतीय साहित्य की उपलब्धता और हिंदी साहित्य का भारतीय भाषाओं में अनुवाद आदि इस योजना के माध्यम से पता चलता है। प्राध्यापकों, साहित्यकारों, विद्वानों आदि को प्रथम श्रेणी के अधिकारियों को मिलने वाला रेल किराया, दैनिक भत्ता और प्रत्येक व्याख्यान के लिए 50/- रुपए मानदेय दिए जाने का प्रावधान है। निदेशालय द्वारा अब तक 20 संगोष्ठियों का आयोजन किया जा चुका है।

हिंदी भाषा में लेखन-प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के उद्देश्य से हिंदीतर लेखकों द्वारा हिंदी में पुस्तकें लिखने पर प्रतिवर्ष सोलह पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। शुरू में पुरस्कार राशि 2500-2500/- रु. थी जो बढ़ते-बढ़ते 15,000/- रुपए तक पहुंच गई है। प्रत्येक पुरस्कृत रचनाकार को रु. 15000/- के अतिरिक्त एक शाल, प्रतीक चिह्न तथा प्रमाण पत्र प्रदान किया जाता है। भारत की राजधानी में सम्मान पाने वाले ये लेखक स्वयं तो गौरवान्वित होते ही हैं, हिंदी भाषा को भी गौरवान्वित करते हैं। लेखकों को राजधानी आने-जाने का प्रथम श्रेणी अधिकारियों को दिया जाने वाला रेल किराया व दैनिक भत्ता दिया जाता है। निदेशालय द्वारा अब तक 356 लेखकों को पुरस्कृत किया जा चुका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। इनमें से अधिसंख्य लेखकों ने साहित्यिक बुलंदियों को छुआ है।

हिंदीतर भाषी प्रांतों के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा एवं साहित्य के संबंध में शोध रत बीस हिंदीतर भाषी शोधार्थियों को प्रतिवर्ष हिंदी भाषी प्रांतों में शोध संबंधी सामग्री जुटाने तथा विचार-विमर्श हेतु जाने के लिए यात्रा अनुदान दिया जाता है। हिंदीतर भाषी प्रांतों में हिंदी भाषा एवं साहित्य संबंधी सामग्री का अभाव हो सकता है, साथ ही हिंदी भाषी प्रांतों में रह रहे साहित्यकारों/विद्वानों से शोधार्थी साक्षात्कार भी कर सकता है। इस योजना से शोध के व्यावहारिक पक्ष को भी बल मिलता है। अब तक विभाग द्वारा 385 यात्रा अनुदान दिए जा चुके हैं।

स्वैच्छिक हिंदी सेवी संस्थाओं के सहयोग से हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में तेजी लाई जा सकती है। इन संस्थाओं के मार्गदर्शन व इन्हें अनुदान दिलाए जाने की सिफारिश करने का दायित्व निदेशालय का है। निदेशालय के चार क्षेत्रीय कार्यालय मद्रास, हैदराबाद, गुवाहाटी और कलकत्ता में हैं। ये कार्यालय इन संस्थाओं का निरीक्षण-कार्य तथा इनके द्वारा संचालित परीक्षाओं आदि में होने वाली अनियमितताओं की जांच भी करते हैं। मद्रास क्षेत्रीय कार्यालय के अंतर्गत तमिलनाडु, केरल और पांडीचेरी क्षेत्र, हैदराबाद के अंतर्गत आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा, दमन और दियु द्वीप क्षेत्र, गुवाहाटी के अंतर्गत असम, त्रिपुरा, मिजोरम, मणिपुर, नागालैंड, अरुणाचल प्रदेश तथा मेघालय क्षेत्र, कलकत्ता के अंतर्गत पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, सिक्किम, अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह क्षेत्र और शेष क्षेत्र मुख्यालय के अंतर्गत आते हैं।

विभागीय प्रकाशन योजनाओं में द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा', वार्षिकी, साहित्यमाला और मासिक पत्रिका 'यूनेस्को दूत' हैं। द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' निम्नलिखित तीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रकाशित की जाती है :

(क) शिक्षा, कला, विज्ञान, अनुसंधान, कानून और शासन आदि के लिए अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण कर हिंदी को समृद्ध करना,

(ख) हिंदी को सब प्रकार की अभिव्यक्ति का सशक्त और प्रभावशाली साधन बनाने के उद्देश्य से उसकी प्रकृति के अनुकूल प्रादेशिक भाषाओं का सहयोग लेना,

(ग) समस्त भारतीय भाषाओं के बीच समानता की खोज करना और आदान-प्रदान का द्वार मुक्त करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु भारतीय हिंदी लेखकों, हिंदीतरभाषी लेखकों की अनूदित (देवनागरी लिपि में) रचनाओं के साथ-साथ भाषा विज्ञान, व्याकरण, तुलनात्मक भारतीय साहित्य तथा साहित्य संबंधी वैचारिक निबंध आदि प्रकाशित किए जाते हैं। भारतीय भाषाओं के बीच सेतु बनी यह पत्रिका पहले त्रैमासिक रूप में प्रकाशित होती थी। सामान्य अंकों के अलावा इसके अनेक चर्चित विशेषांक भी प्रकाशित हुए हैं। पत्रिका का वार्षिक चंदा मात्र 30/- रुपए है। इसका सदस्य बनने के इच्छुक व्यक्ति नियंत्रक,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली-110054 के पास सदस्यता शुल्क भेज सकते हैं। निदेशालय में सदस्यता शुल्क नहीं भेजा जाना चाहिए क्योंकि भाषा की बिक्री यहां से नहीं होती है। अगस्त 1961 से 'भाषा' पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है।

'वार्षिकी' नामक योजना में सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य की वर्षभर (एक वर्ष) की रचनाओं/पुस्तकों पर सर्वेक्षण लेख तो दिए ही जाते हैं, साथ ही सभी भाषाओं की दो-दो कहानियों-कविताओं का हिंदी-अनुवाद भी प्रकाशित किया जाता है। सर्वेक्षण लेख में सभी विधाओं का सर्वेक्षण होता है और वर्ष में प्रकाशित श्रेष्ठ कहानियों-कविताओं का अनुवाद प्रकाशित किया जाता है। तुलनात्मक भारतीय साहित्य में रुचि रखने वाले साहित्य-प्रेमियों के लिए वार्षिकी का प्रकाशन उपादेय है। अब वार्षिकी में केवल सर्वेक्षण लेख प्रकाशित किए जाने की योज़ना है। सन् 1970 से वार्षिकी का नियमित प्रकाशन हो रहा है।

भारतीय भाषाओं और साहित्य के प्रति पाठकों की अभिरुचि जगाने तथा भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता को उजागर करने के लिए निदेशालय में साहित्यमाला योजना कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के अंतर्गत अब तक प्रकाशित ग्रंथों की सूची इस प्रकार है :

(क) भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, (ख) भारतीय कविता, (ग) भारतीय कविता में राष्ट्रीय चेतना, (घ) भारतीय निबंध, (ङ) भारतीय कहानी, (च) भारतीय एकांकी, (छ) भारतीय उपन्यास, (ज) भारतीय नाटक एवं रंगमंच, (झ) इंदिराजी का हिंदी प्रेम, (ञ) जयशंकर प्रसादः सृजन के विविध आयाम (ट) साहित्यकार विवरणिका।

भारतीय साहित्य की विविध विधाओं पर आधारित ग्रंथों में आधिकारिक विद्वानों, समीक्षकों से सर्वेक्षण लेख तैयार कराए जाते हैं। अनेक ग्रंथों में प्रख्यात भारतीय साहित्यकारों के साथ-साथ समकालीन प्रतिभाशाली साहित्यकारों की रचनाओं का अनुवाद प्रकाशित किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ शिक्षा, विज्ञान तथा संस्कृति संस्था—यूनेस्को द्वारा प्रतिमास प्रकाशित पत्रिका यूनेस्को कूरियर विश्व की 33 भाषाओं में प्रकाशित होती है। विश्व-दर्शन की इस पत्रिका का हिंदी संस्करण निदेशालय द्वारा प्रकाशित किया जाता है। ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्र, कला, साहित्य एवं संस्कृति आदि विषयों पर खोजपूर्ण एवं मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत करने वाली इस पत्रिका का वार्षिक शुल्क 40/- रुपए है।

हिंदीतर भाषी भारतीयों और विदेशियों के लिए पत्राचार द्वारा हिंदी सिखाने की योजना के अंतर्गत निदेशालय अंग्रेजी, तमिल, मलयालम और बंगला माध्यमों से एक-एक वर्षीय 'हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स' तथा 'हिंदी डिप्लोमा कोर्स' चलाता है। पहले इन्हें क्रमशः 'हिंदी प्रवेश' और 'हिंदी परिचय' पाठ्यक्रम कहा जाता था। व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रम द्वारा वर्ष में एक बार विद्यार्थियों की कठिनाइयों का समाधान भी किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाता है। अब तक 2 लाख से भी अधिक विद्यार्थी इन पाठ्यक्रमों को पूरा कर चुके हैं। 'हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स' का उद्देश्य छात्रों को हिंदी का व्यावहारिक ज्ञान कराना है। इसके लिए 15 वर्ष से अधिक आयु के हिंदीतर भाषी, जिन्हें शिक्षण-माध्यम का अपेक्षित ज्ञान हो, प्रवेश के पात्र हैं। विदेश स्थित भारतीय नागरिकों/प्रवासियों के बच्चों के लिए न्यूनतम आयु सीमा 10 वर्ष है। उनकी मातृभाषा कोई भी हो सकती है। 'हिंदी डिप्लोमा कोर्स' का उद्देश्य छात्रों को हिंदी का उन्नत ज्ञान कराना है। इसमें 'हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स' परीक्षा या गृह मंत्रालय की प्रवीण परीक्षा उत्तीर्ण या हिंदी का समुचित ज्ञान रखने वाला व्यक्ति प्रवेश का पात्र है। दोनों पाठ्यक्रम प्रति वर्ष जुलाई से अप्रैल तक चलते हैं। प्रत्येक का शुल्क भारत में रहने वालों के लिए 50/- रुपए, विदेशों में रहने वालों के लिए अमरीकी डालर 50.00 या पौंड 30.00 भारत में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के नाम रेखांकित भारतीय पोस्टल आर्डर/बैंक ड्राफ्ट (ब्रिटिश पोस्टल आर्डर/अंतर्राष्ट्रीय मनी आर्डर जिसकी आदायगी भारत में नई दिल्ली स्थित किसी भी प्राधिकृत बैंक/डाकघर में हो सके, रजिस्ट्री डाक से भेजना चाहिए।

हिंदी शिक्षण योजना के प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ पाठ्यक्रम भी पत्राचार (अंग्रेजी) माध्यम से चलाए जाते हैं। ये तीनों पाठ्यक्रम 1 जनवरी से प्रारंभ होते हैं। प्रत्येक का प्रवेश व शिक्षण शुल्क 50.00 रुपए तथा परीक्षा शुल्क क्रमशः 40/- 40/- और 50/- रुपया है।

पूर्वांचल प्रदेशों के आई.ए.एस. परीक्षा में 'भारतीय भाषा प्रश्न पत्र' के रूप में हिंदी लेने वाले उन छात्रों के लिए जिनकी मातृभाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं है को अंग्रेजी माध्यम से निःशुक्ल अक्तूबर से सितंबर तक 'हिंदी सिविल सेवा पाठ्यक्रम' सिखाया जाता है।

हिंदी सीखने वालों के लिए अनेक वार्तालाप पुस्तिकाएं, स्वयं शिक्षक, विविध भारतीय भाषाओं व अंग्रेजी के व्याख्यान सहित कैसेटें, बेसिक ग्रामर, शब्द कोश आदि तैयार कराए जाते गए हैं जो बिक्री के लिए उपलब्ध हैं।

हिंदीतर भाषी प्रांतों में हिंदी की अधुनातन प्रवृत्तियां, प्रगति और साहित्य उपलब्ध हो, हिंदी-प्रेमी को अपने ही प्रांत में श्रेष्ठ समकालीन भाषाई एवं साहित्यिक कृतियां मिल सकें और इनके प्रति लोगों की रुचि और बढ़े, इस उद्देश्य से निदेशालय प्रतिवर्ष हिंदी पुस्तकों/पत्रिकाओं की खरीद करता है और हिंदीतरभाषी प्रांतों में निःशुल्क वितरित करता है। अधिकाधिक लोग इनका लाभ ले सकें इसलिए इनका वितरण सार्वजनिक पुस्तकालयों, केंद्रीय विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों तथा स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं में किया जाता है। इस प्रकार नवीनतम सृजनात्मक व चिंतन-विश्लेषणपरक साहित्य का निःशुल्क वितरण भारतीय जनमानस को हिंदी से जोड़े रखता है। इस योजना के अंतर्गत अब तक स्वदेश में 12,38,572 तथा विदेश में 3,24,491 पुस्तकों का निःशुल्क वितरण किया जा चुका है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'राजभाषा हिंदी की बोलचाल के स्वरूप का सर्वेक्षण' नामक योजना का उद्देश्य राजभाषा हिंदी के बोलचाल के मानक रूप का पता लगाकर उसकी शब्दावली और वाक्य-विन्यास को मानकीकृत करना है। इससे सरकारी कार्मिकों व जन सामान्य के बीच राजभाषा हिंदी में वार्तालाप सुगम हो सकेगा। यह सर्वेक्षण सात संदर्भों (कृषि, पुलिस, विधि, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशासन तथा डाक तार/बैंक आदि) और चार (केंद्र, राज्य, जिला व स्थानीय) स्तरों पर किया जा रहा है। पहले चरण के रूप में हिंदीभाषी क्षेत्रों का सर्वेक्षण कार्य पूरा किया जा चुका है। इस कार्य का विश्लेषण प्रक्रिया में है। हिंदीतर भाषी प्रांतों में सर्वेक्षण के लिए कुछ ही केंद्र शेष बचे हैं।

देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी के मानकीकरण का दायित्व भी निदेशालय के पास है। संघ सरकार व हिंदी भाषी प्रांतों में हिंदी राजभाषा स्वीकृत हो चुकी है, यांत्रिक उपकरणों में इसकी एकरुपता बनाए रखने तथा हिंदी सीखने वालों के लिए इसकी लिपि एवं वर्तनी का मानकीकरण आवश्यक है। विशेषज्ञों की एक समिति से प्राप्त सुझावों के आधार पर विभाग ने 'मानक हिंदी वर्तनी' नामक पैम्फलेट निःशुल्क वितरण हेतु प्रकाशित किया है जिसमें मानक हिंदी वर्णमाला व अंक, मानक हिंदी वर्तनी, हिंदी के संख्यावाचक शब्दों की एकरुपता, परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला (भारतीय भाषाओं को देवनागरी में लिखने के लिए) तथा हिंदी वर्णमाला लेखन-विधि का प्रकाशन किया गया है।

विभागीय प्रकाशन हिंदी और हिंदीतर भाषी प्रांतों में उपलब्ध हो सके, उन्हें प्रचार मिले इस उद्देश्य से विभाग की ओर से समय-समय पर प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता है, विविध पुस्तक मेलों में ये प्रकाशन बिक्री के लिए उपलब्ध कराए जाते हैं।

निदेशालय सिंधी भाषा के प्रचार-प्रसार से भी जुड़ा है। सिंधी लेखकों-प्रकाशनों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सिंधी पुस्तकों की खरीद, कार्यशाला व संगोष्ठी-आयोजन तथा उत्कृष्ट लेखन को पुरस्कार देना इस योजना में शामिल है। इसके अतिरिक्त शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की ओर से हिंदी में मौलिक रूप से लिखी गई शिक्षा विषयक पुस्तकों पर पच्चीस-पच्चीस हजार के चार पुरस्कारों की उद्घोषणा की गई है। शिक्षा पुरस्कार देने का सचिवालयीय कार्य, उच्चस्तरीय हिंदी शिक्षा समिति का सचिवालयीय कार्य तथा लेखकों/प्रकाशकों को हिंदी पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए दिए जाने वाले अनुदान हेतु प्राप्त पांडुलिपियों पर सिफारिशें देने का कार्य भी निदेशालय करता है।

इस प्रकार, सांविधानिक अपेक्षाओं के अनुसार केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास के लिए सतत् प्रयत्नशील है। इसकी योजनाएं हिंदी व हिंदीतर भाषियों के लिए समान रूप से उपादेय हैं। विद्यार्थी, शोधार्थी, प्राध्यापक, लेखक, नवलेखक, विद्वान, प्रचारक आदि अनेक स्तरों पर हिंदी-प्रेमी इन योजनाओं से लाभान्वित होते रहते हैं। जन-जन तक हिंदी पहुंचाना, हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति उनमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिरुचियों का विकास करना, साहित्यिक प्रतिभाओं को प्रोत्साहन-पुरस्कार देना, भारतीय साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियों एवं सर्जनात्मक साहित्य को हिंदी में उपलब्ध कराना, भारतीय जनमानस को परस्पर विचार-विमर्श हेतु हिंदी का अखिल भारतीय मंच प्रदान करना तथा सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी को वैश्विक प्रतिष्ठा दिलाने के उपाय करना, उसे सब प्रकार की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने जैसे अन्यान्य चुनौती पूर्ण कार्य अनेक सीमाओं और अभावों के बावजूद केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा संपन्न किए जा रहे हैं। □

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यदि हम अंग्रेजी के आदी नहीं हो गए तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा का माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कटकर दूर हो गयी है। हम अपनी जनता से अलग हो गए हैं, हमारी जाति के सर्वश्रेष्ठ दिमागों का विकास रुक गया है और जो विचार हमें अंग्रेजी माध्यम से मिले उन्हें हम जनता में फैलाने में नाकामयाब रहे हैं। पिछले साठ वर्षों में हमने विचित्र-विचित्र शब्दों को केवल रखना सीखा है, तथ्यपूर्ण ज्ञान पचाने के बदले हमने शब्दों का उच्चारण मात्र सीखा है। इस दुर्गति की मिसाल सारी दुनिया के इतिहास में नहीं है।

—महात्मा गांधी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुस्तकें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विश्व हिंदी : आस्था और अस्मिता

डॉ. रणजीत साहा

प्रस्तुत ग्रंथ में कुल 36 हिंदी सेवियों के व्याज संस्तुति एवं अनुकीर्तन के बहाने हिंदी-जगत को समृद्ध बनाने में विश्व हिंदी मनीषा के योगदान की परिक्रमा का सफल एवं सार्थक प्रयास किया गया है। कुल मिलाकर, प्रस्तुत कृति में हिंदी की विश्व में गरिमापूर्ण स्थिति एवं उपस्थिति की जो मनोरम तस्वीर खींची गई है—वह आम भारतीय के हर्ष और गर्व को इस सीमा तक आश्वस्त करती है कि क्या विश्व दृष्टि में सचमुच हिंदी को इस सम्मान के योग्य समझा गया है। लेखक के इस कथन पर भी विश्वास करने को जी करता है कि "हिंदी आज विश्व भर में बोली जाती है। विश्व के किसी देश का शायद ही ऐसा कोई राष्ट्रीय विद्यालय हो, जहाँ हिंदी का अध्ययन-अध्यापन न हो रहा हो।" (पृ. 10) वैसे कभी-कभी यह आशंका भी सताने लगती है कि इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, जो कहा या बताथा गया है, ईश्वर करे वह, सच ही हो। तथ्यों के आकलन और संयोजन में पुस्तक लेखक डॉ. भक्तराम शर्मा ने सचमुच बहुत मेहनत की है। विश्व भारती हिंदी के प्रति उनकी प्रायोजनपूर्ण निष्ठा एवं भक्तिपूर्वक संपन्न किया गया प्रस्तुत कार्य ज्ञान और कर्म से संवलित और समृद्ध है। भारतीय जन गण मन की भाषा के प्रति विदेशी विद्वानों के योगदान का यह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विद्वतपूर्ण आकलन एवं मूल्यांकन सचमुच स्पृहणीय है।

इस पुस्तक में जिन देशों के 36 यशस्वी हिंदी भगीरथ सम्मिलित हैं—वे हैं :—

रूस (अलेक्सेई पेत्रोविच बरान्निकोव, अलेक्सान्द्र सेन्केविच, येवगेनी पेत्रोविच चेलीशेव), चेक (ओदोलेन स्मेकल) इंग्लैंड (रोनाल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर), जर्मनी (लोठार लुत्से, मार्गोत गात्सलाफ हेलजिग) बेल्जियम (निकोलाय ज्बेर्या, कामिल बुल्के, डब्ल्यू एम कलेवर्ट), पोलैंड (मरिया क्षेष्टोफ वृस्की), डेनमार्क (फिन थीसन), फिनलैंड (बैर्तिल तिक्कनेन), इटली (स्तेफनो पियानो) नीदरलैंड (तेयो दमिस्तेख्त) फ्रांस (निकोल बलवीर), हंगरी (मारिया नैज्यशी), बल्गारिया (कोल्यो कोवाचेव); अमेरिका (केरीन शोमर, कैथरिन जी हैन्सन, माइकेल पी. शपीरो, लिंडा हेस, हेर्मान बान ओल्फन), श्रीलंका (इन्द्रा दस्सनायके), थाइलैंड (करुणा कुशलासय) जापान (क्यूया दोई, तोमिओ मिजोकामि), चीन (ल्यू को नान, ली जंग हो), नेपाल (सूर्यनाथ गोप), बर्मा (हरिवदन शर्मा); मारीशस (सोमदत्त बखोरी, प्रहलाद रामशरण), दक्षिण अफ्रीका (स्वामी भवानीदयाल संन्यासी), फीजी (कमला प्रसाद मिश्र) और आस्ट्रेलिया (रिचर्ड के. बार्ज)

एक अरसे से हिंदी को राष्ट्रभाषा और भारत भारती की संज्ञा देते हुए सिंहासन पर बिठाकर पिछली दो-तीन पीढ़ियां भावनात्मक तौर पर आश्वस्त होती रही हैं। लेकिन व्यावहारिक तौर पर यह अब भी संभव नहीं हो पाया है। जहां तक इसके सम्यक् मूल्यांकन की बात है, पिछली दो शताब्दियों में भारत के प्रति पाश्चात्य भारतविदों के दृष्टिकोण को मौटे तौर पर तीन चरणों में विभाजित कर देखा जा सकता है। यहां इस तथ्य का उल्लेख करना या दोहराना अनावश्यक होगा जो भारत को साधु-संतों, सांप-सपेरों, तंत्र-मंत्र, आगजनी, महामारियों और भुक्खड़ों का देश मानते रहे हैं और इसकी आध्यात्मिकता को चमत्कार के प्रति नतमस्तक होने के सिवा और कुछ नहीं मानते। प्रथम चरण या कोटि के अनुसार बुद्धिजीवियों के संपर्क तथा भारत में अंग्रेजों द्वारा संस्थागत तथा अकादमिक शिक्षण प्रणाली के आरंभ के साथ ही, उन्नीसवीं सदी मध्य से भारत विद्या में रुचि के रखवाले भारत-विद्या विशारद एवं विद्वान क्लासिकी, ओरियंटल और प्राच्यविद्या के अंतर्गत कई सारस्वत कार्य संपन्न हुए। इस शताब्दी में ग्रियर्सन, केलॉग प्लैटस, एथरिन आदि विद्वानों के योगदान को हम कृतज्ञ हिंदुस्तानी कभी नहीं भुला सकते। वैसे लेखक ने अपने मुखबंध में अपना यह संकल्प दोहराया है कि प्रस्तुत ग्रंथ में उन्हीं विद्वानों का विशेष परिचय दिया जा रहा है जिनका संबंध मुख्यतः पिछले पांच दशकों से रहा है। इस उपक्रम के द्वारा लेखक ने अपने ग्रंथ की सीमाओं को पहले ही निर्धारित कर लिया है—ताकि इस तरह के प्रयोजन के मूल में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सत्ता, संस्था और सरकार से जुड़े ऐसे प्रभारियों का उल्लेख करना आसान हो जाय—जो हिंदी सेवा के साथ-साथ उच्चपदस्थ पदाधिकारी भी हैं। इस तैयारी के साथ जब कोई पुस्तक तैयार की जाती है तो ऐसे किसी प्रभारी या पदाधिकारी को अनावश्यक महिमा से मंडित करना अधिक आसान हो जाता है और जिसका शिकार इस तरह की कृतियां अक्सर हो जाती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में ऐसा नहीं है, यह विशेष प्रसन्नता की बात है। ऐसा नहीं है कि लेखक ने हिंदी के सेवकों एवं सहयोगियों का चयन अपनी कसौटियों पर नहीं किया है—और उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में आर्य समाज के वैदिक धर्म प्रचार तथा समाज सुधार के साथ हिंदी के प्रचार-प्रसार को भी एक नया प्रस्थान मिला।

इस क्रम में लेखक के दूसरे दृष्टिकोण या चयन-कसौटी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है—जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय भावधारा के प्रवक्ताओं, समाज सुधारकों एवं धर्म सुधारकों ने हिंदी के प्रचार कार्य को निहित संगठन के कार्यक्रम का अनिवार्य अंग या अनुषंग बनाकर इसकी सेवा की। इसमें देश के बाहर आर्य समाजी संगठनों एवं संस्थाओं से जुड़े ऐसे कई कार्यकर्ता और धर्म सुधारक कार्यरत रहे—जिनके लिए हिंदी प्रसार-प्रचार न केवल अनिवार्यता थी बल्कि बाध्यता थी—क्योंकि वे जहां-जहां गए, वहां पहले से विद्यमान भारतीय मूल के लोग हिंदी के सिवा और किसी दूसरी संपर्क भाषा से परिचित न थे। ऐसे विद्वानों में स्वामी भवानी दयाल सन्यासी (जोहांसबर्ग, अमेरिका) कमला प्रसाद मिश्र (फीजी) और हरिवदन शर्मा (बर्मा) के नाम आसानी से लिए जा सकते हैं। इसी कोटि के दूसरे प्रचारकों में भारतीय कांग्रेस से जुड़े कार्यकर्ता भी थे, जो देश के अंदर राष्ट्रीयता और स्वदेशी के आंदोलन और कार्यक्रम से जुड़े थे। देश को एक सूत्र में बांधनेवाली और राष्ट्रीय एकता को स्वर देने वाली, बहुसंख्यक जनता की समझ में आने वाली, राष्ट्रीय सोच और सरोकार को मुखर करने वाली हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान मिले, इस दृष्टि से उन्होंने कई संस्थाओं का निर्माण किया और इसके अनन्य समर्थकों में कई राष्ट्रीय नेताओं ने अपना जीवन लगा दिया। चूंकि यह पुस्तक भारतीय हिंदी के उन भगीरथों के योगदान पर नहीं लिखी गई—इसलिए इस प्रसंग को बढ़ाने का यहां कोई औचित्य नहीं है।

तीसरी कोटि में जिन विश्व-हिंदी वरदपुत्रों का इस पुस्तक में प्रयोजन एवं प्रायोजन के अनुरूप उल्लेख किया गया है—वे उक्त दो कोटियों से अलग हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अधिकांशतः ऐसे सशक्त हस्ताक्षर हैं—जिन का चयन ऐसे किसी भी संकलन में अनिवार्य रूप से होता है। हालांकि इनका कार्य क्षेत्र हिंदी के प्रचार-प्रसार से कहीं अधिक विवेचनात्मक, तुलनात्मक और समीक्षात्मक रहा है। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं, हिंदी में स्वतंत्र रूप से रचनाएं करते रहे हैं। उदाहरण के लिए, तोमियो मिजोकामी (जापान), सोमदत्त बखोरी (मारीशस), ओदोलेन स्मेकल (चेक) और कमलाप्रसाद मिश्र (फीजी)

दरअसल पश्चिम की सतर्क दृष्टि अब हमारी किसी भी मूल्यवान धरोहर को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जातीय स्मृति, अस्मिता या आस्था के तौर पर ले भी नहीं सकती। वह दृष्टि हमारी समस्त सर्जनात्मक अंतर्वस्तु को वृत्त या 'डाक्युमेंटरी' सामग्री या उपकरण के रूप में देखने की अभ्यस्त रही है। हमने इनके इस खंडित दृष्टिकोण को भी अपनी आलोचना के रूप में स्वीकार किया है और तदनुरूप स्वयं को संशोधित भी किया है। लेकिन यहां एक बात को अवश्य रेखांकित किया जाना चाहिए कि जहां उन्नीसवीं सदी के भारत-विद्या प्रेमी भारतीय दृष्टि के प्रशंसक रहे—वहां बीसवीं सदी में हमारे विद्वान और साहित्यिक क्रमशः पश्चिमी विचारधारा के कायल होते चले गए और हमारी 'अकादमिक' तैयारी शैक्षिक पद्धति और प्रणालियां पाश्चात्य चिंतन की गिरवी होती चली गई। इस बात को जानते हुए भी कि यह विभाजक या विखंडन-दृष्टि वस्तु एवं भाव को सामग्रिक या समष्टि के तौर पर नहीं बल्कि खंडशः देखने को प्रेरित करती रही है—हम इसे अपनाते चले गए। इसलिए किसी वैचारिक निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व वे इनके वैज्ञानिक पहलुओं और ऐतिहासिक संदर्भों की परख और पड़ताल करते रहे हैं। वहां आस्था या आत्मसाक्ष्य नहीं, वस्तुसाक्ष्य ही सर्वोपरि है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में जो आदान-प्रदान होता रहा है वह उत्सव केंद्रित होता है और कमोबेश उपभोक्ता संस्कृति के अनुरूप ही उसका प्रायोजन होता है। भाषा या साहित्य के क्षेत्र में हमारा सबसे बड़ा सहभागी भूतपूर्व सोवियत संघ अब अस्तित्व में नहीं रहा—लेकिन इसके विघटन के साथ ही एक बड़ी शक्ति जो साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में हमारे साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी थी—वह ढह गई।

समान सांस्कृतिक धरोहर और जातिगत मूल्यों के कारण हमसे परंपरागत ढंग से जुड़े अन्य देश—मारीशस, फीजी, सूरीनाम और ट्रिनिडाड हिंदी से भावनात्मक लगाव रखे हुए हैं। उपभोक्ता संस्कृति और पूंजी निवेश करने वाली बड़ी ताकतों और राष्ट्रों के दबाव के बावजूद अपनी विरासत से जुड़े रहने का उनका संकल्प हम भारतवासियों के मन में भी प्रेरणा का संचार करता है। वस्तुतः विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार की स्थितियां लगभग एक जैसी हैं। विश्वविद्यालयों की अपनी सीमाएं होती हैं और भारत-विद्या (ओरियंटल स्टडीज) में रुचि रखने वाले कतिपय समर्पित विद्वानों को छोड़कर हिंदी के पठन-पाठन से जुड़े अधिकांश अध्यापक मात्र जीविका धर्मी हैं और सप्ताह में दो-तीन भाषा-कक्षाएं लेकर वे अपने दायित्व की इतिश्री समझ लेते हैं। दूसरे, आजकल विदेशी भाषा सिखाने के लिए बाजार में जितने उपकरण 'किट्स या कैसेट्स' (ओडियो एवं वीडियो) उपलब्ध हैं—वे भाषा के रिश्ते को लगभग यांत्रिक बना चुके हैं। ज्यादा से ज्यादा इसमें समाजशास्त्रीय दृष्टि या पूर्वस्वीकृत अभिगमों से कार्य लिया जाता है। इसलिए तुलसी, सूर और मीरा अब कम्प्यूटर में 'फीड' कर लिए जाते हैं और वांछित या प्रस्तावित नतीजे को 'मेमोरी' के ठंडे खाने में डाल दिया जाता है और अब स्थिति यह आने को है कि हमें 'लोरी' 'पालने' और 'माखन-मिसरी' के मर्म को और गोदान में होरी झुनिया या दातादीन के धर्म को समझाने के लिए मोटी-मोटी फीस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के साथ पंचतारा होटलों में 'लंच ऑन वर्कशॉप' आयोजित करने होंगे।

ऐसी स्थिति में हिंदी के समुचित पठन-पाठन के लिए समर्पित मनीषा या संस्थागत तैयारी की प्रत्याशा करना और भी कठिन है। जब कि भारत के अस्सी प्रतिशत लोगों की समझ और उपयोग में आने वाली भाषा हिंदी को लगभग सौतेली बना दिया गया है। हालांकि 'गौरांगिनी' भाषा भारत में न तो बेटी का दर्जा पा सकी है और न पुत्र वधू का। विदेशियों के लिए संपूर्ण हिंदी वाङ्मय अब प्रयोगानुरूप भाषाई उपकरण हैं। क्योंकि कई विदेशी विद्वान अब आदि-भक्ति रीति की बात छोड़कर सिर्फ आधुनिक हिंदी साहित्य को ही तरजीह देते हैं और बीसवीं सदी के साहित्य को ही अपने अध्ययन का आधार बनाते हैं। बाकी डेढ़ दो हजार की सामग्री उनके लिए समाजशास्त्रीय या ज्यादा से ज्यादा सांस्कृतिक उपकरण या उपस्कर मात्र है।

भारत से, भारत के बाहर हिंदी भाषा भाषी जितने लोग विदेशी जमीन पर जाकर बस गए वहां वे स्थानीय भाषा एवं बोलियों को सीखने के साथ-साथ अपने भाषाई संस्कार (स्वर-तेवर, लहजे, मुहावरे और बानगी) भी ले गए। लेकिन उनकी जातीय आस्था और अस्मिता लोकगीतों के विपुल संसार में सुरक्षित रही। लोकगीत और लोक आख्यान, विशषकर रामायण, महाभारत एवं पुराणादि उनकी चेतना के अनिवार्य रंग और अविच्छेद अंग बने रहे। फीजी के हिंदी-सेवी और समर्पित कवि पं. कमलाप्रसाद ने अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'गिरमिट के समय' में कुली लेनों में अभिशप्त जीवन जी रहे प्रवासी भारतीयों के अवसाद और अनुताप को इन पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है :

कोई रामायण बांच रहा, कोई लेकर सत्यनारायण आया
खूब किया उनका सम्मान, कोई अनजान जो आंगन आया
गिरमिट वालों के साथ था मौसम, रंग जमा लिया जो मन आया,
खून बहाये तो फागुन आया, जो आंसू बहाये तो सावन आया। (पृ. 258)

पं. मिश्र जैसे हिंदी सेवियों का हिंदी के लिए किया गया आत्मतर्पण व्यर्थ जाता अगर मारीशस, फीजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड जैसे देशों के प्रवासी भारतीय अपने साथ स्थानीय लोकगीत और आख्यान तथा जातीय विश्वास से दीप्त व्रत-उत्सव-अनुष्ठान अपने साथ नहीं ले जाते। लोकगीत जातीय अस्मिता के जीवंत दस्तावेज हैं। आज जब कि 'उत्तरआधुनिकता' के बहाने पूर्व वाचिक परंपरा या भाषा के आद्यप्रारूपों को पकड़ने और परखने की कोशिश हो रही है—लोकगीतों के संसार को एक बार फिर से जातीय पहचान के रूप में देखने की जरूरत है। इसे केवल स्थानीय रंग या आंचलिक संपदा के रूप में एक किनारे रख देने से काम नहीं चलेगा। सांस्कृतिक भौगोलिक या ऐतिहासिक परिदृश्य जनजीवन की आस्थाओं और आकांक्षाओं को कैसे रुपायित करते हैं और लोक-कंठ के अनिवार्य अंग और रंग बन जाते हैं—इसे उन देशों में जाकर और भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गहराई से अनुभव किया जा सकता है—जहां भारतीय मूल के प्रवासी सदियों से बसे हुए हैं।

एक महत्वपूर्ण सवाल यह भी है कि क्या विदेशों में हिंदी के समुचित प्रचार प्रसार के लिए पाठ्यक्रम का पूरी गंभीरता के साथ निर्धारण या अनुपालन किया गया है। आरंभिक सूचनाओं के अनुसार इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। लेखक की खुशफहमी का खंडन स्वयं डॉ. लोठार लुत्से के एक वक्तव्य से हो जाता है कि जर्मनी में हिंदी की स्थिति निश्चय ही संतोषजनक नहीं है जो परंपरा से भारतीय उपमहाद्वीप के साथ पूरी तरह प्रतिबद्ध रहा है। (पृ.16) पाठ्यक्रम का निर्धारण अधिकांशतः संबंधित देशों में उपलब्ध विद्वानों की अर्जित योग्यता अभिरुचि से संपन्न होता है। यह गनीमत है कि अब प्रथम या द्वितीय कोटि (जैसा कि आरंभ में बताया गया) के हिंदी सेवियों की जगह तृतीय कोटि के विद्वान—जो कि विभिन्न विश्वविद्यालयों या शोधसंस्थानों में कार्यरत हैं—वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी के अध्यापन कार्य एवं शोध योजनाओं से जुड़े हैं। लेकिन विभिन्न अक्षांशों और देशांतरों पर बसे विश्व के देश हिंदी पठन-पाठन के मामले में लगभग निरंकुश हैं और भाषा और साहित्य के बारे में उनकी तैयारी, सोच और समझ की हम केवल सराहना ही कर सकते हैं और अगर वे हमारी प्रत्याशा के अनुरूप ऐसा कुछ सकारात्मक जोड़ पाने में समर्थ दीख पड़ते हैं तो वह दृष्टि हमें चमत्कृत भी करती है। उदाहरण के लिए जब डॉ. लुठार लुत्से (जर्मनी) आधुनिकता पर विचार प्रकट करते हुए कहते हैं, ''क्या साहित्य में आधुनिकता जैसी कोई चीज होती भी है? कथ्य एवं विषय-वस्तु की दृष्टि से सोचें तो निश्चित रूप से होती है। परंतु इस दृष्टि से सर्वाधिक आधुनिक साहित्य संभवतः इस दिन के समाचार-पत्र का संपादकीय होगा।'' .. वे राजकमल चौधरी की लंबी कविता 'मुक्ति प्रसंग' और 'अकविता' तथा मुद्राराक्षस की 'अमूर्त कविता' के बारे में आगे कहते हैं—''ये सब इंडोविक्टोरियानिज्म की प्रतिक्रियाएं एवं हाल की रचनाएं हैं। ये सब भिन्न रूप में एक हद तक आधुनिकता का दावा करती हैं। ... यदि आधुनिकता का अर्थ रूप-विधान की नूतनता हो, जो अब तक चाहे न हुआ हो, पर एकदम 'आज का' है तो, हमें बहुत शीघ्र निराश होना पड़ेगा।'' (पृ. 73)

इसी तरह निकोलाय ज्वेर्या का (पृ. 86 पर) यह कथन कि भारतीय प्राचीन नाट्य कला में ट्रेजेडी नहीं थी—आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। क्योंकि भारतीय प्राचीन चिंतन में मानवीय अवस्था का दुखद (ट्रेजिक) दृश्य बहुत स्पष्टता के साथ मिलता है। सांख्य विचारधारा जो अधिकांश भारतीय दार्शनिक पद्धतियों की आधारशिला है, मानवीय अस्तित्व की ट्रेजिक चेतना से ओतप्रोत है। महाभारत और रामायण प्रधानतया दुखद महाकाव्य हैं। विश्वव्यापी साहित्य से मिलान करने पर हम यह कह सकते हैं कि इनका अंत सबसे अधिक हृदय विदारक है। यह भी स्पष्ट है कि यही ट्रेजिक धारणा उपनिषदों का प्रस्थान बिंदु है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहना न होगा, ऐसे सुचिंतित एवं तर्कशील विचार-विंदुओं के कारण पुस्तक की महत्ता अपेक्षा से अधिक बढ़ गई है। इसी तरह जब कैथरिन जे हैंसन (कनाडा की भाषाविद्) हरिश्चंद्र, आगरा-बाजार, प्रेमचंद और इसी तरह फणीश्वरनाथ 'रेणु' पर अपनी सार्थक टिप्पणी करती हैं तो निश्चय ही वे हिंदी के उन रूढ़िवादी और धर्मप्रचारकों से अलग प्रतीत होती हैं—जो हिंदी को किसी संस्था के प्रचार के लिए काम में ला रहे होते हैं। रेणु के सरल हिंदी प्रयोगों पर विचार करते हुए वे लिखती हैं :

"सरलीकृत हिंदी के प्रयोग से रेणु ने भाषा की बोधगम्यता खोए बगैर गांव के भाषिक वातावरण को सजीव बनाया है। अगर वह आंचलिक बोली के व्याकरण को अपनाते तो संभवतः उनका लेखन सहज बोधगम्य नहीं होता। अपनी स्पष्टता और सरलता में यह भाषा भारत के आम ग्रामीण लोगों के बहुत करीब है। .. सीधे संप्रेषण के उद्देश्य से रेणु परिष्कृत भाषा के व्याकरण के जटिल नियम की उपेक्षा करते हुए सरलीकृत हिंदी का प्रयोग करते हैं।" (पृ. 163)

हिंदी भारतीय मन की मुक्ति का दूसरा नाम है क्योंकि इसने किन्हीं भौगोलिक सीमाओं को कभी स्वीकार नहीं किया और संकीर्णताओं से मुक्त, निर्बंध और निर्द्वंद्व विचरण करती रही है यही कारण है कि वह भारतीय मानसिकता और तेजस्विता का निर्वहन करती हुई स्वातंत्र्य आंदोलन की संवाहिका बन सकी। प्रवासी भारतीय मजदूरों के साथ विश्व के विभिन्न देशों विशेषकर मारीशस,त्रिनीदाद, दक्षिणी अफ्रीका, गुयाना, सूरीनाम, फीजी में अपनी स्थानीय बोलियों का वैभव लिए पहुंची। और पिछले-डेढ़ दो सौ वर्षों में उसकी सांस्कृतिक गरिमा और जातीय अस्मिता को नष्ट करने वाली सक्रिय ताकतें स्वयं मिट गईं और हिंदी के गतिशील चरण कभी नहीं रुके। उसकी निर्बाध निरंतर प्रवाहशील स्रोतस्विनी लोकवाणी को आस्था और आश्वस्ति प्रदान करती रही। इसलिए यहां यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीयों (हिंदी भाषा भाषियों एवं हिंदीतर विद्वानों एवं हिंदी सेवियों) के अलावा दूसरे विद्वान हैं जो हिंदी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख यहां अनाश्यक न होगा :

मुझे दृढ़ विश्वास है कि सभी भारतीय भाषाओं को ऊंचे स्तर पर पहुंचाना और हिंदी को अंतिम रूप से सरकारी भाषा बनाना, यही भारत की उन्नति में एक महत्वपूर्ण मंजिल सिद्ध होगी। (मार्गोत गात्सलाफ हेलजिग पृ. 81)

संतुलन एवं समन्वय की विशेषता रखने वाली भारतीय संस्कृति को हिंदी के द्वारा ही विश्व को पहुंचाया जा सकता है। आज की हिंदी भारत की सामासिक संस्कृति के लिए अधिक उपयुक्त है। किंतु भारतीय संस्कृति विश्व में तब तक प्रतिष्ठित नहीं हो सकती जबतक हिंदी अपने देश में प्रतिष्ठित नहीं होती। इसमें सबसे बड़ी बाधा भारत के अधिकांश बुद्धिजीवियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और उच्च मध्यवर्ग के लोगों की अंग्रेजी परस्त तथा प्रादेशिक बोलियों को अनावश्यक एवं अधिक महत्व देना है।

(कामिल बुल्के पृ. 100)

यदि हिंदी संस्कृत की पुत्री मानी जाती है तो शायद थाई भाषा भी संस्कृत की गोद ली हुई पुत्री कही जा सकती है।

(करुणा कुशलासय, पृ. 191)

एक बात और। भारत से विदेश जाने और वहां जाकर बस जाने वाले हिंदी सेवी आरंभ से ही भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को सर्वोपरि मानते हैं। वैदिक या सनातन धर्म के प्रवक्ता के नाते धार्मिक प्रवचनों एवं पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने भारतीय मूल के लोगों के बीच अपनी जगह बनाई थी। इनमें से भी अधिकांश का प्राथमिक उद्देश्य आर्य समाज का केंद्र स्थापन तथा इसके माध्यम से स्वामी दयानंद के विचारों को प्रचार-प्रसार करना था। इन प्रतिनिधियों या समाज सुधारकों ने हिंदी को माध्यम बनाकर कार्य किया जिसका लाभ प्रकारांतर से हिंदी को ही मिला। धीरे-धीरे समाज सुधार का संकल्प गौण होता चला गया। यही कारण है कि हाल तक इंग्लैंड (वैदिक पब्लिकेशंस), मारीशस (मारीशस आर्य पत्रिका, आर्यवीर, सनातन धर्मांक, आर्यवीर जागृति, आर्योदय, आर्य समाज तथा शिवरात्रि जैसी पत्रिकाएं) तथा सूरीनाम (आर्य दिवाकर, धर्मप्रकाश, वैदिक संदेश, भारतोदय) से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं का स्वर स्वरूप एवं स्वभाव धर्म केंद्रित था। लेकिन बाद में बसंत, समाजवाद, कांग्रेस, बाल सखा, आभा, दर्पण, मजदूर, प्रकाश और रणभेरी (सभी मारीशस से) तथा सरस्वती, प्रेम संदेश, शांतिदूत, और विकास, (सभी सूरीनाम) जैसी साहित्यिक तथा निर्बंध पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होती रही हैं।

पुस्तक अपनी प्रस्तुति सफाई और छपाई में आकर्षक है। उपयोगी तथ्यों एवं सूचनाओं से-भरपूर इस कृति को छापने के लिए प्रकाशक को बधाई दी जानी चाहिए। इसलिए भी कि इसकी कीमत कम है। यदि पुस्तक के अंत में नाम स्थान, पुस्तकों की अनुक्रमणिका अंग्रेजी में साथ दे दी जाती और इसमें संकलित विद्वानों के नाम (वर्तनी के अनुरूप) दे दिए जाते तो यह पाठकों के लिए उपयोगी होता। □

विश्व हिंदी के भगीरथ: डॉ. भक्तराम शर्मा, जगतराम एंड संस, मेन बाजार, गांधीनगर, दिल्ली-110031, सजिल्द, डिमाई, पृ. सं. 272, प्रथम संस्करण, 1993, मूल्य 130/- रुपए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समकालीन चीनी कहानियां

वेदप्रकाश भारद्वाज

एक श्रेष्ठ अनुवाद क्या होता है इस बात का प्रतिमान है तङ पिङ द्वारा अनूदित व देवेंद्र चौबे द्वारा संपादित पुस्तक 'समकालीन चीनी कहानियां।' चीनी कहानियों का अनुवाद कार्य पहले भी हमारे यहां काफी हुआ है विशेष रूप से लू शुन की रचनाओं से हमारा अधिक परिचय रहा है। इस संग्रह में शामिल कुछ रचनाएं जैसे 'अधिकारी' पहले भी हिंदी में प्रकाशित हो चुकी है। संभव है अन्य कहानियां भी प्रकाशित हुई हों परंतु पूर्ववर्ती अनुवाद पाठक को गहरे तक प्रभावित करने में अधिक सफल नहीं रहे हैं। ऐसा इसलिए हुआ कि अधिकांशतः चीनी कहानियों का हिंदी में अनुवाद चीनी भाषा से न होकर उसके अंग्रेजी अनुवाद से हुआ है। एक प्रकार से अधिकांशतः अनुवाद का अनुवाद हुआ है। अनुवाद का अनुवाद चाहे कितनी ही निष्ठा व कुशलता से क्यों न किया गया हो उसमें संप्रेषणीयता एवं प्रभावोत्पादकता की कमी रह जाती है। इसका भी एक कारण है।

प्रत्येक भाषा का, रचना शैली और संप्रेषणीयता के संदर्भ में एक विशेष चरित्र होता है। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय अनुवादक को दोनों भाषाओं के मूल चरित्र का ज्ञान होना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं है तो वह न तो रचना के साथ और न ही अनुवाद के साथ न्याय कर पाएगा। रचना की मूल भाषा के चरित्र से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विवरणात्मक शैली से बचते हुए संवाद योजना के द्वारा कहानियों को अधिकाधिक प्रभावी बनाया है। विशेष रूप से छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से कथोपकथन शैली में बात को आगे बढ़ाने का कौशल अद्भुत है। संवादों के माध्यम से अनुवादक ने कहानियों में नाटकीयता का प्रभाव प्रस्तुत किया है।

दृश्य एवं व्यक्तित्व चित्रण में आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया गया है परंतु उसमें प्रतीक व उपमान के स्तर पर इतनी सावधानी अवश्य बरती गई है कि उन्हें हिंदी के पाठक सहज ही समझ सकें। कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश कहानियों के पात्र व उनका चरित्र हमारे आस-पास के लगते हैं। इन कहानियों की भाषा में रमणीयता एवं व्यंग्यात्मकता का आह्लादकारी समन्वय है जो कहानियों की पठनीयता को बढ़ा देता है। 'फावड़े की मुठिया' में तीखा व्यंग्य है विशेष रूप से पार्टी के दोहरे चरित्र को लेकर। देश में सांस्कृतिक क्रांति के दौरान सरकार ने किसानों को अच्छी श्रेणी वाला लाल बाजरा उगाने की अपील की। जन कम्यून के नेता न्यू छूङ ने किसानों को मजबूर करके सारी जमीन पर लाल बाजरा उगवाया। वह कम्यून के कर्मचारी गङ यूचीन को हानचाशान क्षेत्र में भेजता है ताकि वहां लाल बाजरे की बोआई-जोताई अच्छी तरह से हो सके। गङ यूचीन ने किसानों को समझाया कि लाल बाजरा विटामिन से भरपूर, पौष्टिक व स्वादिष्ट होता है और पुराने जमाने में यह भी खाने को नहीं मिलता था।

एक दिन गङ यूचीन के खाने का कार्यक्रम कहानी के नायक हान बाओ शान के घर हुआ। हान बाओ शान गङ यूचीन को लाल बाजरा ही खाने के लिए देता है और जब वह नहीं खाता तो लाल बाजरे की पौष्टिकता संबंधी उपदेश सुनाता है। सुबह के नाश्ते व दोपहर के भोजन में लाल बाजरा खाने के बाद जब शाम के खाने में भी गङ यूचीन के सामने पुनः बाजरे की रोटी व दाल परोसी जाती है तो वह थोड़ी सी दाल खाकर ही उठकर जाने लगता है। इस पर हान बाओ शान उसे दरवाजे पर रोककर कहता है ''यह बाजरा बहुत स्वादिष्ट है। आप क्यों बिना खाये चले जा रहे हैं?'' 'केकड़े का क्रय-विक्रय' एवं 'सुंदर आंखें' कहानियों में भी व्यंग्य एवं शिष्ट हास्य है।

कुल मिलाकर यह संग्रह समकालीन चीनी कहानी का प्रतिनिधि चरित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। चीनी कहानी की विकास यात्रा को समझने में पुस्तक के आरंभ में दिया गया संपादक देवेंद्र चौबे का लेख 'चीनी कहानी का विकास' काफी सहायक है। यह लेख इस पुस्तक की एक विशिष्ट उपलब्धि कहा जा सकता है। □

पुस्तक : समकालीन चीनी कहानियां/अनुवादक : तङ पिङ संपादक : देवेंद्र चौबे/प्रकाशक : अयन प्रकाशन 1/20, महरौली, नयी दिल्ली/पृष्ठ संख्या : 168/संस्करण : 1993/मूल्य : 70/- रुपए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निराला और मुक्तिबोध : सही संदर्भों में अर्थ मीमांसा

पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और गजानन माधव मुक्तिबोध दोनों ही अपने युग के प्रतिनिधि और क्रांतिकारी कवि रहे हैं और शायद यही वजह है कि दोनों के साहित्य सृजन की इतनी अधिक मात्रा व भिन्न-भिन्न दृष्टियों से समालोचना की जा चुकी है कि अब उनके काव्य के बारे में शायद कुछ भी नया कहने को शेष नहीं बचा होगा। बावजूद इसके हर आलोचक के समक्ष एक चुनौती होती है कि वह निराला और मुक्तिबोध के नवीन सत्यों का उद्घाटन करे अथवा ऐसा करने का दिखावा तो करे ही। आलोचक नंदकिशोर नवल ने अपनी नयी आलोचना पुस्तक 'निराला और मुक्तिबोध चार लंबी कविताएं' में किसी नवीन सत्य के उद्घाटन का प्रत्यक्ष दावा नहीं किया है। उनका प्रयास दोनों कवियों की चार लंबी कविताओं निराला की 'सरोज स्मृति' तथा 'राम की शक्तिपूजा' और मुक्तिबोध की 'ब्रह्म राक्षस' तथा 'अंधेरे में' की अर्थ मीमांसा का रहा है अर्थात वे रचना से साक्षात्कार के अधिक पक्षधर हैं।

नंदकिशोर नवल किसी भी कविता की समालोचना का उसके टेक्स्ट पर आधारित होने पर बल देते हैं। उनके अनुसार केवल संदर्भों की चर्चा या रचना का नया अर्थ प्रस्तुत करना ही काफी नहीं है। आलोचना तभी पूर्ण हो सकती है जब वह 'टेक्स्ट' पर आधारित हो। व्यंजना की सारी तरंगें उसी तरह से उठती हैं, इसलिए यदि वहां आलोचक की पकड़ गलत हुई, तो वह अंत तक गलत होता चला जाएगा। 'टेक्स्ट' को महत्व देने पर रचना के पाठ की समस्या सामने आती है। नवल जी ने चारों आलोच्य कविताओं के संदर्भ में मूल पाठ तक पहुंचने का भरसक प्रयास किया है।

यह सही है कि नवल जी कविता के टेक्स्ट को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं परंतु संदर्भों को उन्होंने उपेक्षणीय नहीं माना है। चारों कविताओं की मीमांसा करते हुए उन्होंने जिस परिवेश में उनकी रचना की गई है उस पर विस्तार से विचार करते हुए मत दिया है। और यही बात इस आलोचना पुस्तक को महत्वपूर्ण बना देती है। मिसाल के लिए निराला की 'सरोज स्मृति' की आलोचना को देखें तो उसमें इसे केवल कवि की व्यक्तिगत व्यथा मानने के बजाय एक सामाजिक दृष्टि भी देखी गई है। कुछ आलोचक निराला की इस बात के लिए आलोचना करते हैं कि उन्होंने अपनी व्यक्तिगत पीड़ा को सार्वजनिक बना दिया परंतु नवल के अनुसार यह निराला की व्यक्तिगत पीड़ा भर नहीं थी। इस रचना के पीछे निराला की वह सजग दृष्टि थी जो समकालीन समाज में लड़की की स्थिति का विरोध करना चाहती थी। निराला ने 'सरोज स्मृति' की रचना उस समय की थी जब लड़की को बोझ माना जाता था।

'सरोज स्मृति' में अपनी दिवंगत पुत्री के प्रति निराला का जो प्रेम उभरकर सामने आया है वह एक ओर समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों में लड़कियों की स्थिति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का अहसास तो कराता ही है साथ ही उन पिताओं की पीड़ा को भी सामने रखा गया है जो सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों के चलते खामोश रह जाते हैं। और इसीलिए नवल जी इसे निराला की व्यक्तिगत पीड़ा न मानकर सार्वजनिक पीड़ा मानते हैं।

'राम की शक्ति पूजा' निराला की श्रेष्ठ कविता है। आकार और प्रकार दोनों दृष्टियों से लंबी इस कविता में नवल जी को एक ओर निराला का पत्नी प्रेम और उसके माध्यम से नारी मुक्ति चेतना की अभिव्यक्ति नजर आती है वहीं दूसरी ओर वे इसमें गुलाम भारतवासियों को अपने अंदर की शक्ति जगाने के लिए प्रेरणा देखते हैं। नवल जी के अनुसार 'राम की शक्ति पूजा' महज पौराणिक आख्यान न होकर आधुनिक चेतना संपन्न कविता है। नवल जी सीता की मुक्ति के माध्यम से निराला की नारी मुक्ति संबंधी इच्छाओं को प्रकट होते हुए देखते हैं परंतु इसका एक अन्य अर्थ भी है। यह कविता उस समय रची गई थी जब देश पर अंग्रेजों का शासन था। भारत माता को गुलामी से आजाद कराने के लिए एक ओर गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस सक्रिय थी तो दूसरी ओर क्रांतिकारी। बहुत संभव है 'निराला के मन' में इस कविता के माध्यम से सीता को प्रतीक बनाकर भारत माता की मुक्ति के लिए जन मानस को प्रेरित करने की भावना रही हो। और शायद इसीलिए निराला ने राम द्वारा शक्ति को बाह्य न मानकर आंतरिक शक्ति मनवाया हो। निराला ने अपने कुछ निबंधों जैसे 'बाहर और भीतर' तथा 'शून्य और शक्ति' में शक्ति को पाने की बात कही है। 'राम की शक्ति पूजा' में भी वे आंतरिक शक्ति जगाने की बात करते हैं। समग्र रूप में नवल जी 'राम की शक्ति पूजा' को केवल पौराणिक आख्यान न मानकर उसकी अर्थ मीमांसा समकालीन संदर्भों में रखकर करते हुए इसे आधुनिक प्रगतिशील चेतना संपन्न रचना निरूपित करते हैं। एक पौराणिक आख्यान के माध्यम से निराला इस बात का संकेत देने में भी नहीं चूकते कि आधुनिक मनुष्य की पुराने मूल्यों से निष्ठा समाप्त होने लगी है क्योंकि पुराने मूल्य किसी न किसी रूप में अन्याय का पक्ष मजबूत कर रहे हैं। इस बात को निराला ने शक्ति द्वारा रावण की रक्षा करने तथा राम द्वारा यह सब देख अपनी आराध्या होने के बावजूद शक्ति के प्रति शिकायत के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की एक प्रसिद्ध कविता है। आकार में यह अपेक्षाकृत छोटी है परंतु कथा के लिहाज से एक लंबी कविता के सारे गुण इसमें मौजूद हैं। ब्रह्मराक्षस एक प्रगतिशील बुद्धिजीवी का प्रेत है। ब्रह्मराक्षस जब मनुष्य योनि में था तो वह सत्य का शोधक था। अपनी खोज को लेकर वह विकट समस्याओं में उलझ जाता है। वह उनका निदान नहीं ढूंढ़ पाता और अंततः उन्हीं में घुटकर मर जाता है। नवल जी के अनुसार प्रगतिशील बुद्धिजीवी अपने विचार व कर्म के बीच तालमेल स्थापित करने में सफल नहीं हुआ। वह न तो अतीत के स्वर्णिम क्षणों के मोह से मुक्त हो पाता है और न पूंजीवादी संस्कारों से। वह समाजवाद के अनुरूप व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहता है परंतु उसे सफलता नहीं मिलती और यही शायद प्रगतिशील

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुद्धिजीवी वर्ग की सबसे बड़ी त्रासदी रही है। शोधक को अपनी समस्याओं के निदान के लिए कोई गुरु भी नहीं मिल सका। क्योंकि जमाना बदल गया था और ज्ञान भी खरीदने-बेचने की वस्तु हो गई थी। इस प्रकार मुक्ति बोध ने इस कविता में बुद्धिजीवी वर्ग के संघर्ष, उसकी असफलता के कारण तथा पूंजीवादी समाज की विसंगतियों को उजागर किया है। अंत में कवि ब्रह्मराक्षस का शिष्य बनना चाहता है ताकि उसके अधूरे कार्य, समाजवादी आदर्शों के अनुरूप व्यक्तित्व के निर्माण को पूरा कर सके।

नवल जी ने अर्थ मीमांसा करते समय ब्रह्मराक्षस और कवि को दो अलग-अलग व्यक्तित्व माना है परंतु साथ ही दोनों को एक भी मानता है क्योंकि मुक्तिबोध ने स्वयं अपनी एक अधूरी डायरी में लिखा है कि "मैं ब्रह्मराक्षस हूं। अनादिकाल से चला आया वह ब्रह्मराक्षस जिसने हमेशा सही करने की कोशिश की और गलती करता चला इस प्रकार ब्रह्मराक्षस एक फैंटसी प्रधान यथार्थवादी कविता है।

'अंधेरे में' मुक्तिबोध की सबसे लंबी, सशक्त व चर्चित कविता है। एक लंबे समय में कई टुकड़ों में लिखी गई और संशोधित हुई इस कविता में कवि मन में उपजी अंधेरी आशंकाएं अभिव्यक्त हुई हैं। आरंभ में कवि ने इसका शीर्षक 'आशंका के द्वीप : अंधेरे में' दिया था परंतु बाद में बदलकर केवल 'अंधेरे में' कर दिया। फासिज्म के बढ़ते हुए कदमों से मुक्तिबोध भविष्य को लेकर आशंकित थे। उनकी पाठ्य पुस्तक 'भारतः इतिहास और संस्कृति' पर जिस प्रकार प्रतिबंध लगाया गया व उन्हें लगातार डराने का प्रयास किया गया उससे तथा समकालीन राजनीतिक वातावरण ने मुक्तिबोध को परेशान किया था। वे केवल कठिन समय के कवि ही नहीं थे, और अधिक कठिन भविष्य को भी देख रहे थे। नवल जी के अनुसार यह कविता वस्तुतः लहरीली थाहोंवाली नीली झील में कांपता एक अरूण कमल है, अरूण कमल यानी फासिज्म के विरुद्ध लिखी गई एक क्रांतिकारी कविता।

इस प्रकार इन चारों लंबी कविताओं की व्यावहारिक आलोचना करने में नंदकिशोर नवल पूरी तरह सफल रहे हैं। नवल जी की स्थापनाएं भले ही नयी न हों या पूरी तरह नयी न हों परंतु इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने चारों कविताओं को उनके संपूर्ण संदर्भो में रखकर देखा है इसलिए आलोचना प्रभावी बन पड़ी है। उन्होंने जहां आवश्यक हुआ है वहां इन कविताओं की पूर्ववर्ती आलोचनाओं का खंडन भी किया है परंतु यह खंडन दुराग्रहपूर्ण न होकर तथ्यात्मक है।

हिंदी आलोचना का विवेचन

हिंदी साहित्य पर जितनी अधिक मात्रा में आलोचनात्मक लेखन होता रहा है और हो रहा है, उतनी ही कम मात्रा में हिंदी आलोचना पर लेखन हुआ है। विशेष रूप से हिंदी आलोचना पर इतिहासपरक पुस्तकों का अभाव खलता रहा है। वैसे हिंदी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आलोचना का इतिहास कुछ पाठ्य पुस्तकों के रूप में मिल जाता है परंतु वहां एक प्रकार से रचनात्मकता का अभाव नजर आता है। इस अभाव में डॉ. निर्मला जैन की पुस्तक 'हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी' एक राहत प्रदान करती है। हालांकि यह राहत भी एक स्तर पर अधूरी है। नाट्य समीक्षा और कथा समीक्षा पर संक्षिप्त टिप्पणी और सातवें दशक से आज तक की आलोचना का अधूरा चित्र इस पुस्तक की सबसे बड़ी कमी है।

ऐसा लगता है जैसे लेखिका का ध्येय केवल हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी का इतिहास लिखना ही रहा है परंतु वे तय नहीं कर पाई हैं कि इस इतिहास को किस क्रम से लिखा जाए। आलोचनात्मक प्रवृतियों के आधार पर अथवा कालखण्ड के आधार पर। यही वजह है कि एक तरफ वे द्विवेदी युग, शुक्लयुग, शुक्लोत्तर युग, प्रगतिशील समीक्षा व नयी समीक्षा की सीमा रेखाओं में बीसवीं सदी कि हिंदी आलोचना को बांधती है तो दूसरी तरफ लगे हाथों दशकों का हिसाब भी करती चलती हैं। दशक को मानक बनाने का एक कारण शायद यह भी रहा है कि इधर पिछले कुछ वर्षों में साहित्य की विभिन्न विधाओं को दशकों में बांटकर विश्लेषण करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

शायद युग और दशक के इसी उलझाव के चलते वे बीसवीं सदी की आलोचना के साथ पूरा न्याय नहीं कर पाई हैं। विशेष रूप से इस संदर्भ में कि वे बीसवीं सदी की आरंभिक आलोचना दृष्टियों के विकास की विभिन्न दिशाओं को एक सूत्रता में नहीं बांध पाई हैं। जिस आलोचना दृष्टि से आज का साहित्य समाज परिचित है उस आलोचना दृष्टि का जन्म ही बीसवीं सदी के आरंभ में हुआ था। वह दृष्टि थी आधुनिकता बोध की दृष्टि। आज हम जिस प्रगतिशील और समाजशास्त्रीय आलोचना दृष्टि से परिचित हैं उसके बीज आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि में देखे जा सकते हैं।

छंद से मुक्ति की बात सर्वप्रथम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उठायी थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य में व्यक्ति हृदय के लोकहृदय में समाने की बात कही थी और उसी लोकहृदय व लोकमंगल का परिमार्जित रूप आलोचना की समाज शास्त्रीय दृष्टि में है। इन महत्वपूर्ण संकेतों को पकड़ पाने में लेखिका असमर्थ है ऐसा कहना धृष्टता ही होगी परंतु उन्होंने इन संकेतों को उपेक्षणीय क्यों माना यह समझ पाना मुश्किल है। यही वजह है कि पुस्तक में एक स्तर के बाद इतिहास दृष्टि की संपूर्णता का अभाव झलकता है।

एक और बात जो खटकती है वह यह कि पुस्तक में अनेक आलोचकों के नाम छूट गए हैं। ऐसा प्रथम छह दशक की हिंदी आलोचना का चित्र प्रस्तुत करते हुए भी हुआ है और सातवें दशक व उसके बाद की आलोचना में भी। जहां तक प्रथम छह दशक की बात है तो वहां कुछ नामों का छूट जाना विशेष नहीं अखरता क्योंकि जो नाम छूट गए हैं उन्होंने आलोचना दृष्टि को कोई नए आयाम नहीं दिए थे और न ही परंपरा के विस्तार व परिमार्जन में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हकीकत यह है कि हिंदी आलोचना का आधुनिक रूप बीसवीं सदी के आरंभ में बनना शुरू हुआ था। उस काल में हिंदी साहित्य को उच्च शिक्षण में एक विषय के रूप में शामिल किया गया था। यही वजह थी कि उस समय के अनेक अध्यापकों (जो अक्सर साहित्यकार भी होते थे) ने शिक्षण को दृष्टि में रखकर आलोचनात्मक साहित्य को बड़ी मात्रा में लिखा था। ऐसे आलोचनाकर्म का उल्लेख न हो पाना सहज ही है परंतु सातवें दशक व उसके बाद की आलोचना के संदर्भ में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

यह सही है कि आज आलोचकों की एक भीड़ हमारे सामने है परंतु उसमें जिनके पास अपनी नयी दृष्टि है अथवा जो परंपरा को विकसित व परिमार्जित करने या उसे कोई नया अर्थ देने में सक्षम है। और किसी भी साहित्येतिहास लेखक के समक्ष ऐसे ही लोगों को पहचानने की चुनौती मुख्य होती है। यह चुनौती कुछ कठिन भी होती है और जोखिमपूर्ण भी क्योंकि हमारे समक्ष अपने अतीत के चित्र पहले से बने बनाए मौजूद होते हैं जिनका आधार ले सकते हैं। इसके विपरीत अपने समय का कोई बना-बनाया स्पष्ट चित्र हमारे समक्ष नहीं होता। वह निर्माण प्रक्रिया से गुजरता हुआ निरंतर बनता बिगड़ता रहता है, इसलिए जब हम उसे कोई एक निश्चित रूप देने का प्रयास करते हैं तब विवादास्पद हो जाने का खतरा भी उठा रहे होते हैं। यह खतरा उठाना ही किसी भी इतिहास लेखक की सफलता का मानक बनता है। हम अपने वर्तमान का चित्र बनाते समय यदि वह खतरा नहीं उठा सकते तो अपने वर्तमान के साथ तो छल करते ही हैं भविष्य के साथ भी धोखाधड़ी करते हैं।

ऊपर जिस जोखिम की बात कही गई है वह जोखिम लगता है डॉ. निर्मला जैन उठाने से बचने का प्रयास करती रही हैं इसीलिए सातवें दशक और उसके बाद की आलोचना का चित्र प्रस्तुत करते समय उन्होंने कुछ ऐसे नाम छोड़ दिए हैं जो आज तो महत्वपूर्ण हैं ही कल भी महत्वपूर्ण होंगे। ऐसे नामों में कुछ नाम हैं जैसे—डॉ. मैनेजर पाण्डेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, रमेश कुंतल मेघ, नंद किशोर नवल, नरेंद्र मोहन, तारकनाथ बाली, परमानंद श्रीवास्तव, अशोक वाजपेयी आदि।

कुछ नाम छूटने के साथ-साथ डॉ. निर्मला जैन ने आलोचना में भी मुख्यतः कविता आलोचना को ही विषय के रूप में प्रमुखता दी है। यह सही भी है कि हिंदी आलोचना के अधिकांश सिद्धांत कविता संबंधी ही हैं परंतु नवगीत भी एक स्थापित काव्य विधा है। उसका आलोचना शास्त्र हालांकि अभी पूर्ण विकसित नहीं हो पाया है या अपनी सही पहचान नहीं बना पाया है परंतु इसके पीछे कवितावादियों का दुराग्रह रहा है। लेकिन आलोचना का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति से कम से कम इतनी अपेक्षा तो रहती ही है कि वह अतीत व वर्तमान की समस्त धाराओं को दर्ज करता चले। वे उसे पसंद हो अथवा नहीं। नवगीत और उसकी आलोचना का इस तरह उपेक्षित रह जाना खलने वाली बात है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खलने वाली बात यह भी है कि नाट्य समीक्षा और कथा समीक्षा को भी लेखिका ने संक्षेप में निपटा दिया है। बकौल लेखिका नाट्य समीक्षा और कथा समीक्षा में अभी इतना काम नहीं हुआ है कि उसका कोई स्पष्ट चित्र बन सके। जहां तक मात्रा की बात है तो वह सही है परंतु कम होने के बावजूद नाट्य समीक्षा एवं कथा समीक्षा में गुणवत्ता की इतनी कमी नहीं है कि उस पर ठीक से चर्चा भी न की जा सके।

एक और बात यह भी है कि इतिहास लेखक का एक उद्देश्य अतीत के उन पक्षों को सामने लाना भी होता है जो विस्मृति के गर्भ में समा गए हों। इस दिशा में भी लेखिका का कोई प्रयास नजर नहीं आता। बाबू गुलाब राय व इलाचंद्र जोशी जैसे नाम भी आलोचना के इतिहास में आज शामिल क्यों नहीं किए गए इस पर लेखिका मौन है। कुल मिलाकर देखें तो हिंदी आलोचना के इतिहास लेखन की दृष्टि से पुस्तक में अधूरापन है। भाषा व शैली के स्तर पर लेखिका ने जिस सहजता का परिचय दिया है उतनी ही सहजता से यदि इतिहास लेखन में विभिन्न धाराओं को ग्रहण किया होता तो पुस्तक का मूल्य और बढ़ जाता। फिर भी हिंदी आलोचना के इतिहास लेखन की दिशा में लेखिका का प्रयास सराहनीय कहा जा सकता है। □

पुस्तक : हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी/लेखिका : डॉ. निर्मला जैन/प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रा. लि./2/38, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-2/प्रकाशन वर्ष : 1992/पृष्ठ संख्या : 108/मूल्य : 70/- रुपए

निराला और मुक्तिबोध : चार लंबी कविताएं/नंद किशोर नवल/राधाकृष्ण प्रकाशन/2/38, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-2/पृष्ठ संख्या : 176/ 1993/मूल्य : 95/- रुपए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिंदगी फिर-फिर मेरे करीब

डॉ. रेखा रस्तोगी

यात्रा साहित्य में रुचि रखने वाले पाठक यात्रावृत्त से भिन्न अपेक्षाएं रखते हैं। उनमें से कुछ पाठक केवल शीर्षक या फोटो से प्रभावित होकर किसी स्थल विशेष की सुप्रचालनिक जानकारी चाहते हैं जैसे उस स्थान तक पहुंचने के क्या साधन हैं? कौन सा समय या मौसम उपयुक्त है? ठहरने आदि की क्या या कैसी व्यवस्था है? आदि आदि। कुछ पाठक जानकारी लेना चाहते हैं कि उन स्थलों में कौन-कौन से दर्शनीय स्थल हैं? तब वे इस संदर्भ में उन स्थलों का संक्षिप्त गाइडेड टूर पढ़ना चाहते हैं। जिससे वे वहां घूम कर और वहीं सब कुछ देखकर अपने मित्रों को केवल पढ़ा गया वर्णन ही नहीं, अपितु आंखों देखा हाल भी बताना चाहते हैं। कुछ सीमित संख्या के पाठक मात्र उस लेखक की कल्पनाशीलता से प्रभावित होना चाहते हैं। इस संदर्भ में विश्वमोहन तिवारी की पुस्तक 'जिंदगी फिर-फिर मेरे करीब' सीमा में बांधने वाले इन बंधनों से उसी प्रकार नहीं बंधी है जिस प्रकार जिंदगी एक या दो ढांचों में ही नहीं बंधी रह सकती। अपितु लेखक ने जो पढ़ा, सुना, देखा, भोगा या अनुभव किया, उसी को पुस्तक में संप्रेषित करने का सफल प्रयास किया है। इस यात्रावृत्त में लेखक ने देश और विदेश के कुछ स्थलों का प्रभावशाली वर्णन सोलह लेखों में संकलित किया है। इनमें विशेषतः दृष्टव्य यह है कि लेखक का प्रत्येक स्थल के प्रति पृथक पृथक दृष्टिकोण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहा है कि जैसे जिंदगी में हीरे से भी अधिक फलक हों। कुछ लेख प्राकृतिक सौंदर्य से सजे हैं तो कुछ वहां की सांस्कृतिक, सामाजिक परंपराओं-मान्यताओं से जुड़े हैं। कुछ विशुद्ध जनजाति की संस्कृति एवं सभ्यता को व्यक्त करते हैं तो कुछ औद्योगिक युग में पर्यावरण के बिगड़ते हुए संतुलन की मुख्य समस्या पर दृष्टिपात करते हैं। यह पुस्तक वर्णनात्मक तथा आत्मकथात्मक शैली में निबद्ध सी लगती है।

'सिक्किम के पांच खजाने' शीर्षक के पहले लेख में वहां के जनजीवन का अध्ययन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर किया गया है। सिक्किमवासी प्रकृति के पुज़ारी हैं। वे कंचनजंघा को अपने प्रिय रक्षक देवता के रूप में मानते हैं इसीलिए पर्वतारोहियों को इसके शिखर से पांच मीटर नीचे तक ही जाने की अनुमति देते हैं। कंचनजंघा का लेप्चा भाषा में सही उच्चारण 'खांगचेंटजोंगा' है, जिसका अर्थ है हिम की पांच मणियां अर्थात लेखक पांच चोटियों वाले कंचनजंघा की पांच मणियों को बहुमूल्य खनिज, औषधियां, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र और धर्मग्रंथ की संज्ञाएं देता है। लेखक ने जब वहां के लोगों में आपसी सौहार्द, सहयोग और शांतिप्रियता देखी तब उन्हें वहां के वस्त्रों के स्थान पर पांचवां खजाना माना है (पृ.14)। पाठकों के लिए यह एक रुचिकर जानकारी है।

लेख में प्रातःकालीन सूर्यरश्मियों से प्रतिबिंबित कंचनजंघा का कोमल और सुंदर मानवीकरण एक कविता के माध्यम से किया गया है—"... थोड़ी देर में देखता हूं/हल्की अरुणाई आभा में/उषा लगा रही है/कंचनजंघा को/चंदन का उबटन/हैरान हूं/कहां है सूरज/कहां से आया यह उबटन/अरे कंचनजंघा के कपोल/अरुणिम अरुणिम/ज्यों गोपियों के बीच/कृष्ण का हो आगमन/और ढंक लिए हों लाज ने/सबसे पहले राधा के कपोल (पृ. 181)। न केवल पर्वतीय प्रकृति की सुंदर अभिव्यक्ति है वरन् कविता और सौंदर्य का मनहर संगम है।

आर्किड जाति के पुष्पों के रंग, रूप, उनके परागीकरण के विचित्र ढंग आदि का वर्णन पाठक को अद्‌भुत जानकारी देता है। (पृ.21) प्रायः किसी यात्रा वर्णन में इतनी गहराई से किसी वस्तु या स्थान की विशद जानकारी नहीं मिलती है। क्योंकि कुछ पाठक संभवतया ऊबने लगता है किंतु इसका रोचक वर्णन न केवल किसी विषय-विशेष के जिज्ञासु व्यक्ति के लिए सार्थक है वरन् आम पाठक इसका आनंद ले सकता है। दृष्टव्य है कि ये जानकारियां रचना में रच बस गई हैं।

'रोम में महाकवियों के सम्मान' लेख में रोम की कला और संस्कृति का संदर्भ देते हुए लेखक ने वहां के लोगों की कला, साहित्य, रुचि को बड़े ही प्रभावशाली एवं रोचक ढंग से उभारा है। ऐसा वर्णन अन्य यात्रावृत्त में कम देखने को मिलता है। जैसा कि लेख के शीर्षक से पता चल जाता है कि रोम में कवियों, साहित्यकारों, कलाकारों को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है चाहे वे किसी भी देश के हों—"जब सड़क पार कर मैं सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए तैयार हुआ तो मैंने बाईं तरफ गली का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाम पढ़ा, उसमें लिखा था 'वाल्मीकि पथ' और मैं सहसा विश्वास न कर सका कि यह सम्मान हमारे ऋषि वाल्मीकि के लिए है (पृ.30)।

इसी लेख में कुछ रोचक प्रसंगों को उद्धृत करने से ऐसा विशेष आकर्षण आ गया है जो कहीं परीलोक का अहसास कराता है तो कहीं वहां की स्वच्छंद और उन्मुक्त सभ्यता की ओर इंगित करता है (पृ. 30, 31)।

'शाद सुक मिन्सिएम' लेख में रोम की यात्रा के एकदम बाद लेखक मेघालय की खासी जनजाति के मध्य पहुंचकर वहां की सभ्यता, संस्कृति में घुल-मिल जाता है। पुस्तक में यात्रा लेखों के क्रम को देखकर यह बड़ा अटपटा लगता है कि अभी हम अपने देश की भूमि पर विचरण कर रहे हैं कि तुरंत ही दूसरे लेख में विदेश पहुंचकर वहां की विकसित संस्कृति की बात करने लगते हैं और इसके पश्चात वे पुनः अपने देश की धरा पर ला पटकते हैं, संभवतः लेखक का यह अपना अनुभव रहा हो और आज के वेगवान जीवन की ओर इशारा करता हो, किंतु पाठक के लिए हो सकता है कि यह कलाबाजी खाने जैसा हो। लेखक ने खासी जनजाति के 'शाद तुक मिन्सिएम' नृत्य की, जिसका अर्थ वहां की भाषा में 'सुखी रहो आत्मा' है, बड़ी सूक्ष्मान्वेषणी दृष्टि से आंकते हुए उसे 'आध्यात्मिक नृत्य' की संज्ञा दी है। इस लेख में मेघालय के प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन मिलता है। कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं:—"खासी इसे शरीर या मन का नृत्य नहीं मानते, आत्मा का नृत्य मानते हैं, इसीलिए इसका अन्य नृत्य से मूलभूत रूप से भिन्न होना स्वाभाविक ही है। यह नृत्य देखने पर मुझे लगा कि यह शुद्ध नृत्य है, नृत्य को लगभग अमूर्त बना दिया गया है, इतना कि शरीर नृत्य करता नहीं दीखता, केवल आत्मा नृत्य करती है। इसे इतना शांत रचा गया है कि उसमें उत्तेजना के स्थान पर आत्मावलोकन ही है। भगवान की भक्ति का सच्चा मार्ग भी तो यही "आत्मानात्मनुसंधानम्" है।

'हम लोग' लेख के आरंभ में 'अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुंबकम" श्लोक के उद्धृत करने से लेख का उद्देश्य स्वयं ही व्यक्त हो जाता है। लेखक ने इस लेख में योरोपीय लोगों की उदारता और उनके उदात्त गुणों का वर्णन विभिन्न घटनाओं द्वारा आत्मकथा शैली में किया है (पृ. 42, 48, 49, 59, 60, 63)। अच्छा होता यदि लेखक ने इन देशों में मिले किन्हीं कटु अनुभवों का भी वर्णन किया होता क्योंकि औद्योगिकीकरण वाले इस काल में हमेशा उदार गुणों वाले व्यक्तियों का मिलना मुझे नितांत असंभव लगता है। किन्हीं पूर्वाग्रहों से ग्रसित प्रतिबद्धता की ओर लेखक का विशेष दृष्टिकोण रहा है।—मैंने बरतानियों की कर्त्तव्यनिष्ठा के विषय में, उनके ईमानदारी से कार्य करने के विषय में चर्चाएं सुन रखी थीं। वे यदि मुझसे उस पत्र में कहते कि मैं फौरन दूध के कूपन के लिए आवेदनपत्र भेजूं तब भी मैं उन्हें कर्त्तव्यनिष्ठ मानता और यदि वे कहते कि चूंकि जनवरी माह के दूध का लाभ मैंने अपनी लापरवाही से नहीं उठाया है, इसलिए हम उसके हकदार नहीं है, वह भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं अपने भारतीय अनुभवों के आधार पर मान लेता। किंतु ऐसी निःस्वार्थ सेवा तो 'भले' आदमी ही कर सकते हैं (पृ. 63)। वहां के समाज की सुव्यवस्था की ओर संकेत है। किंतु हमारे देश की सरकारी और सामाजिक कुव्यवस्था पर गहरा कटाक्ष है। 22 पृष्ठ के इस लेख में ऐसे प्रसंग दिए हैं जो आकर्षित और सम्मोहित करते हैं और साथ में जोखिमभरी (एडवेंचरस) यात्रा का रोमांचक दृश्य भी प्रस्तुत करते हैं। एक उदाहरण देखिए—''हम लोग जब गेपिंग घिल पहुंचे तब वहां भी लंदन के बस स्टैंड सरीखी लंबी क्यू लगी थी। ... यह गड्ढा दिखने में गड्ढा नहीं दीखता, लगता है पाताल जाने के लिए छेद है, जिसका पेंदा नहीं है। ... यह गड्ढा सतह पर कोई पांच मीटर लंबा चौड़ा था। किनारे पर एक घिर्री लगी थी जिसके ऊपर से मोटा रस्सा पड़ा था ... इतने में उस रस्से से खिंची बाल्टी भी ऊपर आ गई। ... इस बाल्टी में पानी के स्थान पर एक भला आदमी बैठा था।...

... जब बाल्टी में बैठकर (बाल्टी में घेर कर लटकाने की जगह कटी हुई थी) नीचे जाने लगा तो यह देख सांत्वना मिली कि उस स्थिति में नीचे देखते नहीं बनता था। घिल देखने में लग रहा था मानों पहाड़ी चट्टानों में जैसे कुएं सरीखा बना हो, बल्कि गुफा बनी हो जो क्षैतिज न होकर ऊर्ध्वाकार है। ... वाकई नीचे हॉकी मैदान के बराबर जगह थी।'' (पृ. 59, 60, 61)। लेखक की भोगी हुई यह अनुभूति निश्चित रूप से जोखिम भरे खेलों में रुचि रखने वाले युवाओं के लिए भी रोमांचकारी है।

योरोपीय यात्रा के पश्चात पुष्प घाटी, संजीवनी के प्रदेश में प्रवेश करने से पूर्व यहां निर्मल वर्मा का दृष्टांत उद्धृत करना मुझे ठीक लग रहा है—''जब हम किसी सुदूर यात्रा पर जाते हैं, आधी यात्रा पर पीछे छूटे हुए शहर की स्मृतियां मंडराती हैं। केवल आधा फासला पार करने के बाद ही हम उस स्थान के बारे में सोच पाते हैं, जहां हम जा रहे हैं (पृ. 15 ब्रेख्त एक उदास नगर)।'' किंतु लेखक के मस्तिष्क में अपनी यात्राओं की न तो पीछे छूटे हुए शहर की स्मृतियां मंडराती हैं और न वे उस स्थान के बारे में सोचते हैं जहां वे जा रहे हैं। वे अधिकतर उसी स्थान पर 'वर्तमानकाल' में रहते हैं। हां जहां उन्हें जाना होता है उसके विषय में वे पूरी तैयारी अवश्य करते हैं और यदि वे आवश्यक समझते हैं तब वे उस तैयारी का समुचित वर्णन भी करते हैं जैसा कि पुष्प घाटी संजीवनी के प्रदेश में देखा जा सकता है। लेखक संवेदनशील होने के साथ-साथ प्रकृतिप्रेमी भी हैं। यदि वे अतीत या भविष्य का सोचते भी होंगे तब भी उनका घनिष्ठ संबंध वर्तमान से होता है। यही कारण है कि उस लेख में लेखक का दृष्टिकोण प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ यह भी व्यक्त करने का रहा है कि प्रकृति की समृद्धि और संरक्षण आपस में किस प्रकार जुड़े हैं। लेख में उद्धृत कश्मीरी कहावत—''अंत पोषि तेलि वन पोषि येलि'' का अर्थ है अन्न तब पोषण करता है जब वन का पोषण होता है अर्थात् बिना वनों के अन्न नहीं होगा, यह बात हमें आज वनों की अंधाधुंध कटाई के बाद हुए दुष्परिणामों से समझ आ रही है, जबकि सदियों पहले हमारे ऋषियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ने यह बात कही थी। हम आज वन विनाश के दुष्परिणामों को जानते हुए भी शहरीकरण के चक्कर में वनों का शोषण किए जा रहे हैं। इस कारण आने वाली हमारी पीढ़ियों को किन विकट भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, हम इस यथार्थता और सच्चाई को नजरअंदाज किए हुए हैं। लेखक का पर्यावरण के बिगड़ते संतुलन के प्रति क्षोभ इस लेख में स्थान स्थान पर अभिव्यक्त होता है।

इसी लेख में गढ़वाल क्षेत्र में पाए जाने वाले वनस्पति फूल तथा पक्षियों का वर्णन गहरी जानकारी के साथ किया गया है। उनके रंग, रूप, गुण, आकार आदि पर अन्वेषणी दृष्टि की छाप है। पक्षियों और फूलों के रेखाचित्र लेख में अपनी विशेष पहचान बनाते हैं। यह लेख वनस्पतिशास्त्र और जंतुविज्ञान के शोधविद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। लेखक का प्रकृति प्रेम संवाहित (कंटेजियस) है, और प्रकृति के संरक्षण की प्रेरणा देता है।

लेख में एक बात विशेष रूप से खटकती है। इस लेख का शीर्षक ''संजीवनी बूटी का प्रदेश'' है। इस दृष्टि से हमें लेख में उस संजीवनी बूटी की संतोषजनक जानकारी नहीं मिलती, जिसका वर्णन और उपयोग वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण मूर्छा के समय हुआ था। अच्छा होता यदि लेखक अपने पाठक को संजीवनी बूटी से अच्छी तरह परिचित कराते। अपितु सच तो यह है कि संजीवनी की जानकारी औषध जगत के लिए अद्भुत जानकारी होती। आज विदेशों (विकसित देशों) में वनस्पति से बनी औषधियों के उपयोग में अधिक विश्वास किया जाने लगा है तब संजीवनी भारत की अर्थव्यवस्था के लिए 'संजीवनी' बन जाती।

'स्ताकहोल्म की सैर, छोटा सा स्मृति पत्थर' यात्रा लेख मानवीय विकास के पहले चरण से अंतिम चरण तक का परिचय देता है। आरंभ में ही उद्धृत आधुनिकता का बीज-आरोपण करने वाले कवि गुनार ब्योरलिंग की कविता—बस/शब्दरहित शब्द ही करेगा बात/हमारी तरफ से मौन मिलेगा तुम्हें/डगर में/स्मृतियां बतिआएंगी अब से, (पृ. 95) से परिलक्षित है कि स्वीडन में अत्यधिक आधुनिकतापूर्ण जीवन और औद्योगिकीकरण की सभ्यता के साथ मानव संवेदनशीलता को आज भी बरकरार रखे हुए है। लेखक ने यह देखा है कि स्वीडन न केवल आज वरन् पौने चार सौ वर्ष पहले भी औद्योगिक क्षेत्र में अत्यंत विकसित देश था। उस समय के स्ताकहोल्म में निर्मित एक 74 तोपी युद्धपोत अपनी प्रथम यात्रा में डूब गया था। उसे बिल्कुल वैसा ही पानी से निकाल कर 'वासा' म्यूजियम में रखा हुआ है। यह वासा जहाज ही नहीं प्रदर्शन के लिए रखा है हालांकि इंजीनियरी उद्योग की वह एक अप्रतिम उपलब्धि तो है ही। ... उस युद्धपोत में सुंदर तथा कलात्मक वस्तुएं भी मिलीं। इन पर पुराने टेस्टामेंट, 'गोथिक' और 'रोमन' संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखती है। ऐसा लगता है कि इन सुंदर तथा कलात्मक वस्तुओं का ध्येय युद्धपोत के सैनिकों के जीवन दर्शन के लिए आवश्यक आदर्श जैसे निष्ठा, अनुशासन, साहस, पाप-पुण्य, राष्ट्र तथा राजा के सम्मान आदि के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामने रखना भी था (पृ. 101, 102)। उस समय भी सैनिकों की मनोवैज्ञानिकता का विशेष ध्यान प्रशासन और समाज में रखा जाता था, एक अच्छी और नई जानकारी देता है। किंतु—नाविक की तनख्वाह मुख्यतया खाना-पीना (शराब) तथा कपड़े के रूप में होती थी। उसे सोने के लिए बिस्तर भी नहीं मिलता था (पृ. 102, दू. अनु.), दासता का दैन्य भाव प्रकट करता है।

इस लेख में पूरब-पश्चिम के दर्शन के मूल भेद को पृष्ठभूमि पर रखते हुए बहुत ही सुंदर ढंग से वहां के लौकिक प्रेम का काव्यात्मक वर्णन किया गया है—''पहाड़ियों पर कुछ जोड़े स्की को बर्फ में गाड़ कर सूर्य सेवन कर रहे थे, लग रहा था स्निग्ध पहाड़ियों ने अपने यौवन भरे कोमल सुंदर शरीर को विमुक्त रूप से सूर्य को अर्पण कर दिया था। उसी समय लगा कि जैसे वह हिमसुंदरी मुझसे बोली—ऐ पूरब वाले हमारे इस आत्मसमर्पण को तुम और शुद्ध और पूर्ण मानोगे कि जब मैं इसी विमुक्त रूप से स्वच्छंद मुस्कान सहित प्रेम पर स्वयं का अर्घ्य चढ़ा दूंगी और तब भी नहीं मानोगे तो देखना जहां जहां मैंने अपना अर्घ्य चढ़ाया है, कुछ समय में वहां फूल ही फूल होंगे, वे लावण्यमय मुस्कराते सुख बिखेर देंगे पृ. 107। लेखक के कवि मन ने पहाड़ियों के द्वारा लाक्षणिक शैली में लौकिक उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

स्वीडिश कवयित्री मारिया की कविता—खोजती हूं गुलाब/पाती हूं बर्फ/खोजती हूं बर्फ/पाती हूं गुलाब/जब कुछ भी नहीं खोजती हूं/पाती हूं दोनों/गुलाब और बर्फ/—लेख में मानों प्राण डाल देती है। स्वीडन की यात्रा के समय लेखक ने नोवेल पुरस्कृत स्वीडिश कवि पेर लागेरक्विस्ट की कविता को उद्धृत किया है—''जिसे मैं जी चुका वह पलट कर नहीं आता। ... लेकिन जिंदगी फिर मेरे करीब है (पृ. 108)।'' का याद आ जाना संभवतः पुस्तक के शीर्षक की प्रेरणा रहा है। किंतु उन्होंने इस शीर्षक में 'फिर फिर' कहकर उसकी प्रभावशीलता को बढ़ा दिया है।

'जय गंगे' शीर्षक लेख के लिए लेखक के स्वयं के शब्द—'जय गंगे' गोमुख की यात्रा धार्मिक न होकर सांस्कृतिक है यद्यपि उसका शीर्षक धार्मिकता की ध्वनि देता है (पृ. 8)। हमारी धार्मिक चेतना और सांस्कृतिक चेतना के संबंध को दर्शाते हैं ''पता नहीं गंगा में और हिमालय में क्या आकर्षण शक्ति है कि कितना भी दर्शन क्यों न कर लें 'थोड़ा सा और' की तीव्र अभिलाषा बनी रहती है। कुछ ऐसी ही जैसी शिशु की मां के प्रति'' (पृ. 112)—पंक्तियों में गंगा के प्रति भारतीयों के आदर, सम्मान के भाव व्यक्त होते हैं।

'जय गंगे' लेख यद्यपि धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं तथापि गंगा और हिमालय संबंधी पौराणिक कथाओं को वैज्ञानिक ढंग से तथ्यपूर्ण समझाने की कोशिश की गई है। त्रिपथगा गंगा गोमुख आदि को इसी दृष्टिकोण से परखा गया है। गंगा भारतीय संस्कृति की प्रतीक है, जो छः मुख्य गंगाओं से मिलकर चली है—''धौली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गंगा, अलकनंदा, मंदाकिनी, पिंदार गंगा, विष्णु गंगा और भगीरथी ... (पृ. 114)। सामान्य पाठक को भौगोलिक जानकारी देती है। गंगा शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लेखक ने "पहले गंगा शब्द का अर्थ ही नदी था, निषादों की भाषा में जिसे आर्यों ने अपना लिया अन्य शब्दों और परंपराओं की तरह।" (पृ. 115), लिखकर, अत्यंत संक्षिप्त में यह बतला दिया कि भारतीय संस्कृति निषाद, किरात, द्रविड़ आर्य से मिलकर बनी है। और उसी के संश्लिष्ट रूप में, आज भारत की अपनी पहचान गंगा है। इस बात को प्रमाण सहित पुष्ट किया है और विडंबना यह कि यही गंगा माता आज के औद्योगिकीकरण की शहरी सभ्यता के कारखानों, गंदे नालों, मलमूत्र से प्रदूषित हो रही है, तब हम भारतीयों के लिए निश्चित रूप से क्षोभ और शर्म की बात है। प्रस्तुत लेख में लेखक को गंगा के प्रदूषित होने का क्षोभ इतना ग्रसित है, इतनी वेदना है कि प्रदूषण की इस भयंकर समस्या को उसने किस वैज्ञानिक ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है—एक उदाहरण देखिए—"गंगा का वाहन मकर है। गंगा के घड़ियाल अपने किस्म के विशिष्ट जल जीव हैं और अब उनका अस्तित्व खतरे में है। यह स्वाभाविक लगता है कि एक नदी का वाहन मकर हो ... बिना मछलियों के मगर नहीं रह सकते। प्रदूषित पानी में मछलियां नहीं रह सकतीं। इसलिए प्रदूषित पानी में मगर भी नहीं रह सकता और तब गंगा भी नहीं चल सकती ... हमें यदि गंगा को जीवंत रखना है तब उसे प्रदूषण से बचाना आवश्यक है (पृ. 114-115)" यह कथन एक नागरिक को प्रदूषण की सोच के लिए जागरूक करने वाला है।

जब कोई संज्ञा शब्द, जैसे गंगा (नदी), एक विशेष सर्वनाम जैसे भगीरथ वाली गंगा का रूप ले ले तब ऐसा उस वस्तु या व्यक्ति के अत्यंत अप्रतिम गुणों के कारण ही हो सकता है। क्योंकि जिस गंगा शब्द का अर्थ ही नदी होगा, तब मात्र नदी कहने से जिस विशिष्ट नदी का बोध होता होगा, वह नदी वास्तव में सभी के हृदय में स्थापित होगी। ... भारतीय संस्कृति ने गंगा के प्रति आभार प्रकट किया, उसे सम्मान दिया, पूज्य बना दिया। ऐसा अन्य देशों में नहीं होता। यह भारतीय संस्कृति की प्रकृति के महत्व को मान्यता देते हुए प्रकृति को—गंगा को—मां का रूप देने की समझ का ही परिणाम है। प्रकृति के साथ एक प्रतियोगी सा व्यवहार करने की ... प्रवृति भारतीय नहीं वरन् प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने की परंपरा भारतीय रही है (पृ. 115) भाषा और विज्ञान की ओर लेखक का सहज झुकाव है जिससे लेख को एक नया तथा जीवंत आयाम मिलता है।

लेख में वहां के फूल और पक्षियों का वर्णन बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। घुड़साल शीर्षक कविता "घोड़ा ताकतवर जानवर है ...।" हालांकि सशक्त है किंतु इस लेख में बिल्कुल नहीं जमी। जबकि इसी लेख में 'जय गंगे' शीर्षक अन्य कविता—पूस की चांदनी में/देवदारु की अग्निशिखा से। ... गंगा की अनंत लहरें मनहर निहारना अपलक/अरुणोदय पर .../प्रशंसनीय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीली गुफा के लेख की चर्चा करने से पूर्व साहित्यकार निर्मल वर्मा की पुस्तक 'पेरिस एक स्टिल लाईफ' (चीड़ों पर चांदनी पुस्तक) के एक लेख में लारेंस डरेल को उद्धृत किया गया है, उसी उदाहरण को इस लेख के पूर्व उद्धृत करने की उपयुक्तता समझ रही हूं। ''यात्राएं हमें केवल बाहर के स्पेस में ही नहीं ले जातीं, उन अज्ञात स्थानों की ओर भी ले जाती हैं, जो हमारे भीतर हैं।'' यह लेख इस बात की पुष्टि भी करता है और 'नीली गुफा में' यात्रा लेख पाठकों के अंतर में भी प्रवेश करता है। 'नीली गुफा में' एक समुद्री गुफा के अलौकिक सौंदर्य का ऊर्ध्वगामी वर्णन है। यह गुफा तिरेनियन समुद्र में है। सौंदर्य की देवी वीनस की जन्मस्थली कही जाने वाली इस गुफा के चारों ओर के समुद्र को देखकर उस समय लेखक को कृष्ण की याद आ जाना बड़ा अप्रासंगिक लगता है। जौहरियों और स्त्रियों के लिए ''कप्री द्वीप में बेजोड़ मूंगे का पाया जाना (पृ. 130)'' एकदम नई जानकारी है। संपूर्ण लेख उत्सुकता जगाकर और अधिक जानने के लिए प्रश्नचिह्न छोड़ जाता है।

'मुर्गे ने मां सूरज को कैसे जगाया' यात्रा संस्मरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। खासी जाति में अत्यंत लोकप्रिय लोककथा को उद्धृत करके लेखक अपने यात्रावृत को स्वस्थ और मनोरंजनपूर्ण बनाए रखा। वहां की मातृप्रधान सामाजिक व्यवस्था आज के महानगरों के नारी मुक्ति आंदोलन के प्रचार को थोथा साबित करने में एक प्रामाणिक दृष्टांत है।

'तेर्मे दि काराकल्ला' यात्रा लेख में रोम के खंडहरों से वहां की प्राचीन सभ्यता संस्कृति के कुछ नमूने बड़े-बड़े स्नानागारों (110 ई. से 216 ई. तक के) का वास्तुशिल्प की दृष्टि से जीवंत वर्णन किया गया है (पृ. 141)। लेख के आरंभ में ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धृत श्लोक (पृ. 139) लेख की सामग्री से तिलमात्र मेल नहीं खाता है।

लीजिए रोम के खंडहरों से सीधे हम आ गए गढ़वाल की घाटियों में और रम जाते हैं वहां के फूल और पक्षियों में। लेखक की दृष्टि इस यात्रा में फूल, वनस्पति और पक्षी पर ही अधिकतर केंद्रित रहती है जिससे पाठक को इन सब के बारे में काफी रोचक जानकारी हो जाती है और वह यात्रा संबंधी अन्य विवरण जानबूझ कर नहीं देता क्योंकि लेखक का लहवा मिन्हों अर्थात 'जंगली फूल' पर फोकस अधिक तीव्र है जिसे वह किसी भी शर्त पर 'डिफ्यूज' या डी-फोकस नहीं करना चाहता।

इस यात्रा पुस्तक के मध्य में लिखा गया शीर्षक 'लहवा मिंदो' (पृ. 147) पर सहसा पाठक की आंख क्षण भर को जिज्ञासा लिए रुक जाती है, उधर फड़फड़ा कर 'लहवा मिंदो' का उच्चारण संगीतमय ध्वनि के साथ करता है तो प्रतीत होता है कि अवश्य ही यह कोई कोमल, कमनीय, सुंदर चीज होगी। और है भी यही। गढ़वाल के पर्वतीय क्षेत्र में खिलने वाला जंगली फूल जिसे स्थानीय भाषा में 'लहवा मिंदो' कहते हैं। इसमें सबसे विचित्र बात यह है कि इस फूल के विषय में वहां एक गड़रिए ने बताया। इससे लेखक ने निष्कर्ष निकाला—''जो प्रकृति से प्रेम करता है उसके लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकृति लहवा मिंदो की तरह सुंदर है, जो प्रेम नहीं करता उसके लिए जंगली फूल है (पृ. 151)। लेख वहां के निरक्षर गड़रिए जैसे निवासियों का एनसाइक्लोपीडियाई ज्ञान आनंद भरे अचरज में डाल देता है। पर्वतीय प्राकृतिक वातावरण में जन्मे पले, बढ़े लोगों को महानगरीय सभ्यता या भूख नहीं छुई है वे अपने में प्रसन्न हैं किंतु महानगर से गए किसी शिक्षित शहरी व्यक्ति से विदेशी शराब की बोतल पा जाना उनके लिए अमूल्य निधि पाने की मनोवृत्ति को लेखक ने गड़रिए मदन सिंह के माध्यम से अच्छा दर्शाया है। यह घटना पाठक के लिए लेख के अंत में लिखे जाने वाले 'टेल पीस' की तरह रोचक है।

गढ़वाल से अगले लेख में पहुंचिए सैनफ्रांसिस्को (अमरीका) की पहाड़ियों में। 'सेयरा नेवाडा की नवोढ़ा' शीर्षक के लेख में लेखक की सूक्ष्मान्वेषी अनुभूति ने नेवाडा के पहाड़ों से गिरते प्रपात के प्राकृतिक सौंदर्य की तुलना नववधू के झीने घूंघट से की है। यद्यपि प्रपात का नाम ही 'ब्राइडेल वैल', 'नववधू का घूंघट' है। उसके सौंदर्य को किसी काव्यात्मक शिल्प के साथ प्रस्तुत किया गया है इसका उदाहरण देखते ही बनता है— ऊपर से पानी की धार ओढ़नी की तरह एक सी गिर रही थी और गिरने के बाद सारा पानी उछल रहा था। आश्चर्य यह था कि वह पानी वैसे ही ऊपर उठ रहा था जैसे नववधू की अल्पपारदर्शी रेशमी ओढ़नी हवा में ऊपर की ओर उठती है (पृ. 167)। यह रूपक यात्रावृत में सुंदर बन पड़ा है।

इस लेख में लेखक ने बतलाया कि अमरीका जैसे प्रजातंत्रीय विकसित देश में 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के आदर्श वाक्य का बखूबी पालन किया जाता है (पृ. 166)। लेखक को वहां ऐसा सुखद अनुभव हुआ होगा, क्योंकि 'बिन भय होय न प्रीति' के सिद्धांत के अनुसार सरकारी नियमों, कानूनों का उल्लंघन करने पर वहां दंड भी तत्काल ही भुगतना पड़ता है। लेखक की वहां की यह अनुभूति भारतीय कानून व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करती है। लेखक के लिए यात्राएं भी जीवन की एक सक्रिय कला है, उसे उनमें भी अध्यात्म नजर आ जाता है जैसा कि 'सियरा की नवोढ़ा' में अथवा उनके 'कलोन' के कथीइल के फोटो से भासित होता है।

'अपातानी घाटी की कुरूप महिलाएं' लेख में अरुणाचल की अपातानी जनजाति के विषय में लेखक ने कहा है कि बर्बर जाति हमेशा सभ्य जाति को लूटती मारती चली आई है, तब भी अपातानी की घाटी में इन जनजाति के परिश्रमी और कुशल किसान लोगों ने उस परिवेश में सबसे पहले चावल की गीली खेती सफलतापूर्वक की है। स्वतंत्रतापूर्व तक भी वे आसपास की वन्य जातियों के आक्रमणों के शिकार जब तब होते रहे हैं। उनके आक्रमण से अपनी लड़कियों, महिलाओं को बचाने के लिए उनकी साज-सज्जा कुरूप ढंग से की जाने लगी थी—'जब मैंने देखा तो विश्वास न कर सका, प्राकृतिक रूप से तो वे बहुत सुंदर थीं। गौर वर्ण, चेहरे पर लालमी, बड़ी आंखें अन्य पूर्वांचलियों की अपेक्षाकृत पतले होंठ तथा लंबी नासिका, काले बाल किंतु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने नाक में दोनों तरफ बजाए हीरे या चमकदार लौंग के बड़ी-बड़ी काली चकतियां पहन रखी थीं। चेहरे को कुरूप कर देने वाले गुदने गुदवाए थे, ललाट से लेकर नासिकाग्र तक एक काली लकीर सुंदर ठोड़ी पर पांच खड़ी काली लकीरें ... (पृ. 171)। ये पंक्तियां उन स्त्रियों के प्रति करुणा उत्पन्न करती है।

एक जिज्ञासा होती है कि जनजाति में प्रायः मातृप्रधान सत्ता देखी गई है तो क्या इस अपातानी जनजाति में मातृसत्ताप्रधान समाज नहीं है? या यह निरंतर आक्रमणों से निकल पितर सत्ताप्रधान हो गया। इस विषय पर भी लेखक कुछ जानकारी देते तो उपयुक्त होता। ठीक वैसे ही जैसे प्रसिद्ध यायावर राहुल सांकृत्यायन ने 'वोल्गा से गंगा' कहानी संग्रह की 'अमृताश्व' कहानी में मध्य एशिया में पामीर के पठार की क्रोड में पल्लवित तत्कालीन मानवीय सभ्यता के विकास पर सर्वांगीण रूप से प्रकाश डाला है ... "मानवीय सभ्यता गोचर चरागाहों की अवस्था में पहुंच रही थी। आए दिन होने वाले युद्धों के ही कारण अब परिवार की सत्ता स्त्री माता के हाथ से निकल कर बलिष्ठ पुरुष पिता के हाथों में आ रही थी ...।"

इस लेख में अरुणाचल की सामाजिक, सांस्कृतिक झलकियां भी दी है। घास से बने नमक को वहां खाना जहां एक विचित्र जानकारी है, वहीं वहां के निवासियों का वनस्पति से अत्यधिक लगाव भी प्रदर्शित करता है। क्योंकि नमक प्रायः चट्टान या समुद्र के पानी से निकाला जाता है। वहां मनाए जाने वाले मोरंग उत्सव पर उदारमना आतिथ्य की शराब और मांस का, हम शहरी लोगों की भाषा में जंगली कहे जाने वालों का अनुशासनपूर्वक खाना खिलाना आज सभ्य शिक्षित कहे जाने वाले समाज पर तीखा गहरा व्यंग्य है। जैसे कि आम वैवाहिक अथवा अन्य उत्सवों पर देखा जा सकता है।

'सोने के सींग वाला गैंडा' में लेखक की दृष्टि असम के प्रतीक एक-श्रृंगीय गैंडे पर है। इस लेख में आज के लालची स्वार्थी लोगों द्वारा वन्य जीवों का चुपके चोरी से शिकार करने का दुष्प्रभाव गैंडे जैसे अद्भुत जीव के माध्यम से किया गया है। गैंडा जिससे हाथी शेर जैसे ताकतवर जंगली जानवर भी टक्कर नहीं लेते क्योंकि उसकी शारीरिक बनावट बिल्कुल 'टैंक' जैसी मजबूत होती है, किंतु चालाक और चोर मानव अपने स्वार्थ के लिए इस जानवर को गोली या बिजली के करेंट वाले तार से मार देते हैं, मात्र इस लालच में कि गैंडे की सींग सोने के भाव से बिकते हैं। इस कारण गैंडे की नस्ल लुप्त न हो इसी के प्रयोजन से लिखे लेख में दूरदृष्टि संपन्न लेखक ने वन्यप्राणियों के संरक्षण के प्रति अपना कर्त्तव्य निष्ठा का बोध कराया है। इसी लेख में लेखक का दूसरा दृष्टिकोण जंगलों के कट जाने के क्षोभ को लेकर है। उनका यह कहना—"कि वृक्ष वर्षा से धरती की उपजाऊ मिट्टी की परत की रक्षा करते हैं। जब वृक्ष कट गए तब वह उर्वरा मिट्टी वर्षा का पानी काटकर बहा ले जाती है और उर्वरक परत स्थानों-स्थानों पर धुल गई है। इसीलिए एक तो उस स्थान पर अब दुबारा वनस्पति उगाना अत्यंत कठिन हो गया है तथा दूसरे बाद में अब उर्वरा मिट्टी के स्थान पर रेत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और पत्थर आते हैं (पृ. 183)।'' भविष्य में आने वाली विभीषिका से बचने की चेतावनी है।

लेख में पहाड़ों पर भी शहरीकरण के लक्षण पहुंच गए हैं। इसी बात को लेकर लिखी लेखक की कविता भौतिक विसंगतियों की ओर इंगित करती है—''कहां है वे पहाड़/जो हर डायनामाइट पर देते हैं दहाड़/अब तो हर पहाड़/देता है आमंत्रण कि बनाओ मुझे एक हिल रिसोर्ट।'' भारतीय बुद्धिजीवियों पर भी तीखा व्यंग्य करती है।

'नांगखिलैम के जंगल में' लेखक वहां की पांच हजार वर्ष पुरानी वन परंपरा के विषय में बताते हैं कि उच्च पावन वन के अंदर प्रत्येक को प्रवेश नहीं मिल पाता है। उस वन की लकड़ी, फूल पत्ती, फल कुछ भी आम वृक्षों की भांति प्रयोग में नहीं लाए जा सकते हैं। पूरे विश्व में वनों के प्रति इतनी आस्था, श्रद्धा, निष्ठा केवल वहां की खासी जाति में ही देखने को मिलती है। लेख के माध्यम से वनों के प्रति इतनी श्रद्धा की विचित्र जानकारी पाठक के लिए अद्‌भुत और अनोखी है।

एक गाड़ी के रद्द होने पर भी यात्रा का सा आनंद ले सकता है यह पुस्तक के अंतिम लेख 'मजा इंतजार में' अच्छी तरह देखा जा सकता है। बस, रेल या हवाई जहाज का देर से आना या किन्हीं कारणों से उसके पहुंचने का कार्यक्रम रद्द हो जाने पर अगली उड़ान के लिए इंतजार करते यात्री को जो बेचैनी होती है उन पलों का कटु-मृदु अनुभव संवेदनशील व्यक्ति पर अंकित हो जाता है। बस वही कुछ इस लेख में एयरपोर्ट पर अपनी फ्लाईट के इंतजार में लेखक ने अपनी अनुभूति रसपूर्ण ढंग से की है। छोटे से इस लेख में एक कविता (आत्म लिप्त) सुंदर बन पड़ी है। ''कृष्ण का चित्र देखते ही/एक बालक/हाथों की बांसुरी मुद्रा दे/नाचने लगता है/उसे देखकर/उसकी मां के सिवाय/कोई भी नहीं मुस्कराता। (पृ. 213)'' जो कि इस एअरपोर्ट के मेरे प्रतीक्षागार में प्रत्येक व्यक्ति में आत्मलिप्त होने की ओर इंगित करती है।

और अंत में एक हास्य व्यंग्य का पुट—''इतने में देखा एक स्वस्थ और चुस्त महिला बढ़िया सलवार कमीज पहने बड़ी शालीनता से चली आ रही थी और इस तरह से मुआयना कर रही थी जैसे कोई डाक्टर अपने वार्ड का करता है ... थोड़ी देर में वह अधिकारिणी अपने हाथ में स्वच्छता उपकरण (झाड़ू) इस शान से लेकर चली आ रही थी जैसे डाक्टर अपना स्टैथोस्कोप या ब्लैक कैट अपनी स्टैन गन (पृ. 214)।''

पाठक को हास्य का वही आनंद और रस दे जाता है जो सबरस भोजन के पश्चात 'रजनीगंधा' की मीठी सुपारी के कुछ दाने मुंह में डालने पर मिलता है।

यद्यपि इस पुस्तक के सारे लेख विगत उन्नीस बीस वर्षों के दौरान की गई यात्राओं पर आधारित हैं और जिस ढंग व क्रम से वे इस पुस्तक में रखे गए हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये सारी यात्राएं एक योजना बनाकर नहीं की गई थीं और यह सच भी है, किंतु इन सारे पुष्पों को जो एक सूत्र में पिरोता है वह है लेखक का जीवन और जीवनदर्शन। ऐसा मात्र हमें राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य में देखने को मिलता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। पुस्तक के अध्ययन से जहां भौगोलिक, वानस्पतिक, प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, देश विदेश, पर्वतीय जनजातियों, जीव-जंतु संबंधी जानकारी बहुत ही अधिक मिलती है। वहीं उसमें भाषा का आवश्यकता से अधिक तीव्र मंथर प्रवाह अवरोध पैदा करता है। पुस्तक की भाषा पर कुछ शब्द कहना यहां आवश्यक लगता है। निःसंदेह पुस्तक की भाषा में 'चीड़ों पर चांदनी' (निर्मल वर्मा) की सी भाषा की स्निगधता और उज्ज्वलता नहीं है। यह तो जीवन से जूझते हुए एक इंजीनियर और वायुसैनिक की भाषा है जो या तो निर्माण कार्य की ओर अधिक ध्यान देता है या युद्ध। जीवन भी एक धर्मक्षेत्र-कर्मक्षेत्र है की तैयारी की तरफ। इस बात से समझौता करने पर पाठक को जहां पुस्तक की पठनीयता तथा रसानंदनीयता, बहुलता में मिलती है वहीं उसे प्रेरणा भी मिलती है जो कि एक वांछनीय गुण भी माना जा सकता है। राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में ''घुमक्कड़ की अपनी यात्रा किस रूप में लिखनी चाहिए इसके लिए नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। उसे वास्तविकता को सामने रखते हुए जिस शैली में इच्छा हो, लिपिबद्ध कर देना चाहिए ... । यात्रा वर्णन स्वयं एक उच्च साहित्य का रूप ले सकता है'' (घुमक्कड़ शास्त्र)। यह पुस्तक उच्च साहित्य का एक रूप है, इसमें संदेह नहीं।

यात्रा साहित्य के लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, विद्यानिवास मिश्र, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, कुबेर नाथ राय आदि के नामों की श्रृंखला में विश्व मोहन तिवारी का नाम श्रृंखला की एक कड़ी को आगे बढ़ाता है। अतएव जिंदगी फिर फिर मेरे करीब है पुस्तक यात्रा साहित्य में कीर्ति स्तंभ है। यह पुस्तक युवा से वृद्धावस्था तक के पाठकों के लिए पठनीय होने के अतिरिक्त चिंतनीय, मननीय और रसानंदनीय है।

पुस्तक को पर्यटन मंत्रालय का राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार इसी वर्ष मिला है।

जिंदगी फिर-फिर मेरे करीब/विश्व मोहन तिवारी/भागीरथ सेवा संस्थान/नया राजनगर/गाजियाबाद/पृ.सं. 220/मूल्य 97/- रुपए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रचनाकार

रामनारायण उपाध्याय	हिंदी के महत्वपूर्ण लेखक। लोकसाहित्य पर विशेष काम। देश-विदेश की साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्राएं। संपर्क : ब्राह्मणपुरी खंडवा (म.प्र.)
प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी	हिंदी, संस्कृत, बांग्ला के महत्वपूर्ण लेखक। साहित्यिक प्रतिनिधि के रूप में विदेशों का भ्रमण। भाषा विज्ञान के आधिकारिक विद्वान। सचिव, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली।
डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर	मलयालम भाषी रचनाकार। दक्खिनी हिंदी के साहित्य का अध्ययन अनुसंधान। रीडर (हिंदी) पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान, केरल विश्वविद्यालय।
डॉ. गंगा प्रसाद विमल	महत्वपूर्ण हिंदी लेखक, कवि, कथाकार व आलोचक। साठोत्तरी हिंदी साहित्य के सुपरिचित रचनाकार। अनेक कृतियों का देश और विदेश की भाषाओं में अनुवाद। निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, आर.के. पुरम, नई दिल्ली।
लल्लन प्रसाद व्यास	विद्वान लेखक व साहित्यकार। विश्व हिंदी के प्रचार-प्रसार में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

	महत्वपूर्ण योगदान। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में कई बार शिरकत की। सी-13 प्रेस इंकलेव, नई दिल्ली।
गोविंद सिंह	युवा लेखक, पत्रकार। देश-विदेश की महत्वपूर्ण साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रति जागरूक। संपर्क : जे एण्ड के-128 डी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली।
डॉ. रामप्रकाश सक्सेना	कथा, व्यंग्य, एकांकी, आलोचना, लेखन के विषय। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन। संपर्क : ए-12 एच.आई.जी. हाउसिंग बोर्ड कालोनी, त्रिमूर्ति नगर, नागपुर।
डॉ. कामता कमलेश	हिंदी के प्रचार-प्रसार में पिछले दो दशकों से संलग्न। विदेशों में हिंदी का अध्यापन। हिंदी की वैश्विक स्थिति पर काम। जे.एस. हिंदू कालेज, अमरोहा में हिंदी के अध्यक्ष।
डॉ. भक्तराम शर्मा	विश्व हिंदी के प्रचार-प्रसार से संबद्ध। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं। विदेशी हिंदी विद्वानों के अवदान पर महत्वपूर्ण काम। संपर्क : 13/236 सारस्वत भवन, गीता कालोनी, दिल्ली।
डॉ. ओदोलेन स्मेकल	कविताओं के सृजन द्वारा इन्होंने हिंदी में मौलिक रचनात्मक कार्य का आरंभ किया। हिंदी के प्रति विशेष अनुराग इनकी पहचान है। आजंकल चेंक दूतावास (नयी दिल्ली) में कार्यकारी राजदूत हैं।
डॉ. रुपर्ट स्नेल	स्कूल आफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज लंदन विश्वविद्यालय में हिंदी के रीडर। हिंदी संगोष्ठियों में शिरकत।
डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय	देश विदेश की साहित्यिक गतिविधियों के प्रति सचेत रचनाकार। विदेशों में हिंदी का अध्यापन। संपर्क : 21 रेजीडेंसी रोड, सिविल लाईंस, जबलपुर, म.प्र.।
डॉ. तिलक राज चोपड़ा	विद्वान लेखक। इलाहाबाद, कील, स्टाक होम, बॉन और फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालयों में संस्कृत-हिंदी और तुलनात्मक धर्म विज्ञान का अध्यापन। आजकल फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय में अतिथि प्राध्यापक।
जानकी प्रसाद सिंह	हिंदी में लेखन। सूरीनाम हिंदी परिषद के अध्यक्ष।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरिमोहन शर्मा	विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु सतत प्रयत्नशील रचनाकर्मी।
सुन पाओ काङ	कई हिंदी कहानियों व उपन्यासों का चीनी भाषा में अनुवाद। चाइना रेडियो इंटरनेशनल में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।
डॉ. ब्यौर्नर वेस्तफाल	हम्बोल्ट विश्वविद्यालय (बर्लिन) में हिंदी का अध्यापन।
डॉ. एच. लत्सके	हम्बोल्ट विश्वविद्यालय (बर्लिन) में आधुनिक हिंदी साहित्य का अध्यापन।
डॉ. तात्याना रूत्कोव्स्का	हिंदी प्रेमी और सर्जक। कई भारतीय कथाकारों पर महत्वपूर्ण काम।
मुनीश्वर लाल चिंतामणि	मारीशस के हिंदी लेखक।
प्रह्लाद रामशरण	मारीशस के रचनाकार। लोक साहित्य पर इन्होंने विशेष काम किया है। 'इंद्रधनुष' पत्रिका के संपादक।
डॉ. सुरेंद्र प्रसाद साह	नेपाली और हिंदी के तुलनात्मक साहित्य पर विशेष कार्य। संपर्क : काशी मिस्त्री लेन, छोटी खंजरपुर, भागलपुर।
प्रो. डॉ. मार्गोट गात्सलाफ	हिंदी सेवी एवं उत्कृष्ट अनुवादक। हिंदी के कुछ उपन्यासों का अनुवाद। भारतीय लोक कथाओं में विशेष रुचि। लाइपजिग विश्वविद्यालय से संबद्ध।
विष्णु प्रभाकर	वरिष्ठ हिंदी कथाकार। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं। शरत की जीवनी 'आवारा मसीहा' के रचनाकार। संपर्क : 818, कुंडेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली।
प्रो. विजयेंद्र स्नातक	सुपरिचित हिंदी लेखक। प्राचीन हिंदी साहित्य पर विशेष काम। आधुनिक हिंदी पर राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शिरकत। संपर्क : ई 5/3 राणा प्रताप बाग, नयी दिल्ली।
तोमियो मिजोकामी	जापानी हिंदी लेखक।
न्यी पुलेः	युवा बर्मी कथाकार। इनकी रचनाएं अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहती हैं।
चंद्र प्रकाश प्रभाकर	बर्मा में जन्मे ये बर्मी से हिंदी और हिंदी से बर्मी में निरंतर अनुवाद एवं रूपांतर का काम कर रहे हैं। संपर्क : सी 487 विकासपुरी, नयी दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पंजीयन संख्या, आर.एन./32381 / 78

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पंजीयन संख्या, आर.एन./32381 / 78

7/5.2

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE